हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

हिन्दी हास्य-व्यंग्य संकलन

संपादन

श्रीलाल शुक्ल

प्रेम जनमेजय

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-2055-6

पहला संस्करण : 1997

तीसरी आवृत्ति : 2001 *(शक* 1923)

Original Title : Hindi Hasya Vyangya Sankalan *(Hindi)*

रु. 40.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित

विषय-सूची

भूमिका

हिन्दी हास्य-व्यंग्य का यह संकलन वस्तुतः आधुनिक हिन्दी गद्य में हास्य-व्यंग्य की कुछ प्रतिनिधि रचनाओं का संकलन है। पद्य रचनाएं इसकी परिधि में नहीं हैं। उसी प्रकार पुराने हिन्दी साहित्य में हास्य-व्यंग्य की रचनाओं को भी, जो मूलतः पद्य में हैं, यहां शामिल नहीं किया गया है, आधुनिक युग को ही लक्ष्य में रखा गया है।

हिन्दी गद्य का और उसी के साथ आधुनिक प्रवृत्तियों का विकास हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु-काल से माना जाता है। और यही वह काल है जब से हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग्य की नियमित उपस्थिति का अनुभव किया जाने लगा। इस संग्रह में प्राचीनतम रचनाएं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के समय तथा उसके तुरंत बाद की हैं और स्वयं भारतेन्दु से लेकर आज तक के नवीनतम लेखकों की कुछ रचनाओं को लेकर इसे एक प्रतिनिधि संकलन बनाने का प्रयास किया गया है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु-काल का विशेष महत्व है और हिन्दी व्यंग्य की प्रमुख प्रवृत्तियों की पहचान के लिए उस काल की कुछ साहित्यिक विशिष्टताओं का संक्षेप में उल्लेख करना आवश्यक है। उन्नीसवीं शताब्दी के पांच अंतिम दशक इस काल से जुड़े हैं। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र इस युग के ऐसे साहित्यकार थे जिनका साहित्य, अनेक अर्थों में पारंपरिक होते हुए भी, समाज के आधुनिक युग में संक्रमण की स्थिति को द्योतित करता है। भारतेन्दु उस संक्रमण-कालीन समाज की नवोदित आकांक्षाओं और राष्ट्रीयता के प्रतीक के रूप में ग्रहण किए गए। उनके प्रखर व्यक्तित्व ने इसके बावजूद कि पैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही उनका देहांत हुआ, उस काल की पूरी साहित्यिक पीढ़ी को प्रभावित किया। भारतेन्दु की प्रतिभा बहुमुखी थी और उनके विचार और संवेदना का क्षेत्र विस्तीर्ण तथा गहन था। उन्होंने अपने को काव्य, नाटक, प्रहसन, निबंध आदि अनेक विधाओं में अभिव्यक्त किया और पारंपरिक भक्ति कविताओं की रचना से लेकर देश की विपन्नता, विदेशी शासन का दबाव, कुरीतियों और विसंगतियों आदि को अपने कृतित्व का लक्ष्य बनाया। एक प्रकार से वे अपने युग में परिलक्षित होने वाली नवीन चेतना के अग्रदूत थे और सहज उन्मुक्त हास्य तथा प्रखर व्यंग्य से लेकर भावुकतापूर्ण काव्य और चिंतनपरक गंभीर लेखन तक करने में समर्थ थे। इस संग्रह में संकलित उनकी कृति 'स्वर्ग' में विचार-सभा का अधिवेशन'

उनकी व्यंग्य-क्षमता के साथ ही उनकी सामाजिक चेतना और आधुनिकता-बोध का पर्याप्त परिचय देती है।

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एक नवीन दृष्टि का द्योतक था। राजनीतिक स्तर पर उस समय के अधिकांश बुद्धिजीवी एक अंतर्विरोध का अनुभव कर रहे थे। वे यह अस्वीकार करने में असमर्थ थे कि भारत में ब्रिटिश राज ने उसे मध्यकालीन अराजकता से छुटकारा दिलाकर उसको स्थिरता दी है और अनेक शताब्दियों के बाद कानून का शासन और व्यवस्था स्थापित हुई है। पर वे राष्ट्रीय स्वतंत्रता की महत्ता के प्रति भी सचेत थे। यहां की अर्थव्यवस्था का विदेशियों द्वारा जो शोषण हो रहा था उसके प्रति वे सजग थे और देश की विपन्नता उन्हें विचलित कर रही थी। उसी के साथ अशिक्षा, दरिद्रता, कुसंस्कार, रूढ़िग्रस्तता आदि से बाधित समाज में परिवर्तन की सहज आकांक्षा भी उनके मानस में उभर रही थी। सत्ता तंत्र के उपेक्षापूर्ण रुख के लिए उनके मन में प्रबल आक्रोश था और उसकी सीधी और कड़ी आलोचना करना संभव नहीं था। ऐसी दशा में यदि प्रबुद्ध साहित्यकारों ने व्यंग्य का माध्यम चुना तो यह स्वाभाविक ही था।

उनके व्यंग्य की परिधि में राजनीतिक विसंगतियां तो थीं ही, (जैसा कि हमें बालमुकुन्द गुप्त की रचनाओं में मिलता है) उसमें एक नई सामाजिक चेतना का भी समावेश था। सामाजिक कुरीतियों, कुव्यवस्थाओं और विसंगतियों का आकलन वे आधुनिक मानदंडों पर कर रहे थे जिसके पीछे एक आदर्श समाज की अवधारणा थी, कुरीतियों का आकलन किसी वायवीय या आध्यात्मिक धारणा पर आधारित नहीं था (उदाहरणार्थ, जातिप्रथा का प्रत्याख्यान पहले भी भक्तिमार्गी संतों ने किया था पर उसका आधार आध्यात्मिक था, इस युग के प्रगतिशील विचारक जातिवाद को शुद्ध सामाजिक कारणों से निंदनीय मान रहे थे)।

इन परिस्थितियों में हिन्दी गद्य के इस विकासपरक काल से ही व्यंग्य का जो रूप विकसित हुआ उसमें प्रखरता, विषयबहुलता और सोद्देश्यता की दृष्टि से पर्याप्त प्रौढ़ता थी। उस युग में विकसित होने वाली विभिन्न विधाओं और शैलियों में व्यंग्य का प्रमुख स्थान है। पिछली शताब्दी के अंत और इस शताब्दी के आरंभ की जो रचनाएं यहां संकलित हैं (भारतेन्दु की रचना के अलावा प्रतापनारायण मिश्र की 'उपाधि', बालमुकुन्द गुप्त की 'विदाई समारोह') वे तत्कालीन लेखन में आश्चर्यजनक स्तर की राजनीतिक और सामाजिक चेतना का परिचय देती हैं। यही नहीं, यहां जिस व्यंग्य-क्षमता, स्पष्टवादिता और दृढ़ता का दर्शन होता है वह इन लेखकों की इस अंतर्निहित मान्यता का प्रमाण है कि साहित्य उनके लिए वाणी-विलास भर नहीं है, वह एक गंभीर दायित्व के निर्वाह का माध्यम है।

स्वाभाविक है कि ऐसी परिस्थितियों में व्यंग्य का तो पूरा-पूरा उपयोग हो पर सहज, आनंदजनित, स्वतःस्फूर्त हास्य के लिए समुचित वातारण न मिले। संभवतया यही कारण

है कि आधुनिक युग के आरंभ में हिन्दी का व्यंग्य-साहित्य, जो मूलतः सामाजिक आलोचना और तीव्र प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है, काफी सशक्त रूप में प्रकट हुआ है और हास्य की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर है।

भारतेन्दु-काल के पहले का हिन्दी साहित्य मूलतः कविता पर केंद्रित है। गद्य की जो छिटपुट कृतियां अठारहवीं सदी के अंत से मिलने लगी थीं उनका ऐतिहासिक महत्व ही अधिक है। पूर्ववर्ती काव्य-साहित्य में हास्य-व्यंग्य की स्फुट रचनाओं का सर्वथा अभाव नहीं है। पर वहां हास्य के स्रोत-स्वरूप वैसे वैविध्यपूर्ण और उन्मुक्त नहीं हैं जैसे कि वे आज आधुनिक साहित्यों में पाए जाते हैं। वहां हास्य में परिहास के तत्व प्रायः शृंगारिक क्रीड़ाओं से प्रेरित होते हैं और 'शृंगाराज्जायते हासः' की पुष्टि करते हैं। व्यंग्य की स्थिति और भी सीमित है। पूर्ववर्ती काव्य में जो व्यंग्य मिलता है वह किसी सामाजिक स्थिति पर कवि की खीझ को भले ही व्यक्त कर दे, पाश्चात्य अवधारणा के 'सटायर' के मुकाबले वह बहुत ही सीमित और साधारण है।

वास्तव में 'सटायर' के अर्थ में व्यंग्य की विकासमान और नियमित धारा हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु युग से ही शुरू होती है। अंतर केवल इतना ही है कि जहां प्राचीन तथा मध्यकालीन पाश्चात्य सटायर प्रायः पद्यबद्ध हैं, आधुनिक हिन्दी व्यंग्य अपने कुछ आरंभिक पद्यप्रयोगों और इधर निराला, नागार्जुन, रघुवीर सहाय जैसे कुछ समर्थ कवियों की कविताओं के बावजूद अधिकाधिक गद्याश्रित होता गया है।

कहने की आवश्यकता नहीं, व्यंग्य वस्तुतः एक सुशिक्षित मस्तिष्क की देन है और पाठक के स्तर पर भी सुशिक्षित प्रतिक्रिया की मांग करता है। वह पाठक को गुदगुदाने के लिए नहीं, बल्कि किसी विसंगति या विडंबना के उद्घाटन से उसके संपूर्ण संस्कारों को विचलित करने की प्रक्रिया है। तभी उसमें इकहरापन नहीं होता, अभिव्यक्ति-शिल्प के अधिकाधिक उपादानों का खुलकर प्रयोग होता है। अतिशयोक्ति, विडंबना, संदर्भशीलता, पैरोडी, अन्योक्ति, आक्रोश-प्रदर्शन, ऐलिगरी, फंतासी आदि इसके प्रमुख उपादान हैं। व्यंग्य के पीछे लेखक का निश्चित चिंतन तथा दृष्टिकोण होता है जिसका आधार लेकर वह स्थिति विशेष को अपनी प्रखर आलोचना का लक्ष्य बनाता है। स्पष्ट है कि जो समाज अनेक राजनीतिक और सामाजिक विसंगतियों और तनावों में जकड़ा हुआ है वह हास्य के मुकाबले व्यंग्य के लिए ही अधिक उत्पादक वातावरण तैयार करता है। हिन्दी व्यंग्य के साथ भी यही हुआ है।

हिन्दी-साहित्य के इतिहास में इस शताब्दी के पहले तीन दशकों को द्विवेदी-युग की संज्ञा दी जाती है। शताब्दी के आरंभ में पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' नामक पत्रिका के

संपादक बने और उस हैसियत से, तथा एक लेखक के रूप में उन्होंने पद्य तथा गद्य दोनों क्षेत्रों में भाषा का अद्भुत संस्कार किया। यही नहीं, हिन्दी साहित्य के लिए उन्होंने देश-विदेश के विभिन्न वैचारिक अनुभवों की खिड़कियां भी खोलीं। उनके व्यक्तित्व का साहित्य के क्षेत्र में बड़ा ही व्यापक प्रभाव था। यह वही युग था जब सर्जनात्मक साहित्य में कथाकार प्रेमचन्द भारतीय साहित्य में अपनी अनूठी पहचान बना रहे थे। प्रेमचन्द की कहानियां तथा उपन्यास अनेक सामाजिक विषमताओं में फंसे हुए सामान्य जन की महागाथा प्रस्तुत करते हैं। पर जहां एक ओर उनका अधिकांश साहित्य तनाव और संघर्ष पर टिका है वहीं जहां वे चाहते हैं—हल्के-फुल्के परिहास और व्यंग्य से वातावरण की सघनता को उड़ा देते हैं। इस संग्रह में प्रेमचन्द की कहानी 'बड़े भाई साहब' उनके ऐसे ही मूड का परिचय देती है।

वस्तुतः प्रेमचन्द-युग में (वर्तमान प्रसंग में हम इसे द्विवेदी-युग की जगह प्रेमचन्द के नाम से याद करना ज्याद उपयुक्त समझेंगे) ऐसे कई लेखक हुए जिन्होंने हास्य रचनाओं से साहित्य को समृद्ध किया और उनकी शैली ऐसी थी कि व्यंग्य और हास्य की सीमारेखाएं वहां धुंधली होने लगीं। इस कोटि के लेखकों में बाबू गुलाबराय, अन्नपूर्णानन्द वर्मा, बेढब बनारसी, हरिशंकर शर्मा आदि का अवदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसी युग के लेखकों में जी. पी. श्रीवास्तव का नाम भी एक लोकप्रिय हास्य लेखक के रूप में लिया जाता है। पर उनका हास्य मूलतः स्थूल जनरुचि को ही आकर्षित करता है। फिर भी अपने समय में उन्होंने जैसी व्यापक ख्याति अर्जित की उसे देखते हुए हिन्दी के हास्य लेखकों में उनका उल्लेख अनिवार्य है।

द्विवेदी-युग में एक विशिष्ट व्यंग्यकार विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' हैं। कौशिक जी मूलतः कथाकार थे और अपनी कहानियों के लिए सुप्रसिद्ध थे। उसी के साथ उन्होंने 'दुबेजी की चिट्ठियां' शीर्षक का एक स्तंभ भी लिखा जिसमें सामाजिक और राजनीतिक विसंगतियों तथा कुरीतियों पर तीखा व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है। हिन्दी व्यंग्य में कौशिक जी का अपना विशिष्ट स्थान है।

पुरानी पीढ़ी के लेखकों में पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी का नाम भी उल्लेखनीय है। उन्होंने विनोद शर्मा के उपनाम से हास्य-व्यंग्य की रचनाएं लिखीं। चतुर्वेदी जी उच्च शिक्षा प्राप्त और बहुश्रुत व्यक्ति थे। आचरण और व्यवहार में भारतीय परंपरा के पोषक होते हुए भी उन्होंने उच्चतर शिक्षा इंग्लैंड में पाई थी। उनकी हास्य-व्यंग्य कृतियां अधिक नहीं हैं पर जितनी हैं वे एक सुसंस्कृत और परिष्कृत लेखन का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

द्विवेदी-युग और उसके बाद इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ऐसे कई लेखक हमें मिलते हैं जिनकी विशिष्ट पहचान कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक या निबंधकार के रूप में होती

है पर जिन्होंने समय समय पर कई उच्च कोटि की हास्य या व्यंग्यपरक रचनाएं भी लिखी हैं। इस संग्रह में ऐसे लेखकों को विशेष रूप से सम्मिलित किया गया है। इसका एक कारण उनकी रचनाओं की स्तरीयता तो है ही जिनके बिना यह संग्रह एकांगी रह जाता—दूसरा कारण यह है कि क्योंकि इन लेखकों की मुख्य पहचान किसी दूसरी विधा के मूर्धन्य कृतिकार के रूप में है, इसलिए यदि उनकी हास्य-व्यंग्य रचनाओं को इस प्रतिनिधि संकलन में नहीं लिया गया तो भय है कि कालांतर में उनके कृतित्व का एक अपेक्षाकृत अल्पविदित पक्ष और भी अल्पविदित रह जाएगा।

लेखकों की इस श्रेणी में सबसे अधिक उल्लेखनीय नाम प्रेमचन्द का है जिनकी एक असामान्य कथाकार के रूप में मान्यता है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि जनजीवन के संघर्षों की महागाथा कहते हुए भी प्रेमचन्द हल्के परिहास और व्यंग्य की अत्यंत पठनीय रचनाएं भी प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। दूसरा महत्वपूर्ण नाम सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का है। निराला मूलतः अत्यंत प्रतिभा संपन्न कवि हैं जिन्होंने हिन्दी काव्यधारा को एक विशेष दिशा दी है। उसी के साथ उन्होंने उपन्यास, कहानियां, निबंध आदि भी लिखे हैं। उनकी प्रखर व्यंग्य-प्रतिभा का चमत्कार आरंभ में उनके कुछ साहित्यक और आलोचनात्मक निबंधों में तो मिलता ही है, उसका पूर्ण परिपाक उनकी 'कुल्ली भाट' और 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसी उपन्यासिकाओं, 'कुकुरमुत्ता' और 'खजोहरा' जैसी लंबी कविताओं तथा कुछ कहानियों में हुआ है। वस्तुतः इस शताब्दी के चौथे, पांचवें दशक में निराला की इन कृतियों के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी हास्य-व्यंग्य को एक नई दिशा मिलती है, उसे एक नया आयाम प्राप्त होता है।

हास्य-व्यंग्य लेखकों की इस श्रेणी में अज्ञेय, विजयदेवनारायण साही, रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का नामोल्लेख भी आवश्यक है। ये सभी प्रतिष्ठित कवि थे। इसके अतिरिक्त अज्ञेय ने उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना आदि लिखीं, साहीजी की प्रतिष्ठा उनकी कविताओं और प्रखर आलोचनात्मक कृतित्व के कारण थी। इन लेखकों की एक-एक प्रतिनिधि रचना इस संकलन में संगृहीत है। व्यंग्य लेखन में श्री स. ही. वात्सयायन 'अज्ञेय' ने अपने लिए 'कुट्टिचातन्' उपनाम का प्रयोग किया है। रघुवीर सहाय और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना मूलतः कवि, तथा कथा-लेखक थे। पत्रकारिता करते हुए दोनों ने समय-समय पर अनेक संवेदनशील निबंध और टिप्पणियां भी लिखी हैं और उनमें उनकी व्यंग्य-क्षमता पर्याप्त रूप से व्यक्त हुई है। सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों के प्रति इनका चिंतन और दृष्टि निश्चयात्मक और संवेदनशील है।

देश की स्वतंत्रता के बाद हिन्दी में हास्य-व्यंग्य का जैसा विकास हुआ वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

पहले भी कई पत्र-पत्रिकाओं में परिहासपूर्ण या व्यंग्यपरक स्तंभ लिखे जाते थे।

स्वतंत्रता के बाद कई पत्रिकाओं में ऐसे स्तंभ नियमित रूप से आने लगे। अखबारी लेखन होते हुए भी इसमें बहुत कुछ ऐसा है जो साहित्य की स्थायी निधि बन गया या बन सकता है। हरिशंकर परसाई का 'कबिरा खड़ा बजार में' जैसे स्तंभ इसी कोटि के हैं। शरद जोशी के लेखन का भी एक बहुत बड़ा भाग अखबारों के व्यंग्य-स्तंभ में देखा जा सकता है।

इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि नाटक, कहानी, उपन्यास, कविता आदि में व्यंग्य का स्तर निरंतर प्रखर और अधिक व्यापक होता गया है। इसके लिए आजादी के बाद बहुत से साहित्यकारों के लिए मोहभंग की स्थिति ही जिम्मेदार नहीं थी। इस शताब्दी के उत्तरार्ध में और द्वितीय युद्ध के बाद विश्व के बदले हुए सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक माहौल में स्थापित मूल्यों के प्रति प्रश्नात्मक प्रवृत्ति के उभार तथा उनके प्रति संशयालुता (सिनिसिज्म) के वातावरण से भी एक प्रकार की बौद्धिक आस्थाहीनता का उदय हुआ। सर्जनात्मक स्तर पर इसकी अभिव्यक्ति अभिधात्मक लेखन से संभव नहीं थी। अतः कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के लेखक अपनी रचनाओं में अतिशयोक्ति, फंतासी, पैरोडी, ऐलिगरी, अन्योक्ति आदि ऐसे तत्वों का खुला प्रयोग करने लगे जो मूलतः व्यंग्य के उपादान हैं। इस प्रकार जहां हिन्दी में व्यंग्य लेखकों की दो-तीन सशक्त पीढ़ियों का अलग से अभ्युदय हुआ वहीं उन लेखकों की रचनाओं में भी, जो वस्तुतः व्यंग्यलेखक नहीं माने जाते हैं, व्यंग्य एक सशक्त और सार्थक औजार की तरह प्रयुक्त होने लगा। कविता में इस प्रवृत्ति के अग्रदूत के रूप में निराला पहले ही हमें उपलब्ध थे, नागार्जुन से लेकर धूमिल और रघुवीर सहाय जैसे समर्थ कवियों ने इसे और भी आगे बढ़ाया।

आज विभिन्न विधाओं में व्यंग्य के तत्वों के प्रयोग की क्या स्थिति है इस आकर्षक विषय पर विषयांतर के भय से अधिक न कहकर केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि आज के सर्जनात्मक साहित्य में व्यंग्य का अंतर्गुंफित स्वरूप उस साहित्य की प्राणवत्ता का प्रमुख आधार है।

स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में हास्य-व्यंग्य को लेकर एक और महत्वपूर्ण घटना घटी है। पिछले पच्चीस-तीस वर्षों से हास्य-व्यंग्य की कविताओं का मंच से पाठ, कवि-सम्मेलनों का प्रमुख चरित्र बन गया है। दूसरे शब्दों में हास्य-व्यंग्य की कविताओं ने अब धीरे धीरे अभिनेय कला का दर्जा हासिल कर लिया है। यही नहीं, मंच से कविताओं के साथ अब गद्य रचनाएं भी पढ़ी जाने लगी हैं। स्व. शरद जोशी भी स्वतंत्र्योत्तर साहित्य में हास्य-व्यंग्य के अंतर्गत अपने विशिष्ट अवदान के लिए विख्यात हैं, कवि-सम्मेलनों में अपनी गद्य-रचनाओं का पाठ बड़ी सफलता से करते थे। कवि-सम्मेलनों के मंच पर प्रसिद्ध हास्य लेखक के. पी. सक्सेना की गद्य रचनाओं की लगभग उतनी ही मांग है जितनी पद्य के क्षेत्र में स्व. काका हाथरसी की कुंडलियों की रही है।

हास्य-व्यंग्य की इस मंचीय प्रतिष्ठा के खतरे स्पष्ट हैं, किंतु इस प्रस्तावना में कदाचित इस पक्ष पर विचार करना अप्रासंगिक होगा। इस समय कवि-सम्मेलनी मंचों पर हास्य-व्यंग्य के एकाधिकार का प्रसंग केवल इस तथ्य को लक्षित करने के लिए उठाया गया है कि स्वातंत्र्योत्तर साहित्य में हास्य-व्यंग्य के विकास का एक पहलू यह भी है जिसका सीधा संबंध लेखक के निजी अनुभव, संवेदना या चिंतन से उतना नहीं है जितना लोकरुचि के आग्रह से और इस क्षेत्र में जहां लोकरुचि साहित्य की व्यापक स्वीकृति का मार्ग प्रशस्त कर रही है वहीं वह साहित्य के स्तर को अपनी मांगों के अनुकूल ढालती, उछालती और गिराती चलती है।

आजादी मिलने के बाद हास्य-व्यंग्य लेखकों की एक सशक्त पीढ़ी साहित्य क्षितिज को अभिभूत करती हुई दीख पड़ती है। ऊपर उल्लेख किया गया है कि व्यंग्य का एक स्वरूप नाटक, कथा-साहित्य और कविता में एक अंतरंग तत्व के रूप में उभरा, उसी के साथ उसका एक स्वतंत्र स्वरूप भी विकसित हुआ। हिन्दी में हास्य-व्यंग्यपूर्ण निबंधों और कहानियों की एक नई प्रवृत्ति देखने को मिली। ऐसा नहीं कि यह सर्वथा नई प्रवृत्ति थी। अंग्रेजी में स्टीफेन लीकॉक जैसे लेखकों की कहानियां (नान्सेंस नावेल्स) और निबंध (लिटरेरी लैप्सेज) पहले से ही एक मॉडल के रूप में उपलब्ध थे। हिन्दी में भी हरिशंकर शर्मा ने पहले संक्षिप्त हास्य-लेख (स्किट) लिखे थे, अन्नपूर्णानन्द वर्मा के 'अकबरी लोटा' जैसे हल्के व्यंग्य और हास्य की कहानियां और बेढब बनारसी के निबंध भी पहले आ चुके थे। आजादी के बाद के लेखन में कहानियों और निबंधों की इस शैली का खुलकर प्रयोग और परिमार्जन हुआ। इस शताब्दी के छठे दशक के आरंभ में हास्य-व्यंग्य की पांच-छह पृष्ठों वाली कहानियों और निबंधों का सबसे सशक्त और अधिक प्रयोग पहले केशवचन्द्र वर्मा ने किया। उनके संग्रह 'लोमड़ी का मांस' ने हास्य-व्यंग्य की कथाओं और निबंधों के इस मॉडल को एक स्वतंत्र अस्मिता प्रदान की। इसे बाद में बड़े व्यापक रूप से ग्रहण किया गया। हरिशंकर परसाई, रवीन्द्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, शरद जोशी आदि ने लेखन के इस स्वरूप को भली-भांति निखारा। आज भी हिन्दी के बहुसंख्य हास्य-व्यंग्य लेखक अपनी कहानियों और निबंधों को इसी सांचे में ढालते जा रहे हैं।

उन्हीं दिनों केशवचन्द्र वर्मा का 'किस्सा काठ का उल्लू और कबूतर' प्रकाशित हुआ जो व्यंग्य विधा में लिखा गया हिन्दी का संभवतः पहला उपन्यास है। उनके अनेक हास्य-संग्रह भी छठे और सातवें दशक में प्रकाशित हुए। बाद में केशवचन्द्र वर्मा की लेखन प्रवृत्ति उनकी रुचि के दूसरे विषयों—यथा संगीत, कला और काव्य आदि की ओर मुड़ गई। फिर भी अपने आरंभिक लेखन में उन्होंने हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में जो योगदान दिया उसकी परवर्ती लेखन के प्रवृत्ति निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका है।

पांचवें या छठे दशक में प्रभाकर माचवे का संग्रह 'खरगोश के सींग' और नामवर सिंह का 'बकलम खुद' प्रकाश में आया। यही समय था जब हरिशंकर परसाई की आश्चर्यजनक प्रतिभा से साहित्य जगत का परिचय हुआ। शरद जोशी और रवीन्द्रनाथ त्यागी, जो आगे के दशकों में हास्य-व्यंग्य के क्षेत्र में प्रमुख स्थान बनाने वाले थे, इसी दशक में अपने आरंभिक लेखन में प्रवृत्त हुए। श्रीलाल शुक्ल का पहला संग्रह 'अंगद का पांव' भी इसी दशक में प्रकाशित हुआ।

इसमें संदेह नहीं कि इस समय हिन्दी में व्यंग्य जिस मात्रा मे और जितनी विविधता में लिखा जा रहा है, वह एक अभूतपूर्व स्थिति है। पर यह बात हास्य के लिए नहीं कही जा सकती, हास्य-कवियों का एक वृहत् समुदाय अवश्य है पर वह लोकरुचि को परिष्कृत करने के बजाय कवि-सम्मेलनों के मंच से लोकरुचि को रिझाने में अपनी प्रतिभा को अधिक सार्थक समझता है।

जहां तक गद्य लेखकों का सवाल है,उनमें हास्य के विभिन्न आयामों को विकसित करने वाले और व्यंग्य के मिश्रण से सामयिक विडंबनाओं पर अप्रत्यक्ष चोट करने वाले सबसे सशक्त लेखक संभावतः मनोहरश्याम जोशी हैं। वे अमृतलाल नागर की परंपरा में विभिन्न समुदायों की मुद्राओं से, उनकी बोली के अंदाज और खास तौर-तरीकों से हास्य का सृजन करते हैं। अमृतलाल नागर ही की तरह उनके वर्गगत और भाषागत अनुभव का क्षेत्र बड़ा विस्तीर्ण है और उन्हीं की तरह उनके शैली-प्रयोगों के स्वरूप विस्मयजनक रूप से वैविध्यपूर्ण हैं।

हास्य के क्षेत्र में समकालीन लेखकों में एक और उल्लेखनीय नाम के. पी. सक्सेना का है। उर्दू जबान के चुटीलेपन का पूरा-पूरा प्रयोग करने वाली उनकी गद्य रचनाएं कवि-सम्मेलनों के मंच पर बड़े उल्लास और आदर से सुनी जाती हैं। इसके बावजूद कि उनका लेखन बहुत हद तक लोकरुचि से परिचालित और परिसीमित है, उसमें कभी-कभी अप्रत्याशित ताजगी के साथ गंभीर सामाजिक चिंताओं के दर्शन होते हैं।

शंकर पुणताम्बेकर और लतीफ घोंघी की रचनाओं में भी व्यंग्य के साथ हास्य का तत्व प्रचुर मात्रा में मिलता है और उनकी सामाजिक चिंता का दायरा बहुत व्यापक है।

हास्य-लेखन में शान्ति मेहरोत्रा का उल्लेख उनके सहज परिहास-बोध और परिष्कृत रुचि के कारण करना अनिवार्य है। शान्तिजी ने अपेक्षाकृत कम लिखा है पर उनके लेखन का अपना एक विशिष्ट चरित्र है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हिन्दी व्यंग्य-लेखन का क्षेत्र इस समय अत्यंत सक्रियतापूर्ण है। लेखकों की तीन पीढ़ियां वहां एक साथ सक्रिय हैं। सबसे पुरानी पीढ़ी

में जिनके विशिष्ट अवदान को मान्यता मिली है उनमें हरिशंकर परसाई, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल प्रमुख माने जाते हैं। दुर्भाग्य से शरद जोशी का देहावसान सन् 1991 में और हरिशंकर परसाई का सन् 1995 में हो गया।

हरिशंकर परसाई का साहित्य बड़ा विशाल है और जो स्थितियां दूसरों को सामान्य जान पड़ती हैं उनमें विडंबना और विकृति को पकड़ने की असामान्य क्षमता है। यही नहीं, फंतासी, लोककथा, अन्योक्ति आदि विभिन्न शिल्पगत तंत्रों के प्रयोग से वे किसी भी कोण से पाठक की चेतना को झकझोर सकते हैं। उनकी प्रतिभा में आविष्कारक तत्व आश्चर्यजनक मात्रा में विद्यमान हैं। उन्हीं के लेखन का कदाचित यह फल है कि व्यंग्य छिटपुट वाग्विलास न रहकर हिन्दी में एक सशक्त और नियमित लेखन प्रक्रिया बन गया है। आधुनिक साहित्य में अगर हिन्दी व्यंग्य की स्वतंत्र पहचान बनी है तो उसका अधिकांश श्रेय परसाई को ही है।

वर्तमान समाज की विसंगतियों और उसके पाखंड और कुरीतियों के खिलाफ अत्यंत पठनीय कहानियों और निबंधों के अलावा उन्होंने लघु उपन्यास (रानी नागफनी की कहानी) भी लिखा। पर उनके साहित्य का एक वृहत भाग अनेक पत्रिकाओं में समय समय पर किए गए स्तंभ लेखन का है जिसमें स्थायी मूल्यवत्ता की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है। उनके असंतोष का मुख्य आधार आज की राजनीतिक और सामाजिक मूल्यहीनता है जिसके प्रति उनकी दृष्टि एक ऐसे कलाकार की है जो विपन्नों, वंचितों और संघर्षशील वर्गों के प्रति स्पष्ट रूप से प्रतिबद्ध है।

श्रीलाल शुक्ल के भी कई हास्य-व्यंग्य संकलन प्रकाशित हुए हैं, पर उनकी ख्याति का मुख्य आधार सन् 1968 में प्रकाशित उनका उपन्यास 'राग दरबारी' है। इस उपन्यास को अपने ढंग का एक अनूठा प्रयोग माना गया है। 'मकान' और 'पहला पड़ाव' जैसे उनके दूसरे उपन्यासों में व्यंग्य को लेखन के अंतरंग तत्व के रूप में देखा जा सकता है।

शरद जोशी का लेखन अत्यंत मोहक और वैविध्यपूर्ण है। उसमें हास्य और व्यंग्य की विभाजक रेखाएं क्षीण हो गई हैं और दोनों तत्वों के मिश्रण का वहां बड़ा आकर्षक परिणाम प्रकट होता है। उनका भी अधिकांश लेखन पत्र-पत्रिकाओं के नियमित स्तंभों से जुड़ा रहा है। उन्होंने बोलचाल की जिस विशिष्ट शैली का प्रयोग किया है वह गंभीर चिंतन को भी हल्के-फुल्के ढंग से व्यक्त करने की क्षमता रखती है।

शरद जोशी के साथ दिवंगत साहित्यकारों में राधाकृष्ण का उल्लेख आवश्यक है। चौथे दशक से लेकर लगभग आधी शताब्दी तक वे हास्य व्यंग्य की अद्‌भुत सृष्टि करते रहे। आरंभ में घोष-बोस-चटर्जी-बनर्जी के छद्‌म नाम से साहित्य-रचना में प्रवृत्त होने वाले राधाकृष्ण का लेखन सुशिक्षित और सौम्य हास्य-व्यंग्य का उत्तम उदाहरण है।

वरिष्ठ रचनाकारों में गोपालप्रसाद व्यास एक लोकप्रिय लेखक हैं। उनकी

हास्य-कविताओं का साहित्य में अपना स्थान है और उनकी गद्य रचनाएं भी उतनी ही आकर्षक हैं।

आज के वरिष्ठ हास्य-व्यंग्य लेखकों में रवीन्द्रनाथ त्यागी का लेखन अपने ढंग का है। उस पर पूर्ववर्ती और समकालीन लेखकों का कोई स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। उन्होंने लगभग स्वतंत्र रूप से अपना लेखन-तंत्र विकसित किया है। उनकी कलात्मक अभिरुचियां परिष्कृत और साहित्य का अध्ययन गहन है। यह उनके लेखन में उसे संपन्न बनाते हुए बोझिल होने से बचाते हुए—सहज रूप में प्रतिबिंबित होता है। त्यागी जी में राजनीतिक तल्खी नहीं हैं, वहां सहज परिहासबोध है और स्थितियों के विश्लेषण की कौतुकपूर्ण सूझबूझ है।

उपर्युक्त रचनाकारों के अलावा प्रौढ़ लेखकों में नरेन्द्र कोहली, शंकर पुणताम्बेकर, लतीफ घोंघी, सुदर्शन मजीठिया, अजातशत्रु, विष्णु नागर आदि अनेक समर्थ रचनाकार हैं जो अपनी कृतियों से वर्तमान साहित्य को संपन्न बना रहे हैं। उनके साथ नए लेखकों का भी एक बड़ा समुदाय है जिसकी मान्यता है कि व्यंग्य अपने आप में एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा है और उसके विकास में वे सक्रिय हैं। इनमें प्रेम जनमेजय, ज्ञान चतुर्वेदी, अशोक शुक्ल, सूर्यबाला, हरीश नवल, सुरेश कान्त, बालेन्दु शेखर तिवारी, दामोदर दत्त दीक्षित, यशवन्त व्यास, ईश्वर शर्मा आदि का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हाल में ही प्रकाशित 'नरक यात्रा' नामक उपन्यास में ज्ञान चतुर्वेदी ने व्यंग्य का प्रयोग बड़े व्यापक और सार्थक रूप में किया है।

इस संकलन के लिए,स्पष्ट है, संपादकों को अनेक प्रतिभासंपन्न लेखकों की रचनाओं में से चुनाव करना था। हिन्दी हास्य-व्यंग्य का साहित्य बहुत विशाल है और पिछले दशक में उसमें विशेष अभिवृद्धि हुई है। हर साल हास्य-व्यंग्य कथाओं और निबंधों के संग्रह बड़ी संख्या में प्रकाशित हो रहे हैं। नए लेखकों पर हरिशंकर परसाई के लेखन का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित है। इस साहित्य की स्तरीयता एक सी नहीं है। फिर भी कहीं कहीं मीडियाकर लेखन में भी प्रतिभा का विलक्षण स्फुरण परिलक्षित हो जाता है। इस पूरे साहित्य में से इस संकलन की आकार-सीमा के अनुरूप सामग्री का संचय उतना सरल कार्य नहीं सिद्ध हुआ जितना कि यह हमें आरंभ में जान पड़ा था।

ऐसे संकलनों के विषय में यह कहना असंभव है कि यहां केवल सर्वोत्कृष्ट सामग्री दी गई है पर यह जरूर कहा जा सकता है कि भले ही हम एकाध विशिष्ट लेखकों को शामिल न कर पाए हों, यहां पर संकलित लेखक हमारे सर्वाधिक महत्वपूर्ण लेखक हैं। वस्तुपरक आकलन की चेष्टा के बावजूद संपादकों की व्यक्तिगत रुचि और आग्रह ने कहीं-न-कहीं अप्रत्यक्ष रूप से चयन की प्रक्रिया को प्रभावित किया होगा, इस संभावना

से इनकार न करते हुए भी हमारी चेष्टा रही है कि यहां समकालीन लेखक में सक्रिय तीन-तीन पीढ़ियों का यथासंभव समुचित प्रतिनिधित्व तो हो ही, पाठकों की दृष्टि से लेखन की विविधता और उसके अभिनव स्वरूपों का भी उन्हें आनंद मिल सके। इस उद्देश्य से और संग्रह के आकार की सीमा के कारण, हमें विवश होकर कई ऐसे रचनाकारों की कृति से यहां वंचित होना पड़ा है जिन्हें सम्मिलित करके हम इस संकलन के प्रति अधिक आश्वस्त हो सकते। फिर भी हमारा विश्वास है कि यह संग्रह आधुनिक हिन्दी गद्य में हास्य-व्यंग्य की स्थिति का समुचित प्रतिनिधित्व करता है। इसके निर्माण में यदि हमारी ओर से कोई असावधानी हो तो हम उसके लिए लेखकों और पाठकों से क्षमा-भाव की याचना करते हैं। रचनाओं का क्रम रचनाकार की जन्मतिथि के आधार पर निर्धारित किया गया है।

- श्रीलाल शुक्ल

दिल-बहलाव के जुदे-जुदे तरीके

बालकृष्ण भट्ट

जब आदमी को कुछ काम नहीं रहता, तो दिल बहलाने को कोई-न-कोई ऐसा एक काम निकाल लेता है, जिसमें समय उसको बोझ न मालूम हो और यह कहने को न रहे कि वक्त काटे नहीं कटता।

इस दिल-बहलाव के जुदे-जुदे तरीके हैं, जिनमें थोड़े-से यहां पर दिखाए जाते हैं—कितने सब काम-काज से छुटकारा पाय दिल बहलाने को बाहर निकलते हैं। सदर बाजार के एक छोर से दूसरे तक दो चक्कर किए, कभी इस कोठे पर ताका कभी उस अटारी पर इशारेबाजी हुई, दिल बहल गया, घर लौट आए। कितनों का दिल-बहलाव हुक्केबाजी है, सब काम से फुरसत पाय, किसी बैठक में आ बैठे, हाहा-ठीठी करते जाते हैं, और चिलिम पर चिलिम उड़ाते जाते हैं—हाहा-ठीठी, धोल-धक्कड़ का मौका न मिला, तो वे बे-जड़, बे-बुनियाद की ऊबियाऊ कोई दास्तान छेड़ बैठे, घंटों तक उसी में समय बिताया, घर की राह ली, दिल बहल गया। कितने चले जाते हैं, रास्ते में कोई दोस्त मिल गए, दो-दो कच्ची-पक्की औंड़ी-बौंड़ी इन्होंने उसे सुनाया, उसने उन्हें कहा, अपनी-अपनी राह ली, सब थकावट दूर हो गई, मन बहल गया। कर्कशा-अपढ़ स्त्रियों का दिल-बहलाव लड़ाई है। घर-गृहस्थी के सब काम पिसौनी-कुटौनी से छुट्टी पाय, जब तक दांत न किर्र लें और आपस में झोंटी-झोंटा न कर लें, तब तक कभी न अघाएं; जी ऊबता रहे, चित्त में उदासी छाई रहे, मानो उस दिन उन्हें उपवास हुआ। चुगल चबाई ईढ़ी धूर्तों का दिल-बहलाव निंदा और चवाव है, दो-चार पुराने समय के खबीस इकट्ठे हो तमाखू पिच्च-पिच्च थूकते जाते हैं और सौ वर्ष का पुराना कोई जिकिर छेड़ बैठे। बहुधा जात-बिरादरी के संबंध की कोई बात अवश्य होगी, नाक चढ़ाय-चढ़ाय मुंह बगार-बगार किसी भले मानुष के गुण में दोष उद्घाटन करते दो-चार कच्ची-पक्की कह-सुन लिया, मन बहल गया। कोई-कोई ऐसे मनहूस भी हैं कि फुरसत के वक्त किसी अंधेरी कोठरी में हाथ पर हाथ रखे पहरों तक चुपचाप बैठे रहने ही से दिल बहलाव हो जाता है। बाज-बाज नौसिखिये, नई रोशनी वाले, जिनका किया-धरा आज तक कुछ नहीं हुआ, मुल्क की तरक्की के खब्त में आय आज इस सभा में जाय हड़ाकू मचाया; कल उस क्लब में जा टॉय-टॉय कर आए, दिल-बहलाव हो गया। इन्हीं में कोई-कोई

घाऊ-घप्प गुरुघंटाल किसी क्लब या समाज के सेक्रेटरी या खजानची बन बैठे और सैकड़ों रुपया वसूल कर डकारने लगे। भांड़ों की नकल, सवारी की सवारी, जनाना साघ, आमदनी की आमदनी, दिल-बहलाव मुफ्त में। सच पूछो, तो इनका दिल-बहलाव सबसे अच्छा; हमें ऐसा दिल-बहलाव मिलता, तो सिवाय दिल बहलाने के कोई काम करने के डांड़े न जाते। धन्य हमारा समाज, धन्य हमारे लोगों की तबीयत की झुकावट! जिनके बीच ऐसे-ऐसे उमदा-से-उमदा दिल-बहलाव मौजूद हैं। इसी दिल-बहलाव का एक क्रम नीचे के श्लोक में दिया गया है—

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।

सच है, विद्यारसिक पढ़े-लिखे विद्वानों का क्रम अपढ़ साधारण लोगों से जैसा और सब बातों में निराला है, वैसा ही दिल-बहलाव भी अनोखे ढंग का होना ही चाहिए। सामान्य मनुष्यों का दिल-बहलाव विषय-वासना का एक अंग रहता ही है, वहीं विद्वानों का दिल-बहलाव विद्या-संबंधी बुद्धि का बढ़ाने वाला और शुद्ध सात्विक क्रम का होता है। इसी से ऊपर कहे श्लोक में लिखा गया है कि 'बुद्धिमानों का काल काव्यशास्त्र के पढ़ने-पढ़ाने के आनंद में बीतता है, मूर्खों का समय दुर्व्यसन और सोने में नष्ट होता है।' अति दुरूह कठिन विषय, जिनमें मस्तिष्क को विशेष परिश्रम पड़ता है, चिरकाल तक उसमें अभ्यास के उपरांत बहुधा जब तबीयत उस ओर से उखड़ जाती है, तब वैसे विषय जिनमें बुद्धि को अधिक परिश्रम नहीं है और सुकुमार कोमल बुद्धि वालों के पढ़ने के योग्य हैं, जैसा काव्य, नाटक, उपन्यास, नावेल्स, किस्से-कहानी, इतिहास, भूगोल इत्यादि के पढ़ने से देर तक दिमाग को काम में लाने से जो उस पर बोझा आ जाता है, वह हल्का होकर दोचंद उस दुरूह विषय की ओर धंसता है। नैयायिक, वैयाकरण और गणितज्ञ (मेथिमेटिशियन) का दिल-बहलाव मदाधारी जागदीशी और दीक्षित की फक्किकाओं के हल करने से जैसा होता है, वैसा किसी दूसरी बात से नहीं होता। कहावत चल पड़ी—वैयाकरण अर्द्धमात्रा के लाधव में पुत्र-जन्म-सा आनंद का उत्सव मानते हैं।

अर्धमात्रालाघवेन वैयाकरणाः पुत्रोत्सवं मन्यन्ते।

इसका यही प्रयोजन है कि जिस विषय का मनन करो, वह मन में बैठ जाए तो मन प्रसन्न हो जाता है और इतनी खुशी होती है, मानो लड़का पैदा हुआ। इसी तरह 'युल्कैदिस' बीजगणित या कोई दूसरे हिसाब के सवाल हो जाने पर गणित करने वाले के चित्त में जो सुख होता है, उसके आगे विषय-वासना के निकृष्ट कोटि वाले आमोद-प्रमोद किस हकीकत में हैं। इसी तरह सभ्य समाज का भी दिल-बहलाव इधर-उधर बेकाम घूमने के बदले अपने समान उदार प्रकृति वालों के साथ संलाप है, जिनकी आपस की बातचीत उत्तर उपदेश से पूर्ण रहती है। इसी से किसी ने कहा है—

सदा संतोऽभिगंतव्यो यद्यप्युपदिशांति नो।
या हि स्वैरकथास्तेषामुपदेशा भवन्ति ताः।।

सुसभ्य सत्पुरुष यद्यपि कुछ उपदेश न करें, तो भी उनके पास जाना उत्तम है, जो आपस की उनकी बातचीत है, वही उपदेश होती है। कृपणता की मूर्ति हमारे सेठजी का दिल बहलाव रुपए की गंजिया है, हुंडी-पुर्जे के भुगतान से छुट्टी पाय जब कुछ काम न रहा गंजिया खोल बैठे, दो-चार हजार रुपया गिन डाला, दिल बहल गया। शराबी तथा जुआरी का दिल-बहलाव शगल है। पक्के जुआरी को जिस दिन हजार-पांच सौ जीत-हार न हो ले जी ऊबता रहता है, जिनके जीवन का सर्वस्व द्यूत है।

द्रव्यं लब्धं द्यूतेनैव दारा मित्रं द्यूतेनैव।
दत्तं भुक्तं द्यूतेनैव सर्वं नष्टं द्यूतेनैव।।

जुआरी जुआ को बिना सिंहासन का राज्य मानता है–

न ग यति पराभवं कृतश्चित् हरति ददाति च निन्यमर्थजातम्।
नृपतिरिव निकामयदर्शी विभवता समुपास्यते जनने।।

ऐसा ही शराबी जब तक पीते-पीते बेहोश हो चहबच्चे में न गिरे, उसका दिल न बहलेगा। हमारा दिल-बहलाव उमदे-से-उमदा टटका रसीला मजमून है, जिस दिन कोई नई बात सूझ गई दस मिनिट में खर्रे-का-खर्रा लिख डाला। उस दिन चित्त बड़ा प्रसन्न रहा, नहीं बैठे-बैठे सिर पर हाथ रखे पहरों सोचते रहते हैं, अंत को उद्विग्न खिन्न चित्त निरस्त हो बैठते हैं। ऐसा ही अपने रसिक ग्राहकों को एक-दो दिन के लिए दिल-बहलाव हम होते हैं; जिस दिन हम उनसे जा मिलते हैं, वे अपना सुदिन मानते होंगे। इत्यादि, दिल-बहलाव के जुदे-जुदे तरीके यहां दिखाए गए।

स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

स्वामी दयानन्द सरस्वती और बाबू केशवचन्द्रसेन के स्वर्ग में जाने से वहां एक बेर बड़ा आंदोलन हो गया। स्वर्गवासी लोगों में बहुतेरे तो इनसे घृणा करके धिक्कार करने लगे और बहुतेरे इनको अच्छा कहने लगे। स्वर्ग में भी 'कंसरवेटिव' और 'लिबरल' दो दल हैं। जो पुराने जमाने के ऋषि-मुनि यज्ञ कर-करके या तपस्या करके अपने-अपने शरीर को सुखा-सुखाकर और पच-पचकर मरके स्वर्ग गए हैं उनकी आत्मा का दल 'कंसरवेटिव' है, और जो अपनी आत्मा ही की उन्नति से और किसी अन्य सार्वजनिक उच्च भाव संपादन करने से या परमेश्वर की भक्ति से स्वर्ग में गए हैं वे 'लिबरल' दलभक्त हैं। वैष्णव दोनों दल के क्या दोनों से खारिज थे, क्योंकि इनके स्थापकगण तो लिबरल दल के थे किंतु ये लोग 'रेडिकल्स' क्या महा-महा रेडिकल्स हो गए हैं। बिचारे बूढ़े व्यासदेव को दोनों दल के लोग पकड़-पकड़ कर ले जाते और अपनी-अपनी सभा का 'चेयरमैन' बनाते थे, और बेचारे व्यास जी भी अपने प्राचीन अव्यवस्थित स्वभाव और शील के कारण जिसकी सभा में जाते थे वैसी ही वक्तृता कर देते थे। कंसरवेटिवों का दल प्रबल था; इसका मुख्य कारण यह था कि स्वर्ग के जमींदार इन्द्र, गणेश प्रभृति भी उनके साथ योग देते थे, क्योंकि बंगाल के जमींदारों की भांति उदार लोगों की बढ़ती से उन बेचारों को विविध सर्वोपरि बलि और मान न मिलने का डर था।

कई स्थानों पर प्रकाश-सभा हुई। दोनों दल के लोगों ने बड़े आंतक से वक्तृता दी। 'कंसरवेटिव' लोगों का पक्ष समर्थन करने को देवता भी आ बैठे और अपने-अपने लोकों में भी उस सभा की शाखा स्थापन करने लगे। इधर 'लिबरल' लोगों की सूचना प्रचलित होने पर मुसलमानी-स्वर्ग और जैन स्वर्ग तथा क्रिस्तानी-स्वर्ग से पैगंबर, सिद्ध, मसीह प्रभृति हिंदू-स्वर्ग में उपस्थित हुए और 'लिबरल' सभा में योग देने लगे। बैकुंठ में चारों ओर इसी की धूम फैल गई। 'कंसरवेटिव' लोग कहते, "छिः, दयानन्द कभी स्वर्ग में आने के योग्य नहीं; इसने 1. पुराणों का खंडन किया, 2. मूर्तिपूजा की निंदा की, 3. वेदों का अर्थ उलटा-पुलटा कर डाला, 4. दक्ष नियोग करने की विधि निकाली, 5. देवताओं का अस्तित्व मिटाना चाहा, और 6. अंत में सन्यासी होकर अपने को जलवा दिया। नारायण! नारायण! ऐसे

मनुष्य की आत्मा को कभी स्वर्ग में स्थान मिल सकता है, जिसने ऐसा धर्म-विप्लव कर दिया और आर्यावर्त को धर्म-वहिर्मुख किया!"

एक सभा में काशी के विश्वनाथ जी ने उदयपुर के एकलिंग जी से पूछा, "भाई! तुम्हारी क्या मति मारी गई जो तुमने ऐसे पतित को अपने मुंह लगाया और अब उसके दल के सभापति बने हो, ऐसा ही करना है तो जाओ लिबरल लोगों में योग दो। एकलिंग जी ने कहा, "भाई, हमारा मतलब तुम लोग नहीं समझे। हम उसकी बुरी बातों को न मानते न उसका प्रचार करते, केवल अपने यहां के जंगल की सफाई का कुछ दिन उसे ठेका दिया, बीच में वह मर गया। अब उसका माल-मता ठिकाने रखवा दिया तो उसका बुरा किया।"

कोई कहता, "केशवचन्द्रसेन! छि छि! इसने सारे भारतवर्ष का सत्यानाश कर डाला। 1. वेद-पुराण सबको मिटाया, 2. क्रिस्तान, मुसलमान सबको हिंदू बनाया, 3. खाने-पीने का विचार कुछ न बाकी रखा, 4. मद्य की तो नदी बहा दी। हाय-हाय, ऐसी आत्मा क्या कभी बैकुंठ में आ सकती है!"

ऐसे ही दोनों के जीवन की समालोचना चारों ओर होने लगी।

लिबरल लोगों की सभा भी बड़ी धूमधाम से जमती थी। किंतु इस सभा में दो दल हो गए थे, एक जो केशव की विशेष स्तुति करते, दूसरे वे जो दयानन्द को विशेष आदर देते थे। कोई कहता, अहा धन्य दयानन्द जिसने आर्यावर्त के निंदित आलसी मूर्खों की मोह-निद्रा भंग कर दी। हजारों मूर्खों को ब्राह्मणों के (जो कंसरवेटिवों के पादरी और व्यर्थ प्रजा का द्रव्य खाने वाले हैं) फंदे से छुड़ाया। बहुतों को उद्योगी और उत्साही कर दिया। वेद में रेल, तार, कमेटी, कचहरी दिखाकर आर्यों की कटती हुई नाक बचा ली। कोई कहता, धन्य केशव! तुम साक्षात दूसरे केशव हो। तुमने बंग देश की मनुष्यनदी के उस वेग को, जो क्रिश्चन समुद्र में मिल जाने को उच्छलित हो रहा था, रोक दिया। ज्ञानकर्म का निरादर करके परमेश्वर का निर्मल भक्ति-मार्ग तुमने प्रचलित किया।

कंसरवेटिव पार्टी में देवताओं के अतिरिक्त बहुत लोग थे जिनमें याज्ञवल्क्य प्रभृति कुछ तो पुराने ऋषि थे और कुछ नारायण भट्ट, रघुनन्दन भट्टाचार्य, मण्डन मिश्र प्रभृति स्मृति ग्रंथकार थे।

लिबरल दल में चैतन्य प्रभृति आचार्य, दादू, नानक, कबीर प्रभृति भक्त और ज्ञानी लोग थे। अद्वैतवादी भाष्यकार आचार्य पंचदशीकार प्रभृति पहले दलमुक्त नहीं होने पाए। मिस्टर ब्रैडला की भांति इन लोगों पर कंसरवेटिवों ने बड़ा आक्षेप किया किंतु अंत में लिबरलों की उदारता से उनके समाज में इनको स्थान मिला था।

दोनों दलों के मेमोरियल तैयार कर स्वाक्षरित होकर परमेश्वर के पास भेजे गए। एक में इस बात पर युक्ति और आग्रह प्रकट किया था कि केशव और दयानन्द कभी स्वर्ग

में स्थान न पावें और दूसरे में इसका वर्णन था कि स्वर्ग में इनको सर्वोत्तम स्थान दिया जाए।

ईश्वर ने दोनों दलों के डेप्यूटेशन को बुलाकर कहा, "बाबा अब तो तुम लोगों की 'सैल्फगवर्नमेंट' है। अब कौन हमको पूछता है, जो जिसके जी में आता है करता है। अब चाहे वेद क्या संस्कृत का अक्षर भी स्वप्न में भी न देखा हो पर धर्म विषय पर वाद करने लगते हैं। हम तो केवल अदालत या व्यवहार या स्त्रियों के शपथ खाने को ही मिलाए जाते हैं। किसी को हमारा डर है? कोई भी हमारा सच्चा 'लायक' है? भूत-प्रेत, ताजिया के इतना भी तो हमारा दरजा नहीं बचा। हमको क्या काम चाहे बैकुंठ में कोई आवे। हम जानते हैं कि चारों लड़कों (सनक आदि) ने पहले ही से चाल बिगाड़ दी है। क्या हम अपने विचारे जयविजय को फिर राक्षस बनवावें कि किसी का रोकटोक करें। चाहे सगुन मानो चाहे निर्गुन, चाहे द्वैत मानो चाहे अद्वैत, हम अब न बोलेंगे। तुम जानो स्वर्ग जाने।"

डेप्यूटेशन वाले परमेश्वर की ऐसी कुछ खिजलाई हुई बात सुनकर कुछ डर गए। बड़ा निवेदन-सिवेदन किया। किसी प्रकार परमेश्वर का रोष शांत हुआ। अंत में परमेश्वर ने इस विषय के विचार के हेतु एक 'सिलेक्टकमेटी' की स्थापना की। इसमें राजा राममोहन राय, व्यासदेव, टोडरमल, कबीर प्रभृति भिन्न-भिन्न मत के लोग चुने गए। मुसलमानी-स्वर्ग से एक 'इमाम', क्रिस्तानी से 'लूथर', जैनी से पारसनाथ, बौद्धों से नागार्जुन और अफ्रीका से सिटोवायों के बाप को इस कमेटी का 'एक्स अफीशियो मेंबर' नियुक्त किया। रोम के पुराने 'हरकुलिस' प्रभृति देवता तो अब गृह-संन्यास लेकर स्वर्ग ही में रहते हैं और पृथ्वी से अपना संबंध मात्र छोड़ बैठे हैं, तथा पारसियों के 'जरदुश्तजी' को 'कारेस्पांडिग आनरेरी मेंबर' नियत किया और आज्ञा दी कि तुम लोग इस सब कागज-पत्र देखकर हमको रिपोर्ट करो। उनकी ऐसी भी गुप्त आज्ञा थी कि एडिटरों की आत्मागण को तुम्हारी किसी 'कार्रवाई' का समाचार तब तक न मिले जब तक कि रिपोर्ट हम न पढ़ लें, नहीं ये व्यर्थ चाहे कोई सुने चाहे न सुने अपनी टॉय-टॉय मचा ही देंगे।

सिलेक्ट कमेटी का कोई अधिवेशन हुआ। सब कागज-पत्र देखे गए। दयानन्दी और केशवी ग्रंथ तथा उनके अनेक प्रत्युत्तर और बहुत से समाचार पत्रों का मुलाहिजा हुआ। बालशास्त्री प्रभृति कई कंसरवेटिव और द्वारकानाथ प्रभृति लिबरल नव्य आत्मागणों की इसमें साक्षी ली गई। अंत में कमेटी या कमीशन ने जो रिपोर्ट की उसकी मर्म बात यह थी कि :

हम लोगों की इच्छा न रहने पर भी प्रभु की आज्ञानुसार हम लोगों ने इस मुकदमे के सब कागज-पत्र देखे। हम लोगों ने इन दोनों मनुष्यों के विषय में जहां तक समझा और सोचा है निवेदन करते हैं। हम लोगों की सम्मति में इन दोनों पुरुषों ने प्रभु की मंगलमयी सृष्टि का कुछ विघ्न नहीं किया वरंच उसमें सुख और संतति अधिक हो इसी में परिश्रम

किया। जिस चंडाल रूपी आग्रह और कुरीति के कारण मनमाना पुरुष धर्मपूर्वक न पाकर लाखों स्त्री कुमार्ग गामिनी हो जाती हैं, लाखों विवाह होने पर भी जन्मभर सुख नहीं भोगने पातीं, लाखों गर्भ नाश होते और लाखों ही बाल-हत्या होती हैं, उस पापमयी परम नृशंस रीति को इन लोगों ने उठा देने में शक्यभर परिश्रम किया। जन्मपत्री की विधि के अनुग्रह से जब तक स्त्री पुरुष जिएं एक तीर घाट एक मीर घाट रहें, बीच में इस वैमनस्य और असंतोष के कारण स्त्री व्यभिचारिणी, पुरुष विषयी हो जाएं, परस्पर नित्य कलह हो, शांति स्वप्न में भी न मिले, वंश न चले, यह उपद्रव इन लोगों से नहीं सहे गए। विधवा गर्भ गिरावै, पंडित जी या बाबू साहब यह सह लेंगे, वरंच चुपचाप उपाय भी करा देंगे, पाप को नित्य छिपाएंगे, अंततोगत्वा निकल ही जाएं तो संतोष करेंगे, इस दोष को इन दोनों ने निःसंदेह दूर करना चाहा। सवर्ण पात्र न मिलने से कन्या को वर मूर्ख अंधा वरंच नपुंसक मिले तथा वर को काली कर्कशा कन्या मिले जिसके आगे बहुत बुरे परिणाम हों, इस दुराग्रह को इन लोगों ने दूर किया। चाहे पढ़े हों चाहे मूर्ख, सुपात्र हो कि कुपात्र, चाहे प्रत्यक्ष व्यभिचार करें या कोई भी बुरा कर्म करें, पर गुरु जी हैं, पंडित जी हैं, इनका दोष मत कहो, कहोगे तो पतित होगे, इनको दो, इनको राजी रखो; इन सत्यानाशी संस्कारों को इन्होंने दूर किया। आर्य जाति दिन-दिन ह्रास हो, लोग स्त्री के कारण, धन, नौकरी, व्यापार आदि के लोभ से, मद्यान के चसके से, बाद में हार कर राजकीय विद्या का अभ्यास करके मुसलमान या क्रिस्तान हो जाएं, आमदनी एक मनुष्य की भी बाहर से न हो केवल नित्य व्यय हो, अंत में आर्यों का धर्म और जाति कथाशेष रह जाए, किंतु जो बिगड़ा सो बिगड़ा फिर जाति में कैसे आवेगा, कोई भी दुष्कर्म किया तो छिपके क्यों नहीं किया, इसी अपराध पर हजारों मनुष्य आर्य पंक्ति से हर साल छूटते थे, उसको इन्होंने रोका। सबसे बढ़ कर इन्होंने यह कार्य किया, सारा आर्यवर्त जो प्रभु से विमुख हो रहा था, देवता बिचारे तो दूर रहे, भूत-प्रेत-पिशाच-मुरदे, सांप के काटे, बाघ के मारे, आत्महत्या करके मरे, जल, दब या डूबकर मरे लोग, यही नहीं, औलिया शहीद और ताजिया गाजीमियां, को मानने और पूजने लग गए थे, विश्वास तो मानो छिनाल का अंग हो रहा था, देखते-सुनते लज्जा आती थी कि हाय ये कैसे आर्य हैं, किससे उत्पन्न हैं, इस दुराचार की ओर से लोगों का अपनी वक्तृताओं के थपेड़े के बल से मुंह फेरकर सारे आर्यावर्त को शुद्ध 'लायल' कर दिया।

भीतरी चरित्र में इन दोनों के जो अंतर हैं वह भी निवेदन कर देना उचित है। दयानन्द की दृष्टि हम लोगों की बुद्धि में अपनी प्रसिद्ध पर विशेष रही। रंग-रूप भी इन्होंने कई बदले। पहले केवल भागवत का खंडन किया। फिर सब पुराणों का। फिर कई ग्रंथ माने, कई छोड़े। अपने काम के प्रकरण माने, अपने विरुद्ध को क्षेपक कहा। पहले दिगंबर मिट्टी पोते महात्यागी थे। फिर संग्रह करते-करते सभी वस्त्र धारण किए। भाष्य में भी रेल, तार आदि कई अर्थ जबरदस्ती किए। इसी से संस्कृत विद्या को भली-भांति न जानने वाले ही

प्रायः इनके अनुयायी हुए। जाल को छुरी से न काटकर दूसरे जाल ही से जिसको काटना चाहा इसी से दोनों आपस में उलझ गए और इसका परिणाम गृह-विच्छेद उत्पन्न हुआ।

"केशव ने इनके विरुद्धं जाल काटकर परिष्कृत पथ प्रकट किया। परमेश्वर से मिलने-मिलाने की आड़ या बहाना नहीं रखा। अपनी शक्ति की उच्छलित लहरों में लोगों का चित्त आर्द्र कर दिया। यद्यपि ब्राह्मण लोगों में सुरा-मांसादि का प्रचार विशेष है किंतु इसमें केशव का दोष नहीं। केशव अपने अटल विश्वास पर खड़ा रहा। यद्यपि कूचिबिहार के संबंध करने से और यह कहने से कि ईशामसीह आदि उससे मिलते हैं, अंतावस्था के कुछ पूर्व उनके चित्त की दुर्बलता प्रकट हुई थी, किंतु वह एक प्रकार का उन्माद होगा वा जैसे बहुतेरे धर्म प्रचारकों ने बहुत बड़ी बातें ईश्वर की आज्ञा बतला दीं वैसे ही यदि इन बेचारों ने एक-दो बात कही तो क्या पाप किया। पूर्वोक्त कारणों ही से केशव का मरने पर जैसा सारे संसार में आदर हुआ वैसा दयानन्द का नहीं हुआ। इसके अतिरिक्त इन लोगों के हृदय में भीतर छिपा कोई पुण्य-पाप रहा हो तो उसको हम लोग नहीं जानते, इसका जानने वाला केवल तू ही है।"

इस रिपोर्ट पर विदेशी मेंबरों ने कुछ क्रुद्ध होकर हस्ताक्षर नहीं किया।

रिपोर्ट परमेश्वर के पास भेजी गई। इसको देखकर इस पर क्या आज्ञा हुई और वे लोग कहां भेजे गए यह जब हम भी वहां जाएंगे और फिर लौटकर आ सकेंगे तो पाठक लोगों को बतलावेंगे या आप लोग कुछ दिन पीछे आप ही जानोगे।

उपाधि

प्रतापनारायण मिश्र

यद्यपि जगत में और भी अनेक प्रकार की आधि-व्याधि है पर उपाधि सबसे भारी छूत है। सब आधि-व्याधि यत्न करने तथा ईश्वरेच्छा से टल भी जाती हैं पर यह ऐसी आपदा है कि मरने ही पर छूटती है। सो भी क्या छूटती है, नाम के साथ अवश्य लगी रहती है। हां, यह कहिए सताती नहीं है। यदि मरने के पीछे भी आत्मा को कुछ करना-धरना तथा आना-जाना या भोगना पड़ता होगा तो हम जानते हैं उस दशा में भी यह रांड पीछा ना छोड़ती होगी। दूसरी आपदा छूट जाने पर तन और मन प्रसन्न हो जाते हैं, पर यह ऐसा गुड़भरा हंसिया है कि न उगलते बने न निगलते बने। उपाधि लग जाने पर उसका छुड़ाना कठिन है। यदि छूट जाए तो जीवन को दुखमय कर दे। संसार में थुड़ू-थुड़ू हो और बनी रहे तो उसका नाम भी उपाधि है। हमारे कनौजिया भाइयों में आज विद्या, बल, धन इत्यादि कोई बात बाकी नहीं रही, केवल उपाधि ही मात्र शेष रही है। ककहरा भी नहीं जानते पर द्विवेदी, चतुर्वेदी, त्रिवेदी, त्रिपाठी आदि उपाधि बनी है। पर इन्हीं के अनुरोध से बहुतेरे उन्नति के कामों से वंचित हो रहे हैं। न विलायत जा सके न एक-दूसरे के साथ खा सके, न छोटा-मोटा काम करके घर का दारिद्रय् मिटा सके। परमेश्वर न करे, यदि इस दीन दशा में कोई कन्या हो गई तो और भी कोढ़ में खाज हुई। घर में धन न ठहरा, बिना धन बेटी का ब्याह होना कठिन है। उतर के ब्याह दें तो नाक कटती है। न ब्याहें तो इज्जत, धर्म, पुरुषों के नाम में बट्टा लगने का डर है। यह सब आफतें केवल उपाधि के कारण हैं। शास्त्रों में पढ़ाने वाले को उपाध्याय कहते हैं। यह पद बहुत बड़ा है पर उपाधि और उपाध्याय दोनों शब्द बहुत मिलते हैं, इससे हमारी जाति में उपाध्याय एक नीच पदवी (धाकर) मान ली गई है। इस नाम के मेल की बदौलत एक जाति को नीच बनना पड़ा। पर नीच बने भी छुटकारा नहीं है। वे धाकर हैं, उन्हें बेटी ब्याहने में और भी रुपया चाहिए। वरंच बेटा ब्याहने के लिए भी कुछ देना ही पड़ता है। यह दुहरा घाटा केवल उपाधि के नाम का फल है। हमारे बंगाली भाई भी कानकुब्ज कुल ही के हैं पर उन्होंने मुखोपाध्याय, चट्टोपाध्याय इत्यादि नामों में देखा कि उपाधि लगी है, कौन जाने किसी दिन कोई उपाधि खड़ी कर दे इससे बुद्धिमानी करके नाम ही बदल डालें; मुकर्जी, चटर्जी आदि बन गए। यह बात

कुछ कनौजियों ही पर नहीं है, जिसके नाम में उपाधि लगी होगी उसी को सदा उपाधि लगी रहेगी। आज आप पंडित जी, बाबू जी, लाला जी, शेख जी आदि कहलाते हैं, बड़े आनंद में हैं। चार जजमानों को आशीर्वाद दे आया कीजिए या छोटा-मोटा धंधा या दस-पांच की नौकरी कर लिया कीजिए, परमात्मा खाने पहिनने को देता रहेगा। खाइए, पहनिए, पांव पसार कर सोइए, न ऊधव के लेने न माधव के देने। पर यदि प्रज्ञा, विद्यासागर, बी.ए, एम.ए. आदि की उपाधि चाहनी हो तो किसी कालेज में नाम लिखाइए, परदेश जाइए, 'नींद नारि भोजन परिहरहीं' का नमूना बनिए, पांच-सात बरस में उपाधि मिल जाएगी। घर में चाहे खाने को न हो पर बाहर बाबू बनके निकलना पड़ेगा। चाहे भूखों मरिए पर धंधा कोई न कर सकिएगा। नौकरी भी जब आप के लायक मिलेगी तभी करना नहीं तो बात गए कुछ हाथ नहीं है। एक प्रकार की उपाधि सरकार से मिलती है। यदि उसकी भूख हो तो हाकिमों की खुशामद तथा गौरांगदेव की उपासना में कुछ दिन तक तन, मन, धन से लगे रहिए। कभी आप के नाम में भी सी.एस.आई. अथवा ए.बी.सी. से किसी अक्षर का पुछल्ला लग जाएगा अथवा राजा, रायबहादुर, खां बहादुर अथवा महामहोपाध्याय की उपाधि लग जाएगी। पर यह न समझिए कि राजा कहलाने के साथ कहीं की गद्दी भी मिल जाएगी अथवा सचमुच के राजा आपको कुछ गनै गूंथैंगे। हां, मन में समझे रहिए कि हम भी कुछ हैं, पर उपाधि की रक्षा के लिए कपड़ा-लत्ता, चेहरा-मुहरा, सवारी-शिकारी, हजूर की खातिरदारी आदि में घर के धान पयार में मिलाने पड़ेंगे। अपने धर्म, कर्म, देश, जाति आदि से फिरंट रहना पड़ेगा, क्योंकि अब तो आपके पीछे उपाधि लग गई है! इसी से कहते हैं, उपाधि का नाम बुरा। उपाधि पाना अच्छा है सही पर ऐसा ही अच्छा है जैसा बैकुंठ जाना, पर गधे पर चढ़ के!

विदाई संभाषण

बालमुकुन्द गुप्त

माइ लार्ड! अंत को आपके शासन-काल का इस देश में अंत हो गया। अब आप इस देश से अलग होते हैं। इस संसार में सब बातों का अंत है। इससे आपके शासन-काल का भी अंत होता, चाहे आपकी एक बार की कल्पना के अनुसार आप यहां के चिरस्थायी वाइसराय भी हो जाते। किंतु इतनी जल्दी वह समय पूरा हो जाएगा, ऐसा विचार न आप ही का था, न इस देश के निवासियों का। इससे जान पड़ता है कि आपके और यहां के निवासियों के बीच में कोई तीसरी शक्ति और भी है, जिस पर यहां वालों का तो क्या, आपका भी काबू नहीं है।

बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पादक होता है। आपको बिछड़ते देखकर आज हृदय में बड़ा दुःख है। माइ लार्ड! आपके दूसरी बार इस देश में आने से भारतवासी किसी प्रकार प्रसन्न न थे। वे यही चाहते थे कि आप फिर न आवें। पर आप आए और उससे यहां के लोग बहुत ही दुःखित हुए। वे दिन-रात यही मानते थे कि जल्द श्रीमान यहां से पधारें। पर अहो! आज आपके जाने पर हर्ष की जगह विषाद होता है। इसी से जाना कि बिछड़न-समय बड़ा करुणोत्पादक होता है, बड़ा पवित्र, बड़ा निर्मल और बड़ा कोमल होता है। वैर-भाव छूटकर शांत रस का आविर्भाव उस समय होता है।

माइ लार्ड का देश देखने का इस दीन ब्राह्मण को कभी इस जन्म में सौभाग्य नहीं हुआ। इससे नहीं जानता कि वहां बिछड़ने के समय लोगों का क्या भाव होता है। पर इस देश के पशु-पक्षियों को भी बिछड़ने के समय उदास देखा है। एक बार शिवशम्भु के दो गाएं थीं। उनमें एक अधिक बलवाली थी। वह कभी-कभी अपने सींगों की टक्कर से दूसरी कमजोर गाय को गिरा देती थी। एक दिन वह टक्कर मारने वाली गाय पुरोहित को दे दी गई। देखा कि दुर्बल गाय उसके चले जाने से प्रसन्न नहीं हुई, वरंच उस दिन वह भूखी खड़ी रही, चारा छुआ तक नहीं। माइ लार्ड! जिस देश के पशुओं की बिछड़ते समय यह दशा होती है, वहां मनुष्यों की कैसी दशा हो सकती है, इसका अंदाज लगाना कठिन नहीं है।

आगे भी इस देश में जो प्रधान शासक आए, अंत को उनको जाना पड़ा। इससे आपका

जाना भी परंपरा की चाल से कुछ अलग नहीं है, तथापि आपके शासन-काल का नाटक घोर दुःखांत है, और अधिक आश्चर्य की बात यह है कि दर्शक तो क्या, स्वयं सूत्रधार भी नहीं जानता था कि उसने जो खेल सुखांत समझकर खेलना आरंभ किया था, वह दुखांत हो जावेगा। जिसके आदि में सुख था, मध्य में सीमा से बाहर सुख था, उसका अंत ऐसे घोर दुःख के साथ कैसे हुआ। आह! घमंडी खिलाड़ी समझता है कि दूसरों को अपनी लीला दिखाता हूं। किंतु पर्दे के पीछे एक और ही लीलामय की लीला हो रही है, यह उसे खबर नहीं!

इस बार बम्बई में उतरकर माई लार्ड! आपने जो इरादे जाहिर किए थे, जरा देखिए तो उनमें से कौन-कौन पूरे हुए? आपने कहा था कि यहां से जाते समय भारतवर्ष को ऐसा कर जाऊंगा कि मेरे बाद आने वाले बड़े लाटों को वर्षों तक कुछ करना न पड़ेगा, वे कितने ही वर्षों सुख की नींद सोते रहेंगे। किंतु बात उलटी हुई। आपको स्वयं इस बार बेचैनी उठानी पड़ी है और इस देश में जैसी अशांति आप फैला चले हैं, उसके मिटाने में आपके पद पर आने वालों को न जाने कब तक नींद और भूख हराम करना पड़ेगा। इस बार आपने अपना बिस्तरा गर्म राख पर रखा है और भारतवासियों को गर्म तवे पर पानी की बूंदों की भांति नचाया है। आप स्वयं भी खुश न हो सके और यहां की प्रजा को सुखी न होने दिया, इसका लोगों के चित्त पर बड़ा ही दुःख है।

विचारिए तो क्या शान आपकी इस देश में थी और अब क्या हो गई! कितने ऊंचे होकर आप कितने नीचे गिरे! अलिफलैला के अलहदीन ने चिराग रगड़कर और अबुलहसन ने बगदाद के खलीफा की गद्दी पर आंख खोलकर वह शान न देखी, जो दिल्ली-दरबार में आपने देखी। आपकी और आपकी लेडी की कुर्सी सोने की थी और आपके प्रभु महाराज के छोटे भाई और उनकी पत्नी की चांदी की। आप दाहिने थे, वह बाएं, आप प्रथम थे, वह दूसरे। इस देश के सब रईसों ने आपको सलाम पहले किया और बादशाह के भाई को पीछे। जुलूस में आपका हाथी सबसे आगे और सबसे ऊंचा था; हौदा, चंवर, छत्र आदि सबसे बढ़-चढ़कर थे। सारांश यह है कि ईश्वर और महाराज एडवर्ड के बाद इस देश में आप ही का एक दर्जा था। किंतु अब देखते हैं कि जंगी लाट के मुकाबले में आपने पटखनी खाई, सिर के बल नीचे आ रहे! आपके स्वदेश में वही ऊंचे माने गए आपको साफ नीचा देखना पड़ा! पद-त्याग की धमकी से भी ऊंचे न हो सके।

आप बहुत धीर-गंभीर प्रसिद्ध थे। उस सारी धीरता-गंभीरता का आपने इस बार कौंसिल में बेकानूनी कानून पास करते और कनवोकेशन वक्तृता देते समय दिवाला निकाल दिया। यह दिवाला तो इस देश में हुआ। उधर विलायत में आपके बार-बार इस्तीफा देने की धमकी ने प्रकाश कर दिया कि जड़ हिल गई है। अंत में वहां भी आपको दिवालिया होना पड़ा और धीरता-गंभीरता के साथ दृढ़ता को भी तिलांजलि देनी पड़ी। इस देश के हाकिम

आपकी ताल पर नाचते थे, राजा-महाराजा डोरी हिलाने से सामने हाथ बांधे हाजिर होते थे। आपके एक इशारे में प्रलय होती थी। कितने ही राजों को मट्टी के खिलौने की भांति आपने तोड़-फोड़ डाला। कितने ही मट्टी-काठ के खिलौने आपकी कृपा के जादू से बड़े-बड़े पदाधिकारी बन गए। आपके इस इशारे में इस देश की शिक्षा पायमाल हो गई, स्वाधीनता उड़ गई। बंग देश के सिर पर आरह रखा गया। आह, इतने बड़े माइ लार्ड का यह दर्जा हुआ कि फौजी अफसर उनके इच्छित पद पर नियत न हो सका और उनको उसी गुस्से के मारे इस्तीफा दाखिल करना पड़ा, वह भी मंजूर हो गया। उनका रखाया एक आदमी नौकर न रखा उल्टा उन्हीं को निकल जाने का हुक्म मिला!

जिस प्रकार आपका बहुत ऊंचे चढ़कर गिरना यहां के निवासियों को दुखित कर रहा है, गिरकर पड़ा रहना उससे भी अधिक दुःखित करता है। आपका पद छूट गया तथापि आपका पीछा नहीं टूटा है। एक अदना क्लर्क जिसे नौकरी छोड़ने के लिए एक महीने का नोटिस मिल गया हो नोटिस की अवधि को बड़ी घृणा से काटता है। आपको इस समय अपने पद पर रहना कहां तक पसंद है यह आप ही जानते होंगे। अपनी दशा पर आपको कैसी घृणा आती है, इस बात के जान लेने का इन देश के वासियों को अवसर नहीं मिला पर पतन के पीछे इतनी उलझन में पड़ते उन्होंने किसी को नहीं देखा।

माई लार्ड, एक बार अपने कामों की ओर ध्यान दीजिए। आप किस काम को आए थे और क्या कर चले। शासक-प्रजा के प्रति कुछ तो कर्तव्य होता है, यह बात आप निश्चित मानते होंगे। सो कृपा करके बतलाइए, क्या कर्तव्य आप इस देश की प्रजा के साथ पालन कर चले! क्या आंख बंद करके मनमाने हुक्म चलाना और किसी की कुछ न सुनने का नाम ही शासन है? क्या प्रजा की बात पर कभी कान न देना और उसको दबाकर उसकी मर्जी के विरुद्ध जिद्द से सब काम किए चले जाना ही शासन कहलाता है? एक काम तो ऐसा बतलाइए जिसमें आपने जिद्द छोड़कर प्रजा की बात पर ध्यान दिया हो। कैसर और ज़ार भी घेरने-घोटने से प्रजा की बात सुन लेते हैं पर आप एक मौका तो बताइए, जिसमें किसी अनुरोध या प्रार्थना सुनने के लिए प्रजा के लोगों को आपने अपने निकट फटकने दिया हो और उनकी बात सुनी हो। नादिरशाह ने जब दिल्ली में कत्लेआम किया तो आसिफजाह के तलवार गले में डालकर प्रार्थना करने पर उसने कत्लेआम उसी दम रोक दिया। पर आठ करोड़ प्रजा के गिड़गिड़ाकर विच्छेद न करने की प्रार्थना पर आपने जरा भी ध्यान नहीं दिया। इस समय आपकी शासन-अवधि पूरी हो गई है तथापि बंग विच्छेद किए बिना घर जाना आपको पसंद नहीं है! नादिर से भी बढ़कर आपकी जिद्द है। क्या समझते हैं कि आपकी जिद्द से प्रजा के जी में दुःख नहीं होता? आप विचारिए तो एक आदमी को आपके कहने पर पद न देने से आप नौकरी छोड़े जाते हैं, इस देश की प्रजा को भी यदि कहीं जाने की जगह होती, तो क्या वह नाराज होकर इस देश

को छोड़ न जाती?

यहां की प्रजा ने आपकी जिद्द का फल यहीं देख लिया। उसने देख लिया कि आपकी जिस जिद्द ने इस देश की प्रजा को पीड़ित किया आपको भी उसने कम पीड़ा न दी, यहां तक कि आप स्वयं उसका शिकार हुए। यहां की प्रजा वह प्रजा है, जो अपने दुःख और कष्टों की अपेक्षा परिणाम का अधिक ध्यान रखती है। वह जानती है कि संसार में सब चीजों का अंत है। दुःख का समय भी एक दिन निकल जावेगा, इसी से सब दुःखों को झेलकर, पराधीनता सहकर भी वह जीती है। माई लार्ड! इस कृतज्ञता की भूमि की महिमा आपने कुछ न समझी और न यहां की दीन प्रजा की श्रद्धा-भक्ति अपने साथ ले जा सके, इसका बड़ा दुःख है।

इस देश के शिक्षितों को तो देखने की आपकी आंखों को ताब नहीं। अनपढ़-गूंगी प्रजा का नाम कभी-कभी आपके मुंह से निकल जाया करता है। उसी अनपढ़ प्रजा में नर सुलतान नाम के एक राजकुमार का गीत गाया जाता है। एक बार अपनी विपद के कई साल सुलतान ने नरवरगढ़ नाम के एक स्थान में काटे थे। वहां चौकीदारी से लेकर उसे एक ऊंचे पद तक काम करना पड़ा था। जिस दिन घोड़े पर सवार होकर वह उस नगर से विदा हुआ, नगर-द्वार से बाहर आकर उस नगर को जिस रीति से उसने अभिवादन किया था, वह सुनिए। उसने आंखों में आंसू भरकर कहा, "प्यारे नरवरगढ़! मेरा प्रणाम ले। आज मैं तुझसे जुदा होता हूं। तू मेरा अन्नदाता है। अपनी विपद के दिन मैंने तुझमें काटे हैं। तेरे ऋण का बदला मैं गरीब सिपाही नहीं दे सकता। भाई नरवरगढ़! यदि मैंने जानबूझकर एक दिन भी अपनी सेवा में चूक की हो, यहां की प्रजा की शुभ चिंता न की हो, यहां की स्त्रियों को माता और बहन की दृष्टि से न देखा हो तो मेरा प्रणाम न ले, नहीं तो प्रसन्न होकर एक बार मेरा प्रणाम ले और मुझे जाने की आज्ञा दे!" माई लार्ड! जिस प्रजा में ऐसे राजकुमार का गीत गाया जाता है, उसके देश से क्या आप भी चलते समय कुछ संभाषण करेंगे? क्या आप कह सकेंगे, "अभागे भारत! मैंने तुझसे सब प्रकार का लाभ उठाया और तेरी बदौलत वह शान देखी जो इस जीवन में असंभव है। तूने मेरा कुछ नहीं बिगाड़ा; पर मैंने तेरे बिगाड़ने में कुछ कमी न की। संसार के सबसे पुराने देश! जब तक मेरे हाथ में शक्ति थी, तेरी भलाई की इच्छा मेरे जी में न थी। अब कुछ शक्ति नहीं है, जो तेरे लिए कुछ कर सकूं। पर आशीर्वाद करता हूं कि तू फिर उठे और अपने प्राचीन गौरव और यश को फिर से लाभ करे। मेरे बाद आने वाले तेरे गौरव को समझें।' आप कर सकते हैं और यह देश आपकी पिछली सब बातें भूल सकता है, पर इतनी उदारता माई लार्ड में कहां?

बड़े भाई साहब

प्रेमचन्द

मेरे भाई साहब मुझसे पांच साल बड़े थे; लेकिन तीन दर्जे आगे। उन्होंने भी उसी उम्र में पढ़ना शुरू किया था, जब मैंने शुरू किया; लेकिन तालीम जैसे महत्व के मामले में वे जल्दीबाजी से काम लेना पसंद न करते थे। इस भवन की बुनियाद खूब मजबूत डालना चाहते थे, जिस पर आलीशान महल बन सके। एक साल का काम दो साल में करते थे। कभी-कभी तीन साल भी लग जाते थे। बुनियाद ही पुख्ता न हो, तो मकान कैसे पाएदार बने!

मैं छोटा था, वे बड़े थे। मेरी उम्र नौ साल की, वे चौदह साल के थे। उन्हें मेरी तम्बीह और निगरानी का पूरा जन्मसिद्ध अधिकार था और मेरी शालीनता इसी में थी कि उनके हुक्म को कानून समझूं।

वे स्वभाव से बड़े अध्ययनशील थे। हरदम किताब खोले बैठे रहते और शायद दिमाग को आराम देने के लिए कभी कापी पर, कभी किताब के हाशियों पर चिड़ियों, कुत्तों, बिल्लियों की तस्वीरें बनाया करते थे। कभी-कभी एक ही नाम या शब्द या वाक्य दस-बीस बार लिख डालते। कभी एक शेर को बार-बार सुंदर अक्षरों से नकल करते। कभी ऐसी शब्द-रचना करते, जिसमें न कोई अर्थ होता, न कोई सामंजस्य! मसलन, एक बार उनकी कापी पर मैंने यह इबारत देखी—स्पेशल, अमीना, भाइयों-भाइयों, दर-असल, भाई-भाई, राधेश्याम, श्रीयुत राधेश्याम, एक घंटे तक—इसके बाद एक आदमी का चेहरा बना हुआ था। मैंने चेष्टा की कि इस पहेली का कोई अर्थ निकालूं; लेकिन असफल रहा और उनसे पूछने का साहस न हुआ। वे नवीं जमात में थे, मैं पांचवीं में। उनकी रचनाओं को समझना मेरे लिए छोटा मुंह बड़ी बात थी।

मेरा जी पढ़ने में बिल्कुल न लगता था। एक घंटा भी किताब लेकर बैठना पहाड़ था। मौका पाते ही होस्टल से निकलकर मैदान में आ जाता और कभी कंकरियां उछालता, कभी कागज की तितलियां उड़ाता, और कहीं कोई साथी मिल गया तो पूछना ही क्या! कभी चारदीवारी पर चढ़कर नीचे कूद रहे हैं कभी फाटक पर सवार, उसे आगे-पीछे चलाते हुए मोटरकार का आनंद उठा रहे हैं, लेकिन कमरे में आते ही भाई साहब का वह रौद्र रूप

देखकर प्राण सूख जाते। उनका पहला सवाल होता, "कहां थे?" हमेशा यही सवाल, इसी ध्वनि में पूछा जाता था और इसका जवाब मेरे पास केवल मौन था। न जाने मुंह से यह बात क्यों न निकलती कि जरा बाहर खेल रहा था। मेरा मौन कह देता था कि मुझे अपना अपराध स्वीकार है और भाई साहब के लिए इसके सिवा और कोई इलाज न था कि रोष से मिले हुए शब्दों में मेरा सत्कार करें।

"इस तरह अंग्रेजी पढ़ोगे, तो जिंदगी भर पढ़ते रहोगे और एक हर्फ न आएगा। अंग्रेजी पढ़ना कोई हंसी-खेल नहीं है कि जो चाहे पढ़ लें; नहीं तो ऐरा-गैरा नत्थू खैरा सभी अंग्रेजी के विद्वान हो जाते। यहां रात-दिन आंखें फोड़नी पड़ती हैं और खून जलाना पड़ता है, तब कहीं यह विद्या आती है। और आती क्या है, हां, कहने को आ जाती है। बड़े-बड़े विद्वान भी शुद्ध अंग्रेजी नहीं लिख सकते, बोलना तो दूर रहा। और मैं कहता हूं, तुम कितने घोंघा हो कि मुझे देखकर भी सबक नहीं लेते। मैं कितनी मेहनत करता हूं, यह तुम अपनी आंखों से देखते हो, अगर नहीं देखते, तो यह तुम्हारी आंखों का कसूर है, तुम्हारी बुद्धि का कसूर है। इतने मेले-तमाशे होते हैं, मुझे तुमने कभी देखने जाते देखा है? रोज ही क्रिकेट और हॉकी मैच होते हैं। मैं पास नहीं फटकता। हमेशा पढ़ता रहा हूं; उस पर भी एक-एक दर्जे में दो-दो, तीन-तीन साल पड़ा रहता हूं; फिर तुम कैसे आशा करते हो कि तुम यों खेल-कूद में वक्त गंवाकर पास हो जाओगे? मुझे तो दो-ही-तीन साल लगते हैं, तुम उम्रभर इसी दर्जे में पड़े सड़ते रहोगे! अगर तुम्हें इस तरह उम्र गंवानी है, तो बेहतर है, घर चले जाओ और मजे से गुल्ली-डंडा खेलो। दादा की गाढ़ी कमाई के रुपए क्यों बरबाद करते हो?"

मैं यह लताड़ सुनकर आंसू बहाने लगता। जवाब ही क्या था! अपराध तो मैंने किया, लताड़ कौन सहे? भाई साहब उपदेश की कला में निपुण थे। ऐसी-ऐसी लगती बातें कहते, ऐसे-ऐसे सूक्ति-वाण चलाते कि मेरे जिगर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते और हिम्मत छूट जाती। इस तरह जान तोड़कर मेहनत करने की शक्ति मैं अपने में न पाता था और उस निराशा में जरा देर के लिए मैं सोचने लगता—क्यों न घर चला जाऊं। जो काम मेरे बूते के बाहर है, उसमें हाथ डालकर क्यों अपनी जिंदगी खराब करूं? मुझे अपना मूर्ख रहना मंजूर था; लेकिन उतनी मेहनत से मुझे तो चक्कर आ जाता था। लेकिन घंटे-दो घंटे बाद निराशा के बादल फट जाते और मैं इरादा करता कि आगे से खूब जी लगाकर पढूंगा। चटपट एक टाइम-टेबिल बना डालता। बिना पहले से नक्शा बनाए, कोई स्कीम तैयार किए काम कैसे शुरू करूं? टाइम-टेबिल में खेल-कूद की मद बिलकुल उड़ जाती। प्रातःकाल उठना, छः से आठ तक अंग्रेजी, आठ से नौ तक हिसाब, नौ से साढ़े नौ तक इतिहास, फिर भोजन और स्कूल। साढ़े तीन बजे स्कूल से वापस होकर आधा घंटा आराम, चार से पांच तक भूगोल, पांच से छः तक ग्रामर, आध घंटा होस्टल के सामने टहलना, साढ़े छः से सात तक अंग्रेजी कम्पोजीशन, फिर भोजन करके आठ से नौ तक अनुवाद, नौ से दस तक हिन्दी,

दस से ग्यारह तक विविध विषय, फिर विश्राम।

मगर टाइम-टेबिल बना लेना एक बात है, उस पर अमल करना दूसरी बात। पहले ही दिन से उसकी अवहेलना शुरू हो जाती। मैदान की वह सुखद हरियाली, हवा के वह हलके-हलके झोंके, फुटबाल की उछल-कूद, कबड्डी के वह दांव-घात, वाली-बाल की वह तेजी और फुर्ती मुझे अज्ञात और अनिवार्य रूप से खींच ले जाती और वहां जाते ही मैं सब कुछ भूल जाता। वह जान-लेवा टाइम-टेबिल, वह आंखफोड़ पुस्तकें, किसी की याद न रहती, और फिर भाई साहब को नसीहत और फजीहत का अवसर मिल जाता। मैं उनके साये से भागता, उनकी आंखों से दूर रहने की चेष्टा करता। कमरे में इस तरह दबे पांव आता कि उन्हें खबर न हो! उनकी नजर मेरी ओर उठी और मेरे प्राण निकले। हमेशा सिर पर एक नंगी तलवार-सी लटकती मालूम होती। फिर भी जैसे मौत और विपत्ति के बीच में भी आदमी मोह और माया के बंधन में जकड़ा रहता है, मैं फटकार और घुड़कियां खाकर भी खेल-कूद का तिरस्कार न कर सकता।

2

सालाना इम्तहान हुआ। भाई साहब फेल हो गए, मैं पास हो गया और दर्जे में प्रथम आया। मेरे और उनके बीच केवल दो साल का अंतर रह गया। जी में आया, भाई साहब को आड़े हाथों लूं—आपकी वह घोर तपस्या कहां गई? मुझे देखिए, मजे से खेलता भी रहा और दर्जे में अव्वल भी हूं। लेकिन वे इतने दुःखी और उदास थे कि मुझे उनसे दिली हमदर्दी हुई और उनके घाव पर नमक छिड़कने का विचार ही लज्जास्पद जान पड़ा। हां, अब मुझे अपने ऊपर कुछ अभिमान हुआ और आत्माभिमान भी बढ़ा! भाई साहब का वह रोब मुझ पर न रहा। आजादी से खेल-कूद में शरीक होने लगा। दिल मजबूत था। अगर उन्होंने फिर मेरी फजीहत की, तो साफ कह दूंगा—आपने अपना खून जलाकर कौन-सा तीर मार लिया। मैं तो खेलते-कूदते दर्जे में अव्वल आ गया। जबान से यह हेकड़ी जताने का साहस न होने पर भी मेरे रंग-ढंग से साफ जाहिर होता था कि भाई साहब का वह आंतक मुझ पर नहीं है। भाई साहब ने इसे भांप लिया—उनकी सहज बुद्धि बड़ी तीव्र थी और एक दिन जब मैं भोर का सारा समय गुल्ली-डंडे की भेंट करके ठीक भोजन के समय लौटा, तो भाई साहब ने मानो तलवार खींच ली और मुझ पर टूट पड़े, "देखता हूं, इस साल पास हो गए और दर्जे में अव्वल आ गए, तो तुम्हें दिमाग हो गया है; मगर भाईजान, घमंड तो बड़े-बड़ों का नहीं रहा, तुम्हारी क्या हस्ती है? इतिहास में रावण का हाल तो पढ़ा ही होगा। उसके चरित्र से तुमने कौन-सा उपदेश लिया? या यों ही पढ़ गए? महज इम्तहान पास कर लेना कोई चीज नहीं, असल चीज है बुद्धि का विकास। जो कुछ पढ़ो, उसका अभिप्राय

समझो। रावण भूमंडल का स्वामी था। ऐसे राजों को चक्रवर्ती कहते हैं। आजकल अंग्रेजों के राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ है; पर इन्हें चक्रवर्ती नहीं कह सकते! संसार में अनेक राष्ट्र अंग्रेजों का आधिपत्य स्वीकार नहीं करते। बिलकुल स्वाधीन हैं। रावण चक्रवर्ती राजा था। संसार के सभी महीप उसे कर देते थे। बड़े-बड़े देवता उसकी गुलामी करते थे। आग और पानी के देवता भी उसके दास थे; मगर उसका अंत क्या हुआ? घमंड ने उसका नाम-निशान तक मिटा दिया, कोई उसे एक चुल्लू पानी देने वाला भी न बचा। आदमी जो कुकर्म चाहे करे; पर अभिमान न करे, इतराए नहीं। अभिमान किया और दीन-दुनिया से गया।

शैतान का हाल भी पढ़ा ही होगा। उसे यह अनुमान हुआ था कि ईश्वर का उससे बढ़कर सच्चा भक्त कोई है ही नहीं। अंत में यह हुआ कि स्वर्ग से नरक में ढकेल दिया गया। शाहेरूम ने भी एक बार अहंकार किया था। भीख मांग-मांगकर मर गया। तुमने तो अभी केवल एक दर्जा पास किया है और अभी से तुम्हारा सिर फिर गया, तब तो तुम आगे बढ़ चुके। यह समझ लो कि तुम अपनी मेहनत से नहीं पास हुए, अंधे के हाथ बटेर लग गई। मगर बटेर केवल एक बार हाथ लग सकती है, बार-बार नहीं। कभी-कभी गुल्ली-डंडे में भी अंधा चोट निशाना पड़ जाता है। इससे कोई सफल खिलाड़ी नहीं हो जाता। सफल खिलाड़ी वह है, जिसका कोई निशाना खाली न जाए।

मेरे फेल होने पर न जाओ। मेरे दर्जे में आओगे, तो दांतों पसीना आएगा जब अलजबरा और जामेट्री के लोहे के चने चबाने पड़ेंगे और इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा। बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं। आठ-आठ हेनरी हो गुजरे हैं। कौन-सा कांड किस हेनरी के समय हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो! हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवां लिखा और सब नंबर गायब! सफाचट। सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी! हो किस ख्याल में! दर्जनों तो जेम्स हुए हैं, दर्जनों विलियम, कोड़ियों चार्ल्स! दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुड़ते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, तेयम, चहारम, पंचम लगाते चले गए। मुझसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता।

जामेट्री तो बस खुदा की पनाह! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नंबर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फर्क है, और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो! दाल-भात रोटी खाई, इसमें क्या रखा है; मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह! वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है और आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढ़ने से क्या फायदा?

इस रेखा पर यह लंब गिरा दो, तो आधार लंब से दुगना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगना नहीं, चौगुना हो जाए या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी। कह दिया–'समय की पाबंदी' पर एक निबंध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। अब आप कापी सामने खोले, कलम हाथ में लिए, उसके नाम को रोइए।

कौन नहीं जानता कि समय की पाबंदी बहुत अच्छी बात है। इससे आदमी के जीवन में संयम आ जाता है, दूसरों का उस पर स्नेह होने लगता है और उसके कारोबार में उन्नति होती है; जरा-सी बात पर चार पन्ने कैसे लिखें? जो बात एक वाक्य में कही जा सके, उसे चार पन्ने में लिखने की जरूरत? मैं तो इसे हिमाकत समझता हूं। यह तो समय की किफायत नहीं, बल्कि उसका दुरुपयोग है कि व्यर्थ में किसी बात को ठूंस दिया। हम चाहते हैं, आदमी को जो कुछ कहना हो, चटपट कह दे और अपनी राह ले। मगर नहीं, आपको चार पन्ने रंगने पड़ेंगे, चाहे जैसे लिखिए और पन्ने भी पूरे फुलस्केप आकार के। यह छात्रों पर अत्याचार नहीं तो और क्या है? अनर्थ तो यह है कि कहा जाता है, संक्षेप में लिखो। समय की पाबंदी पर संक्षेप में एक निबंध लिखो, जो चार पन्नों से कम न हो। ठीक! संक्षेप में तो चार पन्ने हुए, नहीं शायद सौ-दो सौ पन्ने लिखवाते। तेज भी दौड़िए और धीरे-धीरे भी। है उल्टी बात या नहीं? बालक भी इतनी-सी बात समझ सकता है, लेकिन इन अध्यापकों को इतनी तमीज भी नहीं। उस पर दावा है कि हम अध्यापक हैं। मेरे दर्जे में आओगे लाला, तो ये सारे पापड़ बेलने पड़ेंगे और तब आटे-दाल का भाव मालूम होगा। इस दर्जे में अव्वल आ गए हो, तो जमीन पर पांव नहीं रखते। इसलिए मेरा कहना मानिए। लाख फेल हो गया हूं, लेकिन तुमसे बड़ा हूं, संसार का मुझे तुमसे ज्यादा अनुभव है। जो कुछ कहता हूं, उसे गिरह बांधिए, नहीं पछताएंगे।"

स्कूल का समय निकट था, नहीं ईश्वर जाने, यह उपदेश-माला कब समाप्त होती। भोजन आज मुझे निस्वाद-सा लग रहा था। जब पास होने पर यह तिरस्कार हो रहा है, तो फेल हो जाने पर तो शायद प्राण ही ले लिए जाएं। भाई साहब ने अपने दर्जे की पढ़ाई का जो भयंकर चित्र खींचा था, उसने मुझे भयभीत कर दिया। कैसे स्कूल छोड़कर घर नहीं भागा, यही ताज्जुब है; लेकिन इतने तिरस्कार पर भी पुस्तकों में मेरी अरुचि ज्यों-की-त्यों बनी रही। खेल-कूद का कोई अवसर हाथ से न जाने देता। पढ़ता भी था, मगर बहुत कम। बस, इतना कि रोज का टास्क पूरा हो जाए और दर्जे में जलील न होना पड़े। अपने ऊपर जो विश्वास पैदा हुआ था, वह फिर लुप्त हो गया और फिर चोरों का-सा जीवन कटने लगा।

3

फिर सालाना इम्तहान हुआ, और कुछ ऐसा संयोग हुआ कि मैं फिर पास हुआ और भाई साहब फिर फेल हो गए। मैंने बहुत मेहनत न की पर न जाने, कैसे दर्जे में अव्वल आ गया। मुझे खुद अचरज हुआ। भाई साहब ने प्राणांतक परिश्रम किया था। कोर्स का एक-एक शब्द चाट गए थे; दस बजे रात तक इधर, चार बजे भोर से उधर, छः से साढ़े नौ बजे तक स्कूल जाने के पहले। मुद्रा कांतिहीन हो गई थी, मगर बेचारे फेल हो गए। मुझे उन पर दया आती थी। नतीजा सुनाया गया, तो वह रो पड़े और मैं भी रोने लगा। अपने पास होने वाली खुशी आधी हो गई। मैं भी फेल हो गया होता, तो भाई साहब को इतना दुःख न होता, लेकिन विधि की बात कौन टाले?

मेरे और भाई साहब के बीच में अब केवल एक दर्जे का अंतर और रहा गया। मेरे मन में एक कुटिल भावना उदय हुई कि कहीं भाई साहब एक साल और फेल हो जाएं, तो मैं उनके बराबर हो जाऊं, फिर वह किस आधार पर मेरी फजीहत कर सकेंगे, लेकिन मैंने इस कमीने विचार को दिल से बलपूर्वक निकाल डाला। आखिर वे मुझे मेरे हित के विचार से ही तो डांटते हैं। मुझे इस वक्त अप्रिय लगता है अवश्य, मगर यह शायद उनके उपदेशों का ही असर हो कि मैं दनादन पास होता जाता हूं और इतने अच्छे नंबरों से।

अबकी भाई साहब बहुत कुछ नर्म पड़ गए थे। कई बार मुझे डांटने का अवसर पाकर भी उन्होंने धीरज से काम लिया। शायद अब वे खुद समझने लगे थे कि मुझे डांटने का अधिकार उन्हें नहीं रहा; या रहा तो बहुत कम। मेरी स्वच्छंदता भी बढ़ी। मैं उनकी सहिष्णुता का अनुचित लाभ उठाने लगा। मुझे कुछ ऐसी धारणा हुई कि मैं पास तो हो ही जाऊंगा, पढ़ूं या न पढ़ूं, मेरी तकदीर बलवान है, इसलिए भाई साहब के डर से जो थोड़ा-बहुत पढ़ लिया करता था, वह भी बंद हुआ। मुझे कनकौए उड़ाने का नया शौक पैदा हो गया था और अब सारा समय पतंगबाजी ही की भेंट होता था, फिर भी मैं भाई साहब का अदब करता था, और उनकी नजर बचाकर कनकौए उड़ाता था। मांझा देना, कन्ने बांधना, पतंग टूर्नामेंट की तैयारियां आदि समस्याएं सब गुप्त रूप से हल की जाती थीं। भाई साहब को यह संदेह न करने देना चाहता था कि उनका सम्मान और लिहाज मेरी नजरों में कम हो गया है।

एक दिन संध्या समय होस्टल से दूर मैं एक कनकौआ लूटने बेतहाशा दौड़ा जा रहा था। आंखें आसमान की ओर थीं और मन उस आकाशगामी पथिक की ओर, जो मंद गति से झूमता पतन की ओर चला जा रहा था, मानो कोई आत्मा स्वर्ग से निकलकर विरक्त मन से नए संस्कार ग्रहण करने जा रही हो। बालकों की एक पूरी सेना लग्गे और झाड़दार

बांस लिए उनका स्वागत करने को दौड़ी आ रही थी। किसी को अपने आगे-पीछे की खबर न थी। सभी मानो उस पतंग के साथ ही आकाश में उड़ रहे थे, जहां सब कुछ समतल है, न मोटरकारें हैं, न ट्राम, न गाड़ियां।

सहसा भाई साहब से मेरी मुठभेड़ हो गई, जो शायद बाजार से लौट रहे थे। उन्होंने वहीं मेरा हाथ पकड़ लिया और उग्रभाव से बोले, "इन बाजारी लौंडों के साथ धेले के कनकौए के लिए दौड़ते तुम्हें शर्म नहीं आती? तुम्हें इसका भी कुछ लिहाज नहीं कि अब नीची जमात में नहीं हो, बल्कि आठवीं जमात में आ गए हो और मुझसे केवल एक दरजा नीचे हो। आखिर आदमी को कुछ तो अपनी पोजीशन का ख्याल करना चाहिए। एक जमाना था कि लोग आठवां दरजा पास करके नायब तहसीलदार हो जाते थे। मैं कितने ही मिडलचियों को जानता हूं, जो आज अव्वल दर्जे के डिप्टी मजिस्ट्रेट या सुपरिंटेंडेंट हैं। कितने ही आठवीं जमात वाले हमारे लीडर और समाचार-पत्रों के संपादक हैं। बड़े-बड़े विद्वान उनकी मातहती में काम करते हैं और तुम उसी आठवें दर्जे में आकर बाजारी लौंडों के साथ कनकौए के लिए दौड़ रहे हो। मुझे तुम्हारी इस कमअकली पर दुःख होता है। तुम जहीन हो, इसमें शक नहीं; लेकिन वह जेहन किस काम का, जो हमारे आत्मगौरव की हत्या कर डाले? तुम अपने दिल में समझते होगे, मैं भाई साहब से महज एक दर्जा नीचे हूं और अब उन्हें मुझको कुछ कहने का हक नहीं है; लेकिन यह तुम्हारी गलती है। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूं और चाहे आज तुम मेरी ही जमात में आ जाओ—और परीक्षकों का यही हाल है, तो निस्संदेह अगले साल तुम मेरे समकक्ष हो जाओगे और शायद एक साल बाद तुम मुझसे आगे निकल जाओ—लेकिन मुझमें और तुममें जो पांच साल का अंतर है, उसे तुम क्या, खुदा भी नहीं मिटा सकता। मैं तुमसे पांच साल बड़ा हूं और हमेशा रहूंगा। मुझे दुनिया का और जिंदगी का जो तजरबा है, तुम उसकी बराबरी नहीं कर सकते, चाहे तुम एम.ए., डी.फिल. और डी.लिट. ही क्यों न हो जाओ। समझ किताबें पढ़ने से नहीं आती है। हमारी अम्मा ने कोई दरजा पास नहीं किया, और दादा भी शायद पांचवीं जमात के आगे नहीं गए, लेकिन हम दोनों चाहे सारी दुनिया की विद्या पढ़ लें, अम्मा और दादा को हमें समझाने और सुधारने का अधिकार हमेशा रहेगा। केवल इसलिए नहीं कि वे हमारे जन्मदाता हैं, बल्कि इसलिए कि उन्हें दुनिया का हमसे ज्यादा तजरबा है और रहेगा। अमेरिका में किस तरह की राज्य-व्यवस्था है, और आठवें हेनरी ने कितने विवाह किए और आकाश में कितने नक्षत्र हैं, यह बातें चाहे उन्हें न मालूम हों, लेकिन हजारों ऐसी बातें हैं, जिनका ज्ञान उन्हें हमसे और तुमसे ज्यादा है।

दैव न करे, आज मैं बीमार हो जाऊं, तो तुम्हारे हाथ-पांव फूल जाएंगे। दादा को तार देने के सिवा तुम्हें और कुछ न सूझेगा; लेकिन तुम्हारी जगह पर दादा हों, तो किसी को तार न दें, न घबराएं, न बदहवास हों। पहले खुद मरज पहचानकर इलाज करेंगे, उसमें

सफल न हुए तो किसी डाक्टर को बुलाएंगे। बीमारी तो खैर बड़ी चीज है। हम-तुम तो इतना भी नहीं जानते कि महीने भर का खर्च महीने भर कैसे चले। जो कुछ दादा भेजते हैं, उसे हम बीस-बाईस तक खर्च कर डालते हैं और पैसे-पैसे को मोहताज हो जाते हैं। नाश्ता बंद हो जाता है, धोबी और नाई से मुंह चुराने लगते हैं; लेकिन जितना आज हम और तुम खर्च कर रहे हैं, उसके आधे में दादा ने अपनी उम्र का बड़ा भाग इज्जत और नेकनामी के साथ निभाया है और एक कुटुंब का पालन किया है, जिसमें सब मिलाकर नौ आदमी थे। अपने हेडमास्टर साहब ही को देखो। एम.ए. हैं कि नहीं; और यहां के एम.ए. नहीं, आक्सफोर्ड के। एक हजार रुपए पाते हैं; लेकिन उनके घर इंतजाम कौन करता है? उनकी बूढ़ी मां। हेडमास्टर साहब की डिग्री यहां बेकार हो गई। पहले खुद घर का इंतजाम करते थे। खर्च पूरा न पड़ता था। करजदार रहते थे। जब से उनकी माताजी ने प्रबंध अपने हाथ में ले लिया है, जैसे घर में लक्ष्मी आ गई है। तो भाईजान, यह गरूर दिल से निकाल डालो कि तुम मेरे समीप आ गए हो और अब स्वतंत्र हो। मेरे देखते हुए बेराह नहीं चल पाओगे। अगर तुम यों न मानोगे, तो मैं (थप्पड़ दिखाकर) इसका प्रयोग भी कर सकता हूं। मैं जानता हूं, तुम्हें मेरी बातें जहर लग रही हैं।"

मैं उनकी इस नई युक्ति से नतमस्तक हो गया। मुझे आज सचमुच अपनी लघुता का अनुभव हुआ और भाई साहब के प्रति मेरे मन में श्रद्धा उत्पन्न हुई। मैंने सजल आंखों से कहा, "हरगिज नहीं। आप जो कुछ फरमा रहे हैं, वह बिल्कुल सच है और आपको कहने का अधिकार है।"

भाई साहब ने मुझे गले लगा लिया और बोले, "कनकौए उड़ाने को मना नहीं करता। मेरा जी भी ललचाता है, लेकिन क्या करूं, खुद बेराह चलूं तो तुम्हारी रक्षा कैसे करूं? यह कर्तव्य भी तो मेरे सिर पर है।"

संयोग से उसी वक्त एक कटा हुआ कनकौआ हमारे ऊपर से गुजरा। उसकी डोर लटक रही थी। लड़कों का एक गोल पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था। भाई साहब लंबे हैं ही, उछलकर उसकी डोर पकड़ ली और बेतहाशा होस्टल की तरफ दौड़े। मैं पीछे-पीछे दौड़ रहा था।

अकबरी लोटा

अन्नपूर्णानन्द वर्मा

लाला झाऊलाल को खाने-पीने की कमी नहीं थी। काशी के ठठेरी बाजार में मकान था। नीचे की दुकानों से 100 रुपया मासिक के करीब किराया उतर आता था। कच्चे-बच्चे अभी थे नहीं, सिर्फ दो प्राणी का खर्च था। अच्छा खाते थे, अच्छा पहनते थे। पर ढाई सौ रुपए तो एक साथ कभी आंख सेंकने के लिए भी न मिलते थे।

इसलिए जब उनकी पत्नी ने एक दिन यकायक ढाई सौ रुपए की मांग पेश की तब उनका जी एक बार जोर से सनसनाया और फिर बैठ गया। जान पड़ा कि कोई बुल्ला है जो बिलाने जा रहा है। उनकी यह दशा देखकर उनकी पत्नी ने कहा, "डरिए मत, आप देने में असमर्थ हों तो मैं अपने भाई से मांग लूं।"

लाला झाऊलाल इस मीठी मार से तिलमिला उठे। उन्होंने किंचित रोष के साथ कहा, "अजी हटो! ढाई सौ रुपए के लिए भाई से भीख मांगोगी? मुझसे ले लेना।"

"लेकिन मुझे इसी जिंदगी में चाहिए।"

"अजी इसी सप्ताह में ले लेना।"

"सप्ताह से आपका तात्पर्य सात दिन से है या सात वर्ष से?"

लाला झाऊलाल ने रोब के साथ खड़े होते हुए कहा, "आज से सातवें दिन मुझसे ढाई सौ रुपए ले लेना।"

"मर्द की एक बात!"

"हां, जी हां! मर्द की एक बात!"

लेकिन जब चार दिन यों-त्यों में यों ही बीत गए और रुपयों का कोई प्रबंध न हो सका तब उन्हें चिंता होने लगी। प्रश्न अपनी प्रतिष्ठा का था, अपने ही घर में अपनी साख का था। देने का पक्का वादा करके अब अगर न दे सके तो अपने मन में वह क्या सोचेगी? उसकी नजरों में उनका क्या मूल्य रह जाएगा? अपनी वाहवाही की सैकड़ों गाथाएं उसे सुना चुके थे। अब जो एक काम पड़ा तो चारों खाने चित्त हो रहे? यह पहली ही बार उसने मुंह खोलकर कुछ रुपयों का सवाल किया था। इस समय अगर वे दुम दबाकर निकल भागते हैं तो फिर उसे क्या मुंह दिखाएंगे? मर्द की एक बात—यह उसका फिकरा उनके

कानों में गूंज-गूंजकर फिर गूंज उठता था।

खैर, एक दिन और बीता। पांचवें दिन घबराकर उन्होंने पं. बिलवासी मिश्र को अपनी विपदा सुनाई। संयोग कुछ ऐसा बिगड़ा था कि बिलवासी जी भी उस समय बिलकुल खुक्ख थे। उन्होंने कहा कि मेरे पास हैं तो नहीं पर मैं कहीं से मांग-जांचकर लाने की कोशिश करूंगा, और अगर मिल गया तो कल शाम को तुमसे मकान पर मिलूंगा।

यह शाम आज थी। हफ्ते का अंतिम दिन। कल ढाई सौ रुपया या तो गिन देना है या सारी हेकड़ी से हाथ धोना है। यह सच है कि कल रुपया न पाने पर उनकी स्त्री डामल-फांसी न कर देगी—केवल जरा-सा हंस देगी। पर वह कैसी हंसी होगी! इस हंसी की कल्पना मात्र से लाला झाऊलाल की अंतरात्मा में मरोड़ पैदा हो जाता था।

अभी पं. बिलवासी मिश्र भी नहीं आए। आज ही शाम को उनके आने की बात थी। उन्हीं का भरोसा था। यदि न आए तो? या कहीं रुपए का प्रबंध वे न कर सके तो?

इसी उधेड़-बुन में पड़े हुए लाला झाऊलाल धुर छत पर टहल रहे थे। कुछ प्यास मालूम पड़ी। उन्होंने नौकर को आवाज दी। नौकर नहीं था। खुद उनकी पत्नी पानी लेकर आई। आप जानते ही हैं कि हिंदू समाज में स्त्रियों की कैसी शोचनीय अवस्था है! पति नालायक को प्यास लगती है तो स्त्री बेचारी को पानी लेकर हाजिर होना पड़ता है!

वे पानी तो जरूर लाईं पर गिलास लाना भूल गई थीं। केवल लोटे में पानी लिए हुए वे प्रकट हुईं। फिर लोटा भी संयोग से वह जो अपनी बेढंगी सूरत के कारण लाला झाऊलाल को सदा से नापसंद था। था तो नया, साल ही दो साल का बना, पर कुछ ऐसी गढ़न उस लोटे की थी कि जैसे उसका बाप डमरू और मां चिलमची रही हो।

लाला झाऊलाल ने लोटा ले लिया, वे कुछ बोले नहीं, अपनी पत्नी का वे अदब मानते थे। मानना ही चाहिए। इसी को सभ्यता कहते हैं। जो पति अपनी पत्नी की पत्नी न हुआ वह पति कैसा! फिर उन्होंने यह भी सोचा होगा कि लोटे में पानी हो तो तब भी गनीमत है—अभी अगर चूं कर देता हूं तो बालटी में जब भोजन मिलेगा तब क्या करना बाकी रह जाएगा।

लाला झाऊलाल अपना गुस्सा पीकर पानी पीने लगे। उस समय वे छत की मुंडेर के पास खड़े थे। जिन बुजुर्गों ने पानी पीने के संबंध में यह निमय बनाए थे कि खड़े-खड़े पानी न पियो, उन्होंने पता नहीं कभी यह भी नियम बनाया था या नहीं कि छत की मुंडेर के पास होकर पानी न पियो। जान पड़ता है इस महत्वपूर्ण विषय पर उन लोगों ने कुछ नहीं कहा है।

इसलिए लाला झाऊलाल ने कोई बुराई नहीं की और वे छत की मुंडेर के पास खड़े होकर पानी पीने लगे। पर मुश्किल से दो-एक घूंट वे पी पाए होंगे कि न जाने कैसे उनका हाथ हिल उठा और लोटा हाथ से छूट पड़ा।

लोटे ने न दाहिने देखा न बाएं, वह नीचे गली की ओर चल पड़ा। अपने वेग में उल्का को लजाता हुआ वह आंखों से ओझल हो गया। किसी जमाने में न्यूटन नाम के किसी खुराफाती ने पृथ्वी की आकर्षण शक्ति नाम की एक चीज ईजाद की थी। कहना न होगा कि यह सारी शक्ति इस समय इस लोटे के पक्ष में थी।

लाला झाऊलाल को काटो तो बदन में खून नहीं। ठठेरी बाजार ऐसी चलती हुई गली में, ऊंचे तिमंजिले से, भरे हुए लोटे का गिरना हंसी-खेल नहीं है। यह लोटा न जाने किस अधिकारी के खोपड़े पर काशी-वास का संदेश लेकर पहुंचेगा।

कुछ हुआ भी ऐसा ही। गली में जोर का हल्ला उठा। लाला झाऊलाल जब तक दौड़कर नीचे उतरे तब तक एक भारी भीड़ उनके आंगन में घुस आई।

लाला झाऊलाल ने देखा कि इस भीड़ में प्रधानपात्र एक अंग्रेज है जो नखशिख से भीगा हुआ है और जो अपने एक पैर को हाथ से सहलाता हुआ दूसरे पैर पर नाच रहा है। उसी के पास उस अपराधी लोटे को भी देखकर लाला झाऊलाल जी ने फौरन दो और दो जोड़कर स्थिति को समझ लिया। पूरा विवरण तो उन्हें पीछे प्राप्त हुआ।

हुआ था यह कि गली में गिरने के पूर्व लोटा एक दुकान के सायबान से टकरा गया। वहां टकराकर उस दुकान पर खड़े उस अंग्रेज को उसने सांगोपांग स्नान कराया और फिर उसी के बूट पर जा गिरा।

उस अंग्रेज को जब मालूम हुआ कि लाला झाऊलाल ही उस लोटे के मालिक हैं तब उसने केवल एक काम किया। अपने मुंह को उसने खोलकर खुला छोड़ दिया। लाला झाऊलाल को आज ही यह मालूम हुआ कि अंग्रेजी भाषा में गालियों का ऐसा प्रकांड कोश है।

इसी समय पं. बिलवासी मिश्र भीड़ को चीरते हुए आंगन में आते दिखाई पड़े। उन्होंने आते ही पहला काम यह किया कि एक कुर्सी आंगन में रखकर उन्होंने साहब से कहा, "आपके पैर में शायद कुछ चोट आ गई है। आप आराम से कुर्सी पर बैठ जाइए" दूसरा एक जरूरी काम यह किया कि जितने आदमी आंगन में घुस आए थे सबको निकाल बाहर किया।

साहब बिलवासी जी को धन्यवाद देते हुए बैठे और लाला झाऊलाल की ओर इशारा करके बोले, "आप इस शख्स को जानते हैं?"

"बिल्कुल नहीं और मैं ऐसे आदमी को जानना भी नहीं चाहता जो निरीह राह-चलतों पर लोटे से वार करे।"

"मेरी समझ में He is dangerous lunatic!"

(यानी, यह एक खतरनाक पागल है।)

"नहीं, मेरी समझ में He is a dangerous criminal!"

(नहीं, यह एक खतरनाक मुजरिम है।)

परमात्मा ने लाला झाऊलाल की आंखों को इस समय कहीं देखने के साथ खाने की भी शक्ति दी होती तो यह निश्चय है कि अब तक बिलवासी जी को वे अपनी आंखों से खा चुके होते। वे कुछ समझ नहीं पाते थे कि बिलवासी जी को इस समय हो क्या गया है।

साहब ने बिलवासी जी से पूछा, "तो अब क्या करना चाहिए?"

"पुलिस में इस मामले की रिपोर्ट कर दीजिए, जिससे यह आदमी फौरन हिरासत में ले लिया जाए।"

"पुलिस स्टेशन है कहां?"

"पास ही है, चलिए मैं बता दूं।"

"चलिए।"

"अभी चला। आपकी इजाजत हो तो पहले मैं इस लोटे को इस आदमी से खरीद लूं। क्यों जी! बेचोगे? मैं पचास रुपए तक इसका दाम दे सकता हूं।"

लाला झाऊलाल तो चुप रहे पर साहब ने पूछा, "इस रद्दी से लोटे का आप पचास रुपए दाम क्यों दे रहे हैं?"

"आप इस लोटे को रद्दी-सा बताते हैं? आश्चर्य है! मैं तो आपको एक विज्ञ और सुशिक्षित आदमी समझता था।"

"आखिर बात क्या है, कुछ बताइए भी?"

"यह जनाब! एक ऐतिहासिक लोटा जान पड़ता है मुझे। पूरा विश्वास है कि यह वह प्रसिद्ध अकबरी लोटा है, जिसकी तलाश में संसारभर के म्यूजियम परेशान हैं।"

"यह बात?"

"जी हां जनाब! सोलहवीं शताब्दी की बात है। बादशाह हुमायूं शेरशाह से हारकर भागा था और सिंध के रेगिस्तान में मारा-मारा फिर रहा था। एक अवसर पर प्यास से उसकी जान निकल रही थी। उस समय एक ब्राह्मण ने इसी लोटे से पानी पिलाकर उसकी जान बचाई थी। हुमायूं के बाद जब अकबर दिल्लीश्वर हुआ तब उसने उस ब्राह्मण का पता लगाकर उससे इस लोटे को ले लिया और इसके बदले में उसे इसी प्रकार के दस सोने के लोटे प्रदान किए। यह लोटा सम्राट अकबर को बहुत प्यारा था। इसी से इसका नाम अकबरी लोटा पड़ा, वह बराबर इसी से वजू करता था। सन् 57 तक इसके शाही घराने में ही रहने का पता है पर इसके बाद लापता हो गया। कलकत्ते के म्यूजियम में इसका प्लास्टर का मॉडेल रखा हुआ है। पता नहीं यह लोटा इस आदमी के पास कैसे आया। म्यूजियम वालों को पता चले तो फैंसी दाम देकर खरीद ले जाएं।"

इस विवरण को सुनते-सुनते साहब की आंखों पर लोभ और आश्चर्य का ऐसा प्रभाव

पड़ा कि वे कौड़ी के आकार से बढ़कर पकौड़ी के आकार के हो गए। उसने बिलवासी जी से पूछा, "तो आप इस लोटे को लेकर क्या करिएगा?"

"मुझे पुरानी और ऐतिहासिक चीजों के संग्रह करने का शौक है।"

"मुझे भी पुरानी और ऐतिहासिक चीजों के संग्रह करने का शौक है। जिस समय यह लोटा मेरे ऊपर गिरा उस समय मैं यही कर रहा था। उस दुकान पर से पीतल की कुछ पुरानी मूर्तियां खरीद रहा था।"

"जो कुछ हो लोटा तो मैं ही खरीदूंगा।"

"वाह, आप कैसे खरीदेंगे? मैं खरीदूंगा। मेरा हक है।"

"हक है?"

"जरूर हक है। यह बताइए कि उस लोटे के पानी से आपने स्नान किया या मैंने?

"आपने।"

"वह आपके पैर पर गिरा या मेरे?"

"आपके।"

"अंगूठा उसने आपका भुरता किया या मेरा?"

"आपका।"

"इसलिए उसे खरीदने का हक मेरा है।"

"यह सब झोल है। दाम लगाइए, जो अधिक दाम दे वह ले जाए।"

"यही सही। आप उसका पचास रुपया दे रहे थे, मैं सौ देता हूं।"

"मैं डेढ़ सौ देता हूं।"

"मैं दो सौ देता हूं।"

"अजी मैं ढाई सौ देता हूं।" यह कहकर बिलवासी जी ने ढाई सौ के नोट लाला झाऊलाल के आगे फेंक दिए।

साहब को भी अब ताव आ गया। उसने कहा, "आप ढाई सौ देते हैं तो मैं पांच सौ देता हूं। अब चलिए?"

बिलवासी जी अफसोस के साथ अपने रुपए उठाने लगे, मानो अपनी आशाओं की लाश उठा रहे हों। साहब की ओर देखकर उन्होंने कहा, "लोटा आपका हुआ, ले जाइए! मेरे पास ढाई सौ से अधिक हैं नहीं।"

यह सुनना था कि साहब के चेहरे पर प्रसन्नता की कूंची फिर गई। उसने झपटकर लोटा उठा लिया और बोला, "अब मैं हंसता हुआ अपने देश लौटूंगा। मेजर डगलस की डींग सुनते-सुनते मेरे कान पक गए थे।"

"मेजर डगलस कौन हैं?"

"मेजर डगलस मेरे पड़ोसी हैं। पुरानी चीजों के संग्रह करने में मेरी उनकी होड़ रहती

है। गत वर्ष वे हिंदुस्तान आए थे और यहां से जहांगीरी अंडा ले गए थे।"

"जहांगीरी अंडा?"

"जी हां जहांगीरी अंडा। मेजर डगलस ने समझ रखा था कि हिंदुस्तान से वे ही ऐसी चीजें ले जा सकते हैं।"

"पर जहांगीरी अंडा है क्या?"

"आप जानते होंगे कि एक कबूतर ने नूरजहां से जहांगीर का प्रेम कराया था। जहांगीर के पूछने पर कि मेरा एक कबूतर तुमने कैसे उड़ जाने दिया, नूरजहां ने उसके दूसरे कबूतर को भी उड़ाकर बताया था कि ऐसे। उसके इस भोलेपन पर जहांगीर सौ जान से निछावर हो गया; उसी क्षण से उसने अपने को नूरजहां के हाथ बै कर दिया। पर कबूतर का एहसान वह नहीं भूला। उसके एक अंडे को उसने बड़े जतन से रख छोड़ा। एक बिल्लौर की हांड़ी में वह उसके सामने टंगा रहता था। बाद में वही अंडा जहंागीरी अंडा के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी को मेजर डगलस ने परसाल दिल्ली में एक मुसलमान सज्जन से तीन सौ रुपए में खरीदा।"

"यह बात?"

"हां, पर अब वे मेरे आगे दूर की नहीं ले जा सकते। मेरा अकबरी लोटा उनके जहांगीरी अंडे से भी एक पुश्त पुराना है।"

साहब ने लाला झाऊलाल को पांच सौ रुपए देकर अपनी राह ली। लाला झाऊलाल का चेहरा इस समय देखते बनता था। जान पड़ता था कि मुंह पर छः दिन की बढ़ी हुई दाढ़ी के एक-एक बाल मारेप्रसन्नता के लहरा रहे हैं। उन्होंने पूछा, बिलवासी जी! आप मेरे लिए ढाई सौ रुपया घर से लेकर चले थे? पर आपको मिला कहां से? आप के पास तो थे नहीं।"

"इस भेद को मेरे सिवा मेरा ईश्वर ही जानता है। आप उसी से पूछ लीजिए। मैं नहीं बताऊंगा।"

"पर आप चले कहां? अभी मुझे आपसे काम है, दो घंटे तक।"

"दो घंटे तक?"

"हां और क्या! अभी मैं आपकी पीठ ठोंककर शाबाशी दूंगा; एक घंटा इसमें लगेगा। फिर गले लगाकर धन्यवाद दूंगा; एक घंटा इसमें भी लग जाएगा।"

"अच्छा पहले अपने पांच सौ रुपए गिनकर सहेज लीजिए।"

रुपया अगर अपना हो तो उसे सहेजना एक ऐसा सुखद और सम्मोहक कार्य है कि मनुष्य उस समय सहज में ही तन्मयता प्राप्त कर लेता है। लाला झाऊलाल ने अपना कार्य समाप्त करके ऊपर देखा। पर बिलवासी जी इस बीच में अंतर्धान हो गए थे।

वे लंबे डग भरते हुए गली में चले जा रहे थे।

उस दिन रात्रि में बिलवासी जी को देर तक नींद नहीं आई। वे चादर लपेटे चारपाई पर पड़े रहे। एक बजे वे उठे। धीरे-से, बहुत धीरे-से, अपनी सोई हुई पत्नी के गले से उन्होंने सोने की वह सिकड़ी निकाली जिसमें एक ताली बंधी हुई थी। फिर उसके कमरे में जाकर उन्होंने उस ताली से उसका संदूक खोला। उसमें ढाई सौ के नोट ज्यों-के-ज्यों रखकर उन्होंने उसे बंद कर दिया। फिर दबे पांव लौट-कर ताली को उन्होंने पूर्ववत अपनी पत्नी के गले में डाल दिया। इसके बाद उन्होंने हंसकर अंगड़ाई ली, अंगड़ाई लेकर लेट रहे और लेटकर मर गए।

दूसरे दिन सुबह आठ बजे तक वे जीवित भए।

आलस्य-भक्त

गुलाबराय

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।

प्रिय ठलुआ-वृंद! यद्यपि हमारी सभा समता के पहियों पर चल रही है और देवताओं की भांति हममें कोई छोटा-बड़ा नहीं है, तथापि आप लोगों ने मुझे इस सभा का पति बनाकर मेरे कुंआरेपन के कलंक को दूर किया है। नृपति और सेनापति होना मेरे स्वप्न से भी बाहर था। नृपति नहीं तो नारी-पति होना प्रत्येक मनुष्य की पहुंच के भीतर है, किंतु मुझ-ऐसे आलस्य-भक्त के लिए विवाह में पाणिग्रहण तक का तो भार सहन करना गम्य था। उसके आगे सात बार अग्नि की परिक्रमा करना जान पर खेलने से कम न था। जान पर खेल कर जान का जंजाल खरीदना मूर्खता ही है "अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्, विचारमूढः प्रतिभासि मे त्वम्" का कथन मेरे ऊपर लागू हो जाता। "ब्याहा भला कि क्वांरा"—वाली समस्या ने मुझे अनेक रात्रि निद्रा देवी के अलिंगन से वंचित रखा था, किंतु जब से मुझे सभापतित्व का पद प्राप्त हुआ है, तब से यह समस्या हल हो गई है। आलसी के लिए इतना ही आराम बहुत है। यद्यपि मेरे सभापति होने की योग्यता में, तो आप लोगों को संदेह करने के लिए कोई स्थान नहीं है, तथापि आप लोगों को अपने सिद्धांतों को बतला अपनी योग्यता का परिचय देना अनुचित न होगा।

वैसे तो आलसी के लिए इतने वर्णन का भी कष्ट उठाना उसके धर्म के विरुद्ध है, किंतु आलस्य के सिद्धांतों के प्रचार किए बिना संसार की विशेष हानि होगी और मेरे भी पेट में बातों के अजीर्ण होने की संभावना है। इस अजीर्ण-जन्य कष्ट के भय से मैंने अपनी जिह्वा को कष्ट देने का साहस किया है।

मनुष्य-शरीर आलस्य के लिए ही बना है। यदि ऐसा न होता, तो मानव-शिशु भी जन्म से मृग-शावक की भांति छलांगें मारने लगता, किंतु प्रकृति की शिक्षा को कौन मानता है। नई-नई आवश्यकताओं को बढ़ाकर मनुष्य ने अपना जीवन अस्वाभाविक बना लिया है। मनुष्य ही को ईश्वर ने पूर्ण आराम के लिए बनाया है। उसी की पीठ खाट के उपयुक्त चौड़ी बनाई है, जो ठीक उसी से मिल जावे। प्रायः अन्य सब जीवधारी पेट के बल आराम

करते हैं। मनुष्य चाहे पेट की सीमा से भी अधिक भोजन कर ले, उसके आराम के अर्थ पीठ मौजूद है। ईश्वर ने तो हमारे आराम की पहले ही से व्यवस्था कर दी है। हम ही उसका पूर्ण उपयोग नहीं कर रहे हैं।

निद्रा का सुख समाधि-सुख से भी अधिक है, किंतु लोग उस सुख को अनुभूत करने में बाधा डाला करते हैं। कहते हैं कि सवेरे उठा करो, क्योंकि चिड़ियां और जानवर सवेरे उठते हैं; किंतु यह नहीं जानते कि वे तो जानवर हैं और हम मनुष्य हैं। क्या हमारी इतनी भी विशेषता नहीं कि सुख की नींद सो सकें! कहां शय्या का स्वर्गीय सुख और कहां बाहर की धूप और हवा का असह्य कष्ट! इस बात के ऊपर निर्दयी जगाने वाले तनिक भी ध्यान नहीं देते। यदि उनके भाग्य में सोना नहीं लिखा है, तो क्या सब मनुष्यों का एक-सा ही भाग्य है! सोने के लिए तो लोग तरसा करते हैं और सहस्रों रुपया डाक्टरों और दवाइयों में व्यय कर डालते हैं और यह अवैतनिक उपदेशक लोग स्वाभाविक निद्रा को आलस्य और दरिद्रता की निशानी बतलाते हैं। ठीक ही कहा है—"आए नाग न पूजिए बामी पूजन जाएं।" लोग यह समझते हैं कि हम आलसियों से संसार का कुछ भी उपकार नहीं होता। मैं यह कहता हूं कि यदि मनुष्य में आलस्य न होता, तो वह कदापि उन्नति न करता और जानवरों की भांति संसार में वृक्षों के तले अपना जीवन व्यतीत करता। आलस्य के कारण मनुष्य को गाड़ियों की आवश्यकता पड़ी। यदि गाड़ियां न बनतीं, तो आजकल वाष्प-यान और वायुयान का भी नाम न होता। आलस्य के ही कारण मनुष्य को तार और टेलीफोन का आविष्कार करने की आवश्यकता हुई। अंग्रेजी में एक उक्ति ऐसी है कि Necessity is the mother of invention अर्थात आवश्यकता आविष्कार की जननी है, किंतु वे लोग यह नहीं जानते कि आवश्यकता आलस्य की आत्मजा है। आलस्य में ही आवश्यकताओं का उदय होता है। यदि आप स्वयं जाकर अपने मित्रों से बातचीत कर आवें, तो टेलीफोन की क्या आवश्यकता थी? यदि मनुष्य हाथ से काम करने का आलस्य न करता, तो मशीन को भला कौन पूछता? यदि हम आलसी लोगों के हृदय की आंतरिक इच्छा का मारकोनी साहब को पता चल गया, तो शीघ्र ही एक ऐसे यंत्र का आविष्कार हो जावेगा, जिसके द्वारा हमारे विचार पत्र पर स्वतः अंकित हो जाया करेंगे। फिर हम लोग बोलने के कष्ट से भी बच जावेंगे। विचार की तरंगों को तो वैज्ञानिक लोगों ने सिद्ध कर ही दिया है। अब कागज पर उनका प्रभाव डालना रह गया। दुनिया के बड़े-बड़े आविष्कार आलस्य और ठलुआ-पंथी में ही हुए हैं। वाट साहब ने (जिन्होंने कि वाष्प-शक्ति का आविष्कार किया है) अपने ज्ञान को एक ठलुआ बालक की स्थिति से ही प्राप्त किया था। न्यूटन ने भी अपना गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत बेकारी में ही पाया था। दुनिया में बहुत बड़ी-बड़ी कल्पनाएं उन्हीं लोगों ने की हैं, जिन्होंने चारपाई पर पड़े-पड़े ही अपने जीवन का लक्ष्य पूर्ण किया है। अस्तु, संसार को लाभ हो या हानि हो, इससे हमको प्रयोजन ही क्या? यह

तो सांसारिक लोगों के संतोष के लिए हमने कह दिया, नहीं तो हमको अपने सुख से काम है। यदि हम सुखी हैं, तो संसार सुखी है। ठीक ही कहा है कि "आप सुखी, तो जग सुखी।" सुख का पूरा-पूरा आदर्श वेदांत में बतलाया है। उस सुख के आदर्श में पलक मारने का भी कष्ट उठाना महान पाप है। अष्टावक्र गीता में कहा है–

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि ;
तस्यालस्यधुरीणस्य सुख नान्यस्य कस्यचित्।

(षोडश प्रकरण, श्लोक 4)

अर्थात जो पुरुष नेत्रों के निमेष-उन्मेष के व्यापार (नेत्रों के खोलने-मूंदने) में भी परिश्रम मानकर दुःखित होता है, इस परम आलसी एवं ऐसे निष्क्रिय पुरुष को ही परम सुख मिलता है, अन्य किसी को नहीं।

लोग कहते हैं कि ऐसे ही आलस्य के सिद्धांतों ने भारतवर्ष का नाश कर दिया है। परंतु वे यह नहीं जानते कि भारतवर्ष का नाश इसलिए नहीं हुआ कि वह आलसी है वरन इसलिए कि अन्य देशों में इस आलस्य के स्वर्ण-सिद्धांत का प्रचार नहीं हो पाया है। यदि उन देशों को भी भारत की यह शिक्षा-दीक्षा मिल गई होती, तो वे शय्या-जन्य नैसर्गिक सुख को त्याग यहां आने का कष्ट न उठाते। यदि बिना हाथ-पैर चलाए लेटे रहने में सुख मिल सकता है, तो कष्ट उठाने की आवश्यकता ही क्या? बेचारे अर्जुन ने ठीक ही कहा था कि युद्ध द्वारा रक्त-रंजित राज्य को प्राप्त करके मैं अश्रेय का भागी बनना नहीं चाहता। वे वास्तव में आराम से घर बैठना चाहते थे, किंतु वह भी कृष्णजी के बढ़ावे में आ गए और 'यशो लभस्व' के आगे उनकी कुछ भी न चल सकी। फिर फल क्या हुआ कि सारे वंश का नाश हो गया। इस युद्ध का कृष्ण भगवान को भी अच्छा फल मिल गया। उनका वंश भी पहले की लड़ाई में नष्ट हो गया।

महाभारत में कहा है कि–

"दुःखादुद्विजते सर्वः सुखं सर्वस्य चेप्सितम्।"

अर्थात दुःख से सब लोग भागते हैं एवं सुख को सब लोग चाहते हैं। हम भी इसी स्वाभाविक नियम का पालन करते हैं। इन सिद्धांतों से तो आपको प्रकट हो गया होगा कि संसार में आलस्य कितना महत्व रखता है। इसमें संसार की हानि ही क्या? मैंने अपने सिद्धांतों के अनुकूल जीवन व्यतीत करने के लिए कई मार्ग सोचे, किंतु अभाग्य-वश वह पूर्णतया सफल न हुए, इसमें मेरा दोष नहीं है। इसमें तो संसार ही का दोष है; क्योंकि वह इन सिद्धांतों के लिए अभी परिपक्व नहीं है। अस्तु, वर्तमान अवस्था में बिना उद्योग के भी बहुत कुछ सुख मिल सकता है। उद्योग करके सुख प्राप्त किया, तो वह किस काम का? आलसी जीवन के लिए सबसे अच्छा स्थान तो शफाखाने की चारपाई है। एक बार मेरा विचार हुआ था कि किसी बहाने से युद्धक्षेत्र में पहुंच जाऊं तथा वहां पर थोड़ी-बहुत चोट खाकर शफाखाने के किसी खाली पलंग में स्थान मिल जाए, किंतु लड़ाई के मैदान

तक जाने का कष्ट कौन उठावे और बिना गए तो उन पलंगों का उपभोग करना इतना ही दुर्लभ है, जितना पापी के लिए स्वर्ग।

भाग्य-वश मुझे एक समय आपरेशन कराने की आवश्यकता पड़ गई, और थोड़े दिनों के लिए बिना युद्धक्षेत्र गए ही मेरा मनोरथ सिद्ध हो गया; किंतु पुण्य-क्षीण होने पर शफाखाना छोड़ना पड़ा। मैं बहुत चाहता था कि मुझे जल्दी आराम न हो, किंतु डाक्टर लोग मानने वाले जीव थोड़े ही हैं; अतिशीघ्र आराम करके मुझे विदा कर दिया, मानो मेरे आराम से स्पर्धा होती थी। तब से फिर ऐसे सुअवसर की बाट जोह रहा हूं कि मुझे वही पलंग प्राप्त हो, जहां पर कि मल-मूत्र त्याग करने के लिए भी स्थान छोड़ने का कष्ट न उठाना पड़े। खैर, अब भी जहां तक होता है, मैं शय्या की सेवा से अपने को विमुख नहीं रखता। मेरा सब कारबार, भोजन एवं कसरत भी उसी सुख-निधान पलंग पर हो जाती है। कभी-कभी नहाने-धोने के लिए उससे वियोग होता है, तो उसको एक आवश्यक बुराई समझकर जैसे-तैसे स्वीकार कर लेता हूं। धन्य हैं तिब्बत के लोग, जिन्हें नहाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ता। ईश्वर ने न जाने मेरा जन्म वहां क्यों नहीं दिया? तिब्बत का प्राचीन नाम त्रिविष्टप था। शायद इसी सुख के कारण वही बैकुंठ कहलाता है। बैकुंठ को लोग क्यों चाहते हैं, क्योंकि वहां आलस्य-धर्म का पूर्णतया पालन हो सकता है। वहां किसी बात का कष्ट ही नहीं उठाना पड़ता। कामधेनु और कल्पवृक्ष को ईश्वर ने हमारे ही निमित्त निर्माण किया है। आजकल कलियुग में और भी सुभीता हो गया है। अब स्वर्ग तक कष्ट करने की भी आवश्यकता नहीं। कल्पवृक्ष बिजली के बटन के रूप में महीतल पर अवतरित हो गया है। बटन दबाइए पंखा चलने लगेगा, झाडू भी लग जावेगा, यहां तक कि पका-पकाया भोजन भी तैयार होकर हाजिर हो जावेगा। बिना परिश्रम के चौथी-पांचवीं मंजिल पर लिफ्ट द्वारा पहुंच जाते हैं। यह सब आलस्य की ही आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए संसार में उन्नति का क्रम चला है; और उन्नति में गौरव मानने वाले लोगों को हम आलसियों का अनुगृहीत होना चाहिए।

उपर्युक्त व्यवस्था से प्रकट हो गया कि आलस्य का इस संसार में इतना महत्व है। अब मैं आप महानुभावों के शिक्षार्थ एक आदर्श आलस्याचार्य का वर्णन कर अपने वक्तव्य को समाप्त करूंगा। क्योंकि मैं समझता हूं कि आप लोगों की पीठें शय्या के लिए बहुत ही उत्सुक हो रही होंगी।

कहा जाता है कि एक बड़े भारी आलसी थे। वह जहां तक होता था, हाथ क्या अपनी उंगली को भी कष्ट नहीं देना चाहते थे। उनके मित्र वर्ग ने उनसे तंग आकर सोचा कि इनको जीवित ही क़ब्र की शांतिमयी निद्रा का सुख प्राप्त करा दें। इस इरादे से वह उनको चारपाई पर रख ले चले। रास्ते में एक धनाढ्य महिला मिली। उसने जब यह शव-सा जाता हुआ मनुष्य देखा, तो उसका कुतूहल बहुत बढ़ा और उसने शय्या-वाहकों से सब वृतांत पूछा। उस दयामयी स्त्री ने हमारे चरित्र नायक से कहा कि आप मेरे यहां चलने की कृपा

कीजिए। मैं आपको बिना कष्ट के ही भोजनादि से संतुष्ट करती रहूंगी। हमारे आलस्याचार्य ने पूछा कि आप मुझे भोजन में क्या-क्या देवेंगी? उस महिला ने बहुत-से पदार्थों का नाम लिया, उनमें उबले हुए आलू भी थे। इस पर उन्होंने कहा कि आलुओं को छीलेगा कौन? (लंच में कभी-कभी वे छिले ही आलू देते हैं)। इस पर उस स्त्री को बहुत झुंझलाहट आई। हमारे आलस्याचार्य ने कहा कि मैं तो पहले ही से जानता था कि आप मेरी सहायता न कर सकेंगी और आपने वृथा मेरा समय नष्ट किया, नहीं तो मैं अभी तक आटर्यन आनंद-भवन में प्रवेश कर चुका होता। इतना कहकर उन्होंने शय्या-वाहकों को आगे चलने की आज्ञा दी।

इस आदर्श को मूर्खता न समझिए। वेदांत का मोक्ष और बौद्ध-निर्वाण इससे भिन्न नहीं है। भेद केवल इतना ही है कि इस प्रकार के जीवन को दार्शनिक रूप नहीं दिया गया है। इसलिए आप लोग जो इस सभा के सदस्य हैं, मेरे सिद्धांतों से सहमत हो निम्नलिखित प्रस्तावों को स्वीकार करें—

(1) यह सभा प्रस्ताव करती है कि भारत-सरकार के कानून-विभाग से यह प्रार्थना की जावे कि ताजीरात-हिंद में एक धारा बढ़ाकर दिन-रात में दस घंटों से कम सोना दंडनीय बनाया जावे, क्योंकि कम सोने वाला मनुष्य आत्म-हत्या का दोषी होता है।

(2) यह सभा प्रस्ताव करती है कि जो लोग ताश खेलना नहीं जानते हैं अथवा जो लोग तंबाकू न पीते हों, उन लोगों पर आमदनी के 5/-रुपए प्रतिशत के हिसाब से कर लगाने की प्रार्थना की जावे। इससे सरकार की आमदनी बढ़ेगी। इसके सिवा लोगों को ठलुआ-पंथी से अरुचि न होगी।

(3) यह सभा प्रस्ताव करती है कि जो लोग इस सभा में रुपया-पैसा कमाने या और कोई उपयोगी बात जिसकी कीमत आने-पाइयों में हो सकती है, कहेंगे, वे इस सभा से बहिष्कृत कर दिए जावेंगे।

(4) यह सभा प्रस्ताव करती है कि अमेरिका और इंग्लैंड के मोटर-कंपनियों से निवेदन किया जावे कि भविष्य में जो मोटरें बनवाई जावें वे ऐसी हों कि उनमें पैर पसारकर लेटे हुए सफर कर सकें। इसके अतिरिक्त ऐसी छोटी-छोटी मोटर-मशीनें तैयार करवाई जावें कि वे हमारी चारपाइयों में लगाई जा सकें और बटन दबाने से हमारी चारपाई एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सके। पहले लोगों की कल्पना-शक्ति अच्छी थी। वे वायुयान को उड़नखटोला कहते थे। खटिया नहीं, तो खटोला अवश्य ही था। उड़नखटोला के स्थान में मोटर-पलंगों की आयोजना संसार की उन्नति के लिए परमावश्यक है।

(5) यह सभा प्रस्ताव करती है कि सरकार से यह प्रार्थना की जावे कि संसार में सबसे बड़े शांति-स्थापनकर्ता को जो नोबिल प्राइज मिलती है, वह सबसे बड़े आलसी को दिया जावे; क्योंकि आलसियों के बराबर संसार में दूसरा कोई भी शांति-स्थापनकर्ता हो ही नहीं सकता। यदि वह इनाम काम करने वाले शक्तिशाली पुरुष को दिया जावेगा, तो वह कैसर की भांति संसार में युद्ध की ज्वाला को प्रचंड कर पुरस्कार-दाता की आत्मा को दुःख देगा।

आप भी 'ओ' हैं

जी. पी. श्रीवास्तव

अनाज की पैदावार बढ़ी या नहीं यह तो ईश्वर जाने या महंगाई, मगर हाकिमों की पैदावार का क्या कहना है। कोई ए.ओ., बी.ओ., सी.ओ. हैं तो कोई ए.बी.ओ., बी.सी.ओ, सी.डी.ओ. और न जाने कितने 'ओ' हैं कि अंग्रेजी की वर्णमाला के भी होश गुम हैं कि अब 'ओ' के साथ कौन-कौन से अक्षर जोड़े जाएं। उस पर उसे यह भी परेशानी है कि सुनने वाले किस 'ओ' परिवार का कौन-सा मतलब निकालेंगे। जैसे एम.ओ. ही को ले लीजिए। इससे मेडिकल आफिसर भी हो सकता है और म्यूनिसिपल आफिसर, मलेरिया आफिसर और मारकेटिंग आफिसर भी और घाते में मनीआर्डर भी समझना चाहें तो मजे में समझ सकते हैं।

खैर, समझने वाले जो चाहें समझा करें। इसकी फिक्र मिस्टर सी. एम. गादुर को न थी जिन्हें लोग अपनी आसानी के मारे मिस्टर चिमगादर ही कहते थे।

वे थे तो वकील मगर जिस दिन से वे 'ओथ आफिसर' (शपथनामा अफसर) बना दिए गए, वे अपने नाम के आगे एक 'ओ' नहीं, डबल 'ओ' अर्थात 'ओ.ओ.' निहायत शान से लिखने लगे।

एक 'ओ' का नशा तो संभालना मुश्किल होता है तब भला डबल 'ओ' का नशा, जिसके आगे 'डबल एक्स' भी पानी-पानी हो जाता है, भला कैसे संभाला जा सकता है?

इसका नशा जो चढ़ा तो हजरत की आंखें ऐसी चढ़ गईं कि वह दुनिया अछूत बनकर इनकी निगाह में रसातल से भी नीचे गिर गई।

जब दुनिया ही नहीं तब मनुष्य कहां? इसलिए वे अब अपने को उस जाति का समझने लगे जो मनुष्यों से पृथक कभी देवताओं की थी और आकाश में रहती थी।

इनके लिए आकाश में रहना तो असंभव था इसलिए वे अपने दिमाग को आसमान में पहुंचाकर अपनी उच्च जातीयता का परिचय देने लगे। इस उच्चता को बनाए रखने के लिए मनुष्यों के सारे गुणों से—जैसे संवेदना, सहानुभूति, आत्मीयता, मधुरता, कोमलता, मिलनसारी, हंसना-बोलना, सबसे बुरी तरह घृणा करने लगे ताकि ऐसा न हो कि भूल से भी इन्हें कोई मनुष्य समझ ले। सलाम करना तो एकदम भूल गए। मगर सलाम लेना नहीं।

क्योंकि यह तो उनका जातीय अधिकार था। चेहरे पर गंभीरता की इतनी मोटी पलस्तर चढ़ा ली कि कोशिश करने पर शायद जानवर भी हंस दें, मगर इनके मुंह पर हंसने के लिए सिकुड़न पड़ना बिलकुल असंभव था।

इसकी ट्रेनिंग की ये सब तपस्याएं झेल चुकने पर भी जिस किसी के पास अपनी बिरादरी का सदस्य समझकर वे बड़े उत्साह से लपकते थे वह इन्हें मुंह नहीं लगाता था। इस तरह वे न घर के रहे न घाट के। बस सचमुच चिमगादर ही बनकर रह गए।

इस साल एक नेताजी का लड़का वकालत पास किया था। नेताजी दुनिया को चराना खूब जानते थे। अपने लड़के को तुरंत ऊपर उछाल देने के लिए उन्होंने नगर के बड़े-बड़े लोगों की चाय-पार्टी कर दी जिसमें अधिकतर अफसरान ही थे।

मिस्टर सी. एम. गादुर अपने 'ओ ओ' के रक्षार्थ बिना बुलाए ही फटक पड़े और लगे नेताजी से शिकायत करने, "वाह नेताजी! जब आपने सब अफसरों को निमंत्रित किया तब आप मुझे कैसे भूल गए? शायद आप नहीं जानते कि मैं ही अकेला इस नगर का 'ओ.ओ.' हूं।"

नेताजी रंग ताड़ते ही तपाक से बोले, "अरे! वाह साहब, वह कुर्सी देखिए, मैंने खास तौर से आप ही के लिए लगवा रखी है। यह और बात है कि निमंत्रण वांटने वाले को आप न मिले हों।"

खैर, बात बन गई। मान न मान मैं तेरा मेहमान बनकर वे अपनी बिरादरी में शामिल हो गए।

पार्टी में इनके साथी दो-चार वकील भी थे। मगर उन लोगों ने मेहमानों की खातिरदारी का भार ले रखा था। दौड़-दौड़कर सब मेजों पर सामग्री की कमी पूरी करते थे। मिस्टर सी. एम. गादुर अपनी उच्चता का प्रदर्शन करने के लिए उन्हें 'ए मिस्टर' कह कर कोई तश्तरी लाने को कहते थे जैसे वे उन्हें पहचानते ही न थे।

चाय-पानी की समाप्ति पर नेताजी अपने लड़के को साथ लिए एक-एक से इस तरह मिलाने लगे, "देखो बेटा, आपका आशीर्वाद लो। आप एस.ओ. हैं—सप्लाई अफसर। आप ही की कृपा से दो सौ बोरी सीमेंट नसीब हुई थी। जिससे तुम्हारा वकालतखाना बनवा सका। आपका आशीर्वाद लो। आप एफ.ओ. हैं—फारेस्ट आफिसर। आप ही की कोशिशों से दस दरख्त शीशम के मिले थे जिनसे तुम्हारे फर्नीचर बनवाए हैं। आपका आशीर्वाद लो। आप सी.ओ. हैं—चकबंदी अफसर। आपका इजलास हर वक्त गर्म रहता है, आधी रात को भी चाहो मुकदमा करो..."

मिस्टर सी. एम. गादुर बार-बार अपनी गर्दन उठा-उठाकर टाई ठीक करते हुए नेता जी को घूरते ही रहे। मगर सारे मेहमानों से मिलाने पर भी उनकी नजर इन पर न पड़ सकी। तब तो इनसे न रहा गया। कुर्सी खड़बड़ाकर इस तरह उठ खड़े हुए मानो जाने

की तैयारी कर रहे हैं।

नेताजी ने चौंककर उनकी तरफ देखा और वहीं से बोले, "अरे! आप कहां छिपे थे? मैं आप ही को ढूंढ़ रहा था। देखो बेटा, आप भी 'ओ' हैं।"

मिस्टर सी. एम. गादुर खड़े तो थे ही, जोरों से बोल उठे ताकि सब लोग सुन सकें, "मैं खाली 'ओ' नहीं, मैं 'ओ.ओ.ओ.' हूं। इस नगर का आनली ओथ आफिसर (एकमात्र शपथनामा हाकिम)।"

कहीं से आवाज आई, "अख्खा आप तीन हर्फ वाले हैं।" इसी के साथ एक प्रश्न भी गूंज उठा, "तीन हर्फ कौन?"

जब तक कुछ स्कूली लड़के हाते के बाहर रुककर यह तमाशा देख रहे थे, एकाएक चिल्ला उठे, "अरे! वही चे गैन दाल–चुगद।"

पार्टी इतने जोरों से खिलखिलाकर हंस पड़ी कि मिस्टर गादुर को मुंह छिपाकर वहां से भागने ही में कुशलता दिखाई पड़ी।

लीडर-लीला

हरिशंकर शर्मा

लीडर एक खास किस्म का समझदार जंतु होता है, जो हर मुल्क और मिल्लत में पाया जाता है। उसे कौम के सर पर सवार होना और सभा-सोसाइटियों के मैदान में दौड़ना बहुत पसंद है। उसकी शक्ल-ओ-सूरत हजरत इंसान से बिल्कुल मिलती-जुलती है। वह गरमियों में अक्सर पहाड़ों पर किलोल करता मगर जाड़ों में नीचे उतर आता है। देखने में लीडर सादा-सा दिखाई देता है, पर हकीकत में वह वैसा नहीं है। खाने की चीजों में उसे सेब, संतरा, अंगूर, केले, अनार वगैरह कीमती फल ज्यादा पसंद हैं। दूध तो उसकी खास गिजा है। मौका पड़ने पर गल्ले के पूड़ी-पकवान भी गले में उतार लेता है, मगर बहुत खुशी से नहीं!

कहने को तो लीडर जंतु है, मगर उसमें खुद्दारी का जज़्बा खूब जोशजन रहता है। वह अपने ख्याल के खिलाफ न कुछ सुन सकता है, और न पोजीशन को कम होते देख सकता है। जिस तरह सरकार को सोते-जागते, उठते-बैठते, 'पीस एंड आर्डर' (शांति और सुव्यवस्था) का ध्यान रहता है, उसी तरह लीडर अपनी तकरीर और तारीफ अखबारों में छपी देखने के लिए फिकरमंद नजर आता है। वह औरों को अपने पीछे घसीटता मगर खुद किसी के साथ खिचड़ना पसंद नहीं करता। जिस वक्त इस अजीब जंतु के जिगर में कौम का दर्द उठता है, उस वक्त वह इतना बेताब हो जाता है कि तारघर की ओर दौड़ता है और कभी डाकखाने की ओर कबड्डी भरता है। ज्यादा दर्द होने की हालत में उसकी बेचैनी का ठिकाना नहीं रहता। यहां तक कि बड़े-बड़े मजमों में खड़ा होकर बेतहाशा चीखता-चिंघाड़ता है। टेबुल पर हाथ मारता है और जमीन पर पांव फटकारता है। आंखें सुर्ख कर लेता और दांत पीसने लगता है। मुंह बनाता और हाथ घुमाता है। इधर को झुकता है और उधर को झूमता है। इसकी ऐसी हौलनाक हालत देखकर लोग उसके पास पानी या दूध का प्याला रख आते हैं जिसे वह चुस्की ले-ले कर पीता मगर चीखना-चिल्लाना बंद नहीं करता।

कभी-कभी इस जंतु की परेशानी, 'खूंखारी' में तबदील हो जाती है तो उसके लिए उसे मियादे मुकर्ररा के लिए लाल फाटक के बड़े बाड़े में बंद रहना पड़ता है, जहां न उसे

हस्ब ख्वाहिश दाना-चारा मिलता है और न मजेदार मैदान ही नसीब होता है। इस दुनिया में आकर पहले तो लीडर गरजता-गुर्राता है, मगर कुछ दिनों बाद उसकी हालत पालतू बकरी की तरह हो जाती है।

यह अजीब जंतु अपने पांवों पर चलना बहुत कम पसंद करता है। रेल के गुदगुदे गद्दे और मोटरों के मुलायम तकिये देखकर उसकी तबीयत बागबाग हो जाती है, हवाई जहाज की हवा खाने और उसी में इधर-उधर जाने के लिए यह अत्यंत उत्सुक दिखाई देता है। घटिया सवारियों पर सवार होना उसे अच्छा नहीं लगता बल्कि, वह वैसा करना 'कसर-ए-शान' समझता है।

लीडर में एक बड़ी खसूसियत है। अपने बुलावे की डाक द्वारा सूचना पाकर उसकी 'सेहत खराब' हो जाती है और 'अदीम-उल-फुरसती' सामने आ जाती है। मगर ज्यों ही अरजेंट टेलीग्राम पहुंचा त्यों ही वह तंदुरुस्त हुआ और उसने अपनी रवानगी का तार खटखटाया। दुनिया इधर से उधर हो जाए पर लीडरी तार का कुतार न होना चाहिए। अगर रवानगी का तार पा बहुत-से लोग, फूलमाला लेकर, 'इस्तकबाल' के लिए हवाई अड्डे या रेलवे स्टेशन पर नहीं पहुंचते, तो लीडर बुरी तरह बड़बड़ाता और बिदक जाता है। कभी-कभी तो उलटा वापस होते हुए भी देखा गया है।

लीडर जंतु सड़ी-गली हवेलियों में रहना पसंद नहीं करता। उसे फर्स्ट-क्लास कोठी के बिना चैन नहीं मिलता और न नींद आती है। वह बातें करने में बड़ा कंजूस होता है, छोटे लोगों को तो पास भी नहीं फटकने देता। हां, कुछ बड़े आदमियों से घड़ी सामने रखकर, थोड़ी देर, गुफ्तगू करने में ज्यादा हरज नहीं समझता।

ओहो! जिस समय इसे '144' नंबर की लाल झंडी दिखाई जाती है, उस समय तो उसकी वही हालत हो जाती है जो बालछड़ या छारछबीला सूंघने वाली बिल्ली की होती है। कभी वह झंडी को पकड़ने के लिए दौड़ता है, कभी पीछे खिसक जाता है और कभी उछलता है, कभी कूदता है और कभी दूर से गुर्रा कर रह जाता है।

जिस प्रकार भेड़िया भेड़ को पुचकारता है, उसी प्रकार लीडर पब्लिक के पैसे पर प्यार करता है। हिसाब-फहमी का प्रश्न उसकी 'इंसल्ट' और जीवन-मरण की समस्या है। बाहरी दुनिया में लीडर लोगों को जैसा पुरजोश दिखाई देता है, वैसा वह अपनी गुफा में नहीं नजर आता। क्योंकि उसकी घरेलू और बहरेलू दो तरह की जिंदगी होती है। जो लोग इस रहस्य को नहीं जानते वे अक्सर धोखा खा जाते हैं और तकलीफ उठाते हैं।

लीडर जंतु के मिलने-जुलने के भी कई तरीके हैं। किसी से वह खिल-खिलाकर 'शेकदुम' करता है, किसी के साथ आधी हंसी हंसता है, किसी के आगे उदासीनता दरसाता और किसी के समक्ष मुंह फुलाकर और भौंह चढ़ाकर अपने मनोभाव प्रकट करता है। जिसके भाग्य में जैसा बदा हो वैसा ही उसके साथ व्यवहार होता है। साधारण लोगों की शक्लों को

जानते-बूझते भूल जाना और उनके किसी खत-पत्र का उत्तर न देना लीडरेंद्र की खास खसूसियत समझनी चाहिए। लीडर की पोशाक बड़ी विचित्र होती है। परिस्थिति को देख उसे रंग बदलना खूब आता है। कभी बढ़िया लिबास इख्तियार करता है तो कभी खद्दर की झूल लादकर ही खुश हो जाता है। कभी-कभी पीले-काले या सफेद तार के फ्रेम में शीशे के दो गोल-गोल टुकड़े हिलगाकर आंखों के ऊपर रख लेता है। झूल के थैलों में एक ओर स्याहीभरी सटक लटकती रहती है; और दूसरी तरफ समय बताने वाली डिब्बी का दिल धड़का करता है।

एक-दो नहीं, लीडर सैकड़ों-सहस्रों तरह के होते हैं। कोई राजनीतिक मैदान में उछल-कूद मचाता है, किसी ने अगाई-पिछाई तोड़कर धार्मिक या सांप्रदायिक क्षेत्र में द्वंद्व मचाना शुरू कर दिया है। कोई समाज-संशोधन की सड़क पर कुलाचें भरने में मस्त है और कोई बिरादरी की बोसीदा बिल्डिंग पर बैठ कर 'ह्याऊं-ह्याऊं' करता रहता है। इनके भी हजारों भेद-उपभेद हैं। सब का वर्णन करने के लिए बड़ी पोथी चाहिए। अगर मौका मिला और मजलिस जमी तो चैत्र कृष्ण प्रतिपदा की सभा में इस विषय पर विस्तृत व्याख्यान दिया जाएगा। सब लोग उस दिन हवाई किले के लंबे-चौड़े मैदान में, रात्रि के ठीक पौने तीन बजे पधारें।

दुबेजी की चिट्ठियां : 14

विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'

अजी संपादक जी महाराज,

जय राम जी की!

कहिए, देश के लीडरों की आजकल कैसी कट रही है, इसका भी कुछ पता है? कोई आंदोलन न होने के कारण बेचारे बैठे-बैठे जंग खाए जा रहे हैं। क्या करें, कोई काम ही नहीं। बड़े-बड़े लीडरों का समय तो व्याख्यान देने, लेख लिखने तथा प्रेस-प्रतिनिधियों के प्रश्नों का उत्तर देने में कट जाता है। परंतु बेचारे छुटभइयों की मिट्टी पलीद हो रही है। इन बेचारों की इतनी हैसियत भी नहीं कि स्वास्थ्य सुधारने के लिए कहीं बाहर ही चले जाएं। अपने शहर में भला इतनी गुंजाईश तो है कि एकाध देशभक्त डाक्टर मुफ्त में चिकित्सा करने को तैयार हो जाते हैं। बाहर जाकर यदि गले में ढोल डालकर यह मुनादी करते फिरें कि "हम लीडर हैं! हमने देश के लिए इतने कष्ट उठाए हैं, इतने दिन जेल में पड़े रहे हैं और अब भी आवश्यकता पड़े तो तुरंत जेल में जा बैठें।" तब भी शायद ही कोई पतियाय। ऐसे व्यक्ति स्वास्थ्य सुधारने के लिए हिंदुस्तान के बाहर जाना तो दूर रहा, अपने शहर के बाहर भी नहीं जा सकते। और ऐसे लीडर, ईश्वर की दया से, थोड़े नहीं हैं। इनकी संख्या बहुत है। कोई नगर ऐसा न होगा, जिसमें इनकी काफी संख्या न हो। गत आंदोलन में ऐसे लीडरों की संख्या बहुत बढ़ गई। जो कोई स्वेच्छा से अथवा पुलिस की कृपा से एक बार भी जेल चला गया, वह परमात्मा की कृपा से लीडर होकर ही निकला। और क्यों न होता? जब छूटकर आए तो स्टेशन पर स्वागत हुआ, शहर में जुलूस निकला, सभा हुई उसमें उन्हें भी दो-चार शब्द बोलने पड़े। जेल से छूटकर घर की ओर चलते समय अपने लीडर होने में यदि कुछ शको-शुब्हा उत्पन्न भी हुआ, तो वह उपर्युक्त बातों से बिल्कुल ही निर्जीव हो गया। कुछ ऐसे महानुभाव भी थे, जो "करघा छोड़ तमाशे जाय, नाहक चोट जुलाहा खाय" वाली महावत के अनुसार बेगार में धर लिए गए। उन्होंने जेल ही में कसम खा ली थी कि अब ऐसे तमाशों के पास भी न फटकेंगे, जिनकी बदौलत जेल की हवा खानी पड़े। तमाशबीनी का परिणाम खराब होता है। ऐसे लोग लौटकर आए तो घर के काम-धंधों में ऐसे जुटे कि फुर्सत ही न मिले। कोई सभा-वभा देखते हैं तो कतरा कर निकल

जाते हैं। किसी ने पूछा भी कि– "आज सभा में चलोगे!" तो उत्तर दिया गया कि– "एक बड़ा आवश्यक काम है, उससे फुर्सत मिली तो पहुंच जाऊंगा।" परंतु बहुधा फुर्सत ही नहीं मिलती—यदि कुछ लोक-लाज का ध्यान आ गया तो सभा समाप्त होने के समय पहुंच गए। लोगों ने सूरत देख ली– बस इतना ही काफी है। इन लोगों के संबंध में अपने राम बिलकुल निश्चिंत हैं। यदि चिंता है तो उन लोगों की, जो कि अपने को लीडर समझते हैं या फिर उन बेचारों की, जो लीडरी के अतिरिक्त और कोई काम कर ही नहीं सकते और न करना चाहते हैं। संसार में ऐसे काम बहुत ही कम हैं, जिनमें आम के आम और गुठलियों के दाम खड़े हो सकें। उन बहुत कम कामों में लीडरी भी सम्मिलित है। उन बड़े-बड़े लीडरों की बात छोड़ दीजिए, जिनका 'स्वास्थ्य सुधारने के लिए' हिंदुस्तानभर का जलवायु बहुत ही नाकिस साबित हो चुका है। भगवान जाने, हिंदुस्तान के निवासियों का स्वास्थ्य किस प्रकार अपने अड्डे पर डटा रहता है। वह तो कहिए बड़ी खैर है कि अभी मंगल-ग्रह का रास्ता नहीं मिला, अन्यथा पृथ्वी-मंडलभर का जलवायु उनका स्वास्थ्य सुधारने में कच्ची खा जाता और उन बेचारों को मंगल ग्रह जाना पड़ता। इन लीडरों की बात छोड़ दीजिए, क्योंकि इन लीडरों की माया अपने राम जैसे साधारण व्यक्ति की समझ के बाहर की बात है। उन लीडरों की दशा पर गौर कीजिए, जिनकी लीडरी केवल शहर अथवा अधिक-से -अधिक जिले तक परिमित है। ये बेचारे स्वप्न देख रहे थे कि एक दिन वह भी आवेगा, जब कि ये जिस शहर में जाएंगे, वहां के रईस और अमीरों में इस बात पर जूता चलने के लिए तैयार हो जाएगा कि नेता महोदय को हम अपने यहां टिकावेंगे। तब नेताजी एक छोटा सा व्याख्यान देकर उस झगड़े को रफा-दफा कर देंगे। इसके पश्चात शहर में जुलूस निकलेगा। बाजारों में, दुकानों पर, मकानों की छतों पर लोग इस प्रकार भरे होंगे, जैसे कि चारपाई में खटमल। कोई फूल बरसाएगा, कोई गुलदस्ता फेंक मारेगा; नेताजी की जय-जयकार से आकाश का कलेजा दहल उठेगा। इसके पश्चात जनाब के फोटो खींचे जाएंगे, मानपत्र दिए जाएंगे। लोग तरह-तरह की बातें पूछने आवेंगे। प्रत्येक समय बड़े-बड़े आदमी हाथ बांधे हुए नौकरों की तरह सामने खड़े रहेंगे। स्वास्थ्य ठीक न रहने पर भी तरमाल उड़ाने पड़ेंगे। और फिर सभा की जाएगी—व्याख्यान दिया जाएगा। व्याख्यान के पश्चात यदि नेताजी को जुकाम भी हो जाएगा तो देशभर के पत्रों में यह समाचार निकल जाएगा और सारा देश नेताजी का जुकाम अच्छा करने के लिए ईश्वर से रो-रोकर प्रार्थना करेगा। जब वहां से चलेंगे तो अगले स्टेशन पर स्वागत के लिए आदमी मौजूद ही रहेंगे। वहां फिर वही बातें। इस प्रकार अपनी जेब से एक छदाम निकाले बिना ही नेता जी आराम से सारा हिंदुस्तान घूम आवेंगे। बताइए, इस सुख के आगे स्वर्ग-सुख भी झेंप जाता है। जब स्वर्ग-सुख प्राप्त करने के लिए मनुष्य पहाड़ों की कंदराओं और जंगली जानवरों के मठों में घुसे पड़े रहते हैं, तो इस सुख की प्राप्ति के लिए यदि कभी-कभी जेल में पड़ा रहना

पड़े तो क्या हर्ज है? बिना तपस्या किए स्वर्ग-सुख नहीं मिल सकता। इस सुख-प्राप्ति की तपोभूमि जेल है। सो जनाब! तपोभूमि की सैर भी कर आए। परंतु अब बाहर तो क्या, अपने ही शहर में कोई नहीं पूछता। नेताजी जूतियां चटकाते घूमते हैं। कोई ऐसा विषय भी नहीं, जो दूसरे-तीसरे दिन व्याख्यान ही फटकार दिया करें। अकारण व्याख्यान दें तो उनके पास उतने आदमी भी न फटकें, जितने कि परेड बाजार में ताकत की दवा और ऊसर सांड़े का तेल बेचने वालों के पास जमा हो जाते हैं। महात्मा जी ने संधि करके सब गुड़ गोबर कर दिया। आंदोलन चलता रहता तो कुछ तो कद्र होती। या फिर स्वराज्य ही मिल जाय, जिससे कि जेल जाने का सर्टीफिकेट दिखाकर कोई ओहदा प्राप्त करें। इस प्रकार अधर में लटकने से तो कहीं के न रहे। इससे तो वही अच्छा था कि जेल में ही पड़े रहते—और कुछ न होता तो कीमत ही बढ़ती रहती। हारे दर्जे और कुछ न हो तो हिंदू-मुस्लिम एकता स्थापित करें और इस प्रकार कुछ नाम कमाने का अवसर हाथ लगे। कुछ लोगों ने तो अपना बाहरी रूप और रंग-ढंग बिल्कुल गांधी जैसा बनाया, परंतु फिर भी महात्मा जी कैसी कद्र न हुई। अफसोस!

संपादक जी, ऐसी दशा में हमारे भूतपूर्व जेल-तपस्वी क्या करें। कोई रोजगार-धंधा करें तो उसके लिए रुपया चाहिए। दूसरे यह काम भी नेताजी की चित्तवृत्ति के प्रतिकूल है। नेताजी और रोजगार-धंधा! शिव! शिव! यही करना होता तो जेल की हवा क्या झख मारने के लिए खाई फिर! यदि ऐसा कर भी लें तो नेतापन पर हरताल पुती जाती है। वह नेता ही क्या, जो व्याख्यान देने, प्रेस-प्रतिनिधियों से बात करने के अतिरिक्त पेट के धंधे के लिए कुछ करे। जिसके लिए लोगों को प्रत्येक समय षट्रस व्यंजन लिए खड़ा रहना चाहिए वह पेट के धंधे की चिंता करे—डूब मरने की बात है। अतएव ये लोग करें तो क्या करें? कदाचित आप कह उठें कि देहातों में घूम-घूमकर ग्राम-संगठन करें, किसानों में जागृति पैदा करें, सो जनाब, यह कहना जितना सरल है उतना सरल करना नहीं है। देहातों में घूमने में बड़ी कठिनाइयां हैं। उन कठिनाइयों को आप समझ ही नहीं सकते—कभी देहातों में घूमे हों तो समझें। पहली बात तो यह है कि जेल की रोटियां खाने; देश-सेवा करने और व्याख्यान देने के कारण नेता महोदय का हाजमा इतना खराब हो गया है कि अंगूर, सेब, संतरा, केला, अमरूद, गंडेरी, ककड़ी, दूध, दही, मक्खन, शहद इत्यादि के अतिरिक्त इन्हें कुछ हजम ही नहीं होता। ये चीजें देहातों में कहां धरी हैं। देहात वाले इन चीजों का प्रबंध नहीं कर सकते। हां, इन चीजों से भरा हुआ एक छकड़ा प्रत्येक समय नेताजी के साथ रहे तो फिर देखिए, ऐसा बढ़िया ग्राम-संगठन हो, जैसा शहद की मक्खियों का होता है। इसमें संदेह नहीं कि किसान ही देश के अन्नदाता हैं और किसानों के उद्धार पर ही देश का उद्धार निर्भर है। किसानों का जीवन ही आदर्श जीवन है। देहातों की जलवायु का क्या कहना! किसानों के बराबर कोई भला-मानुष नहीं। गर्ज की तमाम जमाने की

खूबियां केवल किसानों में ही घुसकर रह गई हैं। साथ ही जितनी परेशानी और मुसीबत पृथ्वी पर ब्रह्मा जी ने तवल्लुद की है, वह सब किसानों को ही झेलनी पड़ती है। यह सब ठीक है, परंतु उनके बीच में रहकर काम करना – यह जरा टेढ़ी खीर है। उन्हें तो दूर से ही शिक्षा दी जा सकती है। क्योंकि न तो वहां अंगूर और संतरे हैं, न खस की टट्टियां और न बिजली के पंखे और न मोटरकारें। जौ-बेझर की रोटियां और मट्ठा कौन खाए? छकड़ों पर कौन सवार हो? जलती हुई धूप में कौन घूमे? अंगूर की जगह महुए और संतरे की जगह कैथा! सो डाक्टर दोनों चीजों को स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकर बताते हैं। जौ-बेझरा कैसे हजम होगा, गेहूं तो हजम होता नहीं। फल और दूध-मक्खन के अतिरिक्त और कुछ खा ही नहीं सकते। जौ-बेझरा खाना होता तो जेल क्या बुरा था, जहां किसी भी समय (कोई कानून तोड़कर) खा सकते हैं। इसके अतिरिक्त वहां जो व्याख्यान देंगे उनको प्रेस में कौन भेजेगा? जंगल में मोर नाचा किसने देखा? तमाम जमानेभर की लियाकत खर्च कर दीजिए, मगर दाद देने वाला कोई नहीं। कोई बात जरा भी उल्टी पड़ जाए तो उजड्ड किसान सिर की खाज मिटाने को तैयार हो जाएंगे। वहां का खेल तो कभी-कभी का ही ठीक है। और वह भी इस तरह कि चार दिन पहले से कहला भेजा कि अमुक दिन नेताजी पधारेंगे। उनके लिए पावभर मक्खन और मक्खन के लिए मिश्री हो, शकर न हो, दो सेर दूध और जितने प्रकार के फल मिल सकें वे सब प्रस्तुत रहें। क्यों कि इसके अतिरिक्त और कुछ खाएंगे तो लौट कर आना कठिन हो जाएगा। इस प्रकार तैयारी करके नेताजी एक दिन मोटरकार अथवा रेल द्वारा देहात में पहुंचे। लोगों से जय बुलवाई, पैर छुवाए, और एक व्याख्यान में उनको संगठित होने की शिक्षा देकर, स्वराज्य में सर्व-सुख प्राप्ति का सब्जबाग दिखाकर और जमींदारों तथा सरकार को कोस कर वापस आ गए। शहर में आकर किसी चेले द्वारा प्रेस में अपने दौरे तथा व्याख्यान की रिपोर्ट भिजवा दी –बस ग्राम संगठन और किसानों की जागृति का पहाड़ खुद गया। शहर में जब कभी व्याख्यान देना पड़ा तो यही रोना रोना पड़ता है कि आप लोग किसानों का संगठन कीजिए। कहते किससे हैं? व्यापारियों से, नौकरी-पेशा वालों से। जिन्हें पेट के धंधे से ही छुट्टी नहीं। अपने लिए तो शहर का संगठन ही ठीक है। देहात का संगठन दूसरे करें! सो फिलहाल शहर के संगठन का काम भी पिलपिलाया हुआ है। ऐसी दशा में इन नेताओं के लिए कोई काम नहीं रह गया, दिनभर बैठे चर्खा चलावें, यह भी असंभव है। चर्खा चलाना तो वैसा ही है, जैसा भगवान का पूजन करना। घंटे-आध घंटे काफी है। समय पर कसम खा सकते हैं कि हम नित्य चर्खा चलाते हैं। अपनी जीविका उपार्जन करने के लिए चर्खा चलाना बड़ा कष्ट-साध्य है। चर्खा तो दूसरों से ही चलवाना ठीक है। या फिर महात्मा जी चर्खा चला सकते हैं। और यदि नेता लोग दिन भर भी चर्खा चलाने लगेंगे, तो बस फिर भगवान मालिक है। जनता को शिक्षा कौन देगा?

ये सब कठिनाइयां नेता लोगों के सामने हैं। संपादक जी आप ही बतावें, इन कठिनाइयों से निकलने की क्या युक्ति है?

राजभवन की सिगरेटदानी

श्री नारायण चतुर्वेदी

'मूक होहिं वाचालु, पंगु चढ़हिं गिरिवर गहन' के अनुसार संयोग से श्री विनोद शर्मा को 'भारत दैट इज इंडिया' के एक प्रमुख राज्य के राजभवन की अतिथिशाला में ठहरने का दुर्लभ संयोग प्राप्त हो गया। एक तो स्वतंत्र भारत का राजभवन, और फिर उसकी अतिथिशाला! मूल्यवान और कलात्मक बढ़िया मोटे गलीचों, सुंदर उपस्करों और अद्यतन सोफा-सेटों से सुसज्जित! स्प्रिंगदार पलंग, जिन पर दुहरे रबड़-फोम के ऐसे मोटे गद्दे कि उनमें शर्मा जी का हल्का शरीर बीते-भर घुस जाए। चौबीसों घंटे चलने वाले गरम और ठंडे पानी के नल। कक्ष में सुंदर एवं नयनाभिराम कलापूर्ण मध्यकालीन कलमी चित्रों की सजावट और करीने से लगी हुई प्राचीन प्रतिमाओं का प्रदर्शन। यद्यपि शर्मा जी सिगरेट नहीं पीते, तथापि अन्य कितने ही अतिथि तो आधुनिक अग्निहोत्री होने के नाते धूम्रपान करते ही हैं। अतएव उनकी सुविधा के लिए पलंग के सिरहाने के पास एक सुंदर छोटी मेज पर पीतल की एक प्राचीन भारतीय कलाकृति सिगरेटदानी (एशट्रे) के रूप में रखी हुई थी। उसकी सुंदर और अनोखी बनावट के कारण शर्मा जी का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ, क्योंकि प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय हस्तकला में उनकी विशेष रुचि है। शर्मा जी उसे उठाकर देखने लगे। 'ज्यों-ज्यों निहारिये नीर ह्वै नैनन, त्यों-त्यों खरी निकसै-सी निकाई।' वे विस्फारित नेत्रों से उसे देखने लगे, क्योंकि जिसे वे अब तक एक सुंदर सिगरेटदानी समझे हुए थे वह वास्तव में मंदिरों में काम आने वाली एक 'आरती' थी। वह सैकड़ों वर्ष पुरानी मालूम होती थी। संभवतः उसका उपयोग किसी समय किसी राजकीय मंदिर में किसी देवता की अर्चना में किया जाता होगा। किंतु इस समय तो वह राजभवन की अतिथिशाला में राज्यपाल के सम्मानित अतिथियों की जूठी सिगरेटों का भार वहन करके उनकी सेवा कर रही थी।

इस सिगरेटदानी का मुख्य भाग खरबूजे के आकार का एक छोटा गडुआ था जो प्रायः सात अंगुल ऊंचा है। पुरानी होने के कारण इस पर जंग जम गया था। पीछे के भाग में पुजारी द्वारा पकड़ने के लिए उसमें एक हत्था लगा था जो टूटा हुआ था। किंतु जहां यह

हत्था गडुए से जुड़ा था वहां गरुड़ की एक छोटी-सी मूर्ति बनी हुई थी। आगे के भाग में कमल-पुष्प के दल के आकार का दीपक बना था जो बीच में गहरा था और उसका अगला भाग कुछ नुकीला था जिसमें बत्ती बैठ सकती थी। जहां यह कमल-दल के आकार का दीपक गडुए से जुड़ा था, वहां कमल-दलों के मंडल से परिवेष्टित गणेश जी की एक सुंदर मूर्ति बनी थी। दीपदान में जब अधजली सिगरेट डाली जाती होगी तब उसका धुआं सीधा गणेश जी पर पहुंचकर उन्हें आधुनिक धूम्रपान का आनंद देता होगा। गडुए के गहरे भाग में धूप जलाकर, और दीपक में घी की बत्ती या कपूरजला कर उससे राजकीय देवालय या रनिवास के मंदिर में भगवान की आरती की जाती होगी।

राजभवनों और उनकी अतिथिशालाओं को सजाने का काम नौकरशाही के उच्च अधिकारी करते हैं। जिस किसी अधिकारी ने इस अतिथिशाला को सजाया है उसमें अच्छा कलाबोध और सुरुचि रही होगी। किंतु इसमें भी संदेह नहीं कि वह पूरा 'सेक्युलर और ऐंग्लो-इंडियन' भी रहा होगा, अर्थात शरीर से 'इंडियन' और मानसिकता से ऐंग्लो। यदि उसे इस देश के बहुसंख्यक निवासियों के विश्वासों और भावनाओं का तनिक भी ज्ञान या आदर होता, तो वह गणेश जी की प्रतिमा से मंडित आरती से सिगरेटदानी का काम लेने की बात भी न सोचता। किंतु वह उस सरकार का नौकर है जो 'सेक्युलर' होने का गर्व करती है। शायद भविष्यदर्शी अकबर इलाहाबादी ने इसी सरकार को लक्ष्य करके लिखा था कि "रकीबों ने रपट लिखवाई है जा-जा के थाने में, कि 'अकबर' नाम लेता है खुदा का इस जमाने में।" हमारी सरकार की निगाह में 'खुदा' का नाम लेना भी 'सेक्युलर' होने में शायद बाधक है। जब श्रीमति इन्दिरा गांधी के मंत्रिमंडल ने अपने पद का शपथ ग्रहण किया, तब स्वयं श्रीमति इन्दिरा गांधी तथा सर्वश्री चागला, अशोक मेहता, स्वर्णसिंह, संजीवैया, मनुभाई शाह और जगजीवन राम ने 'ईश्वर' के नाम पर शपथ न लेकर सत्यनिष्ठा और दृढ़ संकल्प (सालेम ऐफर्मेशन) की प्रतिज्ञा करके अपनी धर्मनिरपेक्षता का सार्वजनिक परिचय दिया था। जब तुलसीदास, कबीर और रैदास के 'मद्दाह' श्री जगजीवन राम ने शपथ के लिए ईश्वर का नाम न लेकर अपनी 'सेक्युलरता' का विज्ञापन किया, तब श्री चागला और श्री अशोक मेहता की बात कौन करे? 'जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं, कहहु तूल केहि लेखे माहीं?' नौकरशाही तो इस युग की भौतिक सांसारिक सफलता का जीता-जागता रूप है। उसे धर्म और ईश्वर की क्या आवश्यकता है? वह अपने नोट्स, मेमोरेण्डमों और टिप्पणियों में ईश्वर के बाल की खाल निकाल सकता है। उसके लिए 'धर्म' और 'ईश्वर' अंधविश्वास है। 'आंखों में हुकूमत का कमल जब से खिला है, आते हैं नजर बाग व बाजार बसंती।' और हमारी जनता इन्हीं 'सेक्युलर' हुक्कामों की 'रियाया' मात्र है। इसीलिए अधिकांश नागरिकों के सम्मानित देवताओं की मूर्तियों की अवमानना करने का साहस इसी अनोखे

'सेक्युलर' राज्य में ही संभव है।

शर्मा जी इस सिगरेटदानी को बहुत देर तक देखते रहे, और फिर उन्होंने गणेश जी को संबोधित करते हुए कहा, "हे ऐश-ट्रे के गणेश जी, आपने महर्षि वेदव्यास के स्टेनोग्राफर (आशुलिपिक) का काम करके इस देश को पंचम वेद उपलब्ध कर दिया था, जिसमें भारत की संस्कृति सुरक्षित है, और जिसके विषय में कहा गया है 'यन्न भारते, तन्न भारते'। जो बात महाभारत में नहीं वह इस भारत देश में नहीं है। किंतु शायद भारतीय संस्कृति को इस प्रकार अमर और अक्षय कर देना सेक्युलरवाद के प्रति महान अपराध था। देवता होने तथा इस सेक्युलर-विरोधी ग्रंथ के प्रणयन में सहयोग देने के कारण आप आज के देवताओं की निगाह में घोर अपराधी हैं। अतएव आपको इस सेक्युलर-युग में दंड का भागी होना ही पड़ेगा। बहुत दिनों आपने इस सुंदर कलाकृति में प्रतिष्ठित होकर किसी विशाल मंदिर में या किसी प्रतापी राजा के पूजागृह में, प्रातःकालीन मंगला आरती से लेकर रात्रि की शयन आरती तक नित्यप्रति भगवान की पूजा करने का सुख लूटा होगा। किंतु अब समय बदल गया है। 'समय एवं करोति बलावलम्।' अब इस स्वतंत्र सेक्युलर इंडिया में आप इस देश की सर्वशक्तिशाली, 'सभ्य', अर्द्धसंस्कृत, संस्कारहीन और जनता की भावना तथा धर्म से निरपेक्ष नौकरशाही के पंजों में फंस गए हैं। अब आपको भगवान की पूजा करने के बजाय राजभवन की अतिथिशाला में ठहरने वाले आधुनिक देवताओं की जूठी और अधजली सिगरेटों से दग्ध होने का दंड दिया गया है। बहुत दिनों आपने अगरु और चंदन के बुरादे की धूप की सुगंधि का आनंद लिया है, अब आप गोल्डफ्लैक, कैप्स्टन और 555 की निकोटीन की गंध का मजा लीजिए। आपने इस शांति के मतवाले देश में 'महाभारत' संभव कर जो पाप किया था, उसका प्रायश्चित यही है कि आप आज के स्वतंत्र, पाश्चात्य संस्कृति में दीक्षित, धर्मनिरपेक्ष, सेक्युलर 'इंडियन' वी.आई.पी. लोगों की जूठी और अधजली सिगरेटों को वहन करके उनके भारवाही बना करें। आप अपने को 'विघ्नविनाशक' समझते हैं। किंतु आज के 'इंडियन' स्वयं समर्थ हैं। आपके ही कालिदास ने कहा है, 'स्ववीर्य गुप्ताहि मनोप्रसूति', वे अपने विघ्न स्वयं या अमरीका अथवा रूस की सहायता से दूर कर लेंगे। उन्हें अब आपकी कपोलकल्पित विघ्नविनाशक शक्ति की आवश्यकता नहीं है। अब वे देवी-देवताओं और उनकी मूर्तियों का आदर करने के अंधविश्वास से ऊपर उठ गए हैं। आधुनिकता का यही तकाजा है। किंतु वे मूर्तिभंजक नहीं हैं, और न वे आपको तोड़कर राष्ट्रीय क्षति करना ही पसंद करते हैं। अतएव आप इस मुक्त और निरपेक्षता के युग में आधुनिक सभ्यता के सार्वभौम प्रतीक धूम्रपान की अवशिष्ट अधजली सिगरेटों को वहन करके राष्ट्र की सेवा करें जिससे उन अधजली सिगरेटों के इधर-उधर गिर जाने से राजभवन में कोई अग्निकांड न हो जाए। इस प्रकार आप इस सुंदर कक्ष की सेवा करके अपने को

समाजोपयोगी बनाएं। किसी समय इस देश में तैंतीस करोड़ देवता थे। आज उनकी संख्या बढ़कर पैंतालीस करोड़ हो गई है। इनमें से जो सभ्य, सुसंस्कृत और प्रबुद्ध हैं, वे बहुधा धूम्रपान करते हैं। आपका सौभाग्य है कि आपको उनकी सेवा करने का अवसर मिला है।"

ऐश-ट्रे के गणेश जी निर्विकार और निरपेक्ष भाव से शर्मा जी का भाषण सुनते रहे। उनमें कोई प्रतिक्रिया होती न देख शर्मा जी खिसियाकर चुप हो गए और उन्होंने अपने शरीर को रबड़-फोम के स्प्रिंगदार पलंग पर डाल दिया जो बीता-भर धंस गया। गणेश जी फिर भी मौन ही रहे।

चिकित्सा का चक्कर

बेढब बनारसी

मैं बिलकुल हट्टा-कट्टा हूं। देखने में मुझे कोई भला आदमी रोगी नहीं कह सकता। पर मेरी कहानी किसी भारतीय विधवा से कम करुण नहीं है, यद्यपि मैं विधुर नहीं हूं। मेरी आयु लगभग पैंतीस साल की है। आज तक कभी बीमार नहीं पड़ा था। लोगों को बीमार देखता था तो मुझे बड़ी इच्छा होती थी कि किसी दिन मैं भी बीमार पड़ता तो अच्छा होता। यह तो न था कि मेरे बीमार होने पर भी दिन में दो बार बुलेटिन निकलते। पर इतना अवश्य था कि मेरे लिए बीमार पड़ने पर हंटले पामर के बिसकुट—जिन्हें साधारण अवस्था में घरवाले खाने नहीं देते—दवा की बात और है—खाने को मिलते। 'यू.डी. कलोन' की शीशियां सिर पर कोमल-करों से बीवी उंड़ेल कर मलती और सबसे बड़ी इच्छा तो यह थी कि दोस्त लोग आकर मेरे सामने बैठते और गंभीर मुद्रा धारण करके पूछते, कहिए किस की दवा हो रही है? कुछ फायदा है? जब कोई इस प्रकार से रोनी सूरत बनाकर ऐसे प्रश्न करता है तब मुझे बड़ा मजा आता है और उस समय मैं आनंद की सीमा के उस पार पहुंच जाता हूं जब दर्शक लोग उठकर जाना चाहते हैं पर संकोच के मारे जल्दी उठते नहीं। यदि उनके मन की तसवीर कोई चित्रकार खींच दे तो मनोविज्ञान के 'खोजियों' के लिए एक अनोखी वस्तु मिल जाए।

हां, तो एक दिन हाकी खेलकर आया। कपड़े उतारे, स्नान किया। शाम को भोजन कर लेने की मेरी आदत है, पर आज मैच में रेफ्रेशमेंट जरा ज्यादा खा गया था इसलिए भूख न थी। श्रीमती जी ने खाने को पूछा। मैंने कह दिया कि आज स्कूल में मिठाई खाकर आया हूं, कुछ विशेष भूख नहीं है। उन्होंने कहा "विशेष न सही, साधारण सही। मुझे आज सिनेमा जाना है। तुम अभी खा लेते तो अच्छा था। संभव है मेरे आने में देर हो।" मैंने फिर इंकार नहीं किया, उस दिन थोड़ा ही खाया। बारह पूरियां थीं और वही रोज वाली आध पाव मलाई। मलाई खा चुकने के बाद पता चला कि 'प्रसाद' जी के यहां से बाग बाजार का रसगुल्ला आया है। रस तो होगा ही। कल संभव है, कुछ खट्टा हो जाए। छः रसगुल्ले निगलकर मैंने चारपाई पर धरना दिया। रसगुल्ले छायावादी कविताओं की भांति

सूक्ष्म नहीं थे, स्थूल थे। एकाएक तीन बजे रात को नींद खुली। नाभि के नीचे दाहिनी ओर पेट में मालूम पड़ता था, कोई बड़ी-बड़ी सुइयां लेकर कोंच रहा है। परंतु मुझे भय नहीं मालूम हुआ, क्योंकि ऐसे ही समय के लिए औषधियों का राजा, रोगों का रामबाण, अमृतधारा की एक शीशी सदा मेरे पास रहती है। मैंने तुरंत उसकी कुछ बूंदें पान कीं। दोबारा दवा पी। तिबारा। पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा की सार्थकता उसी समय मुझे मालूम हुई। प्रातःकाल होते-होते शीशी समाप्त हो गई। दर्द में किसी प्रकार कमी न हुई। प्रातःकाल एक डाक्टर के यहां आदमी भेजना पड़ा।

रायबहादुर डाक्टर विनोदबिहारी मुकर्जी यहां के बड़े नामी डाक्टर हैं। पहले जब प्रैक्टिस नहीं चलती थी तब आप लोगों के यहां मुफ्त जाते थे। वहां से पता चला कि डाक्टर साहब नौ बजे ऊपर से उतरते हैं। इसके पहले वह कहीं जा नहीं सकते। लाचार दूसरे के पास आदमी भेजना पड़ा। दूसरे डाक्टर साहब सरकारी अस्पताल के सब-असिस्टेंट थे। वे एक एक्के पर तशरीफ लाए। सूट तो वे ऐसा ही पहने हुए थे कि मालूम पड़ता था, प्रिंस आफ वेल्स के वेलेटों में हैं। ऐसे सूट वाले का एक्के पर आना वैसा ही मालूम हुआ जैसा लीडरों का मोटर छोड़कर पैदल चलना। मैं अपना पूरा हाल भी न कह पाया था कि आप बोले, “जबान दिखाइए”। प्रेमियों को जो मजा प्रेमिकाओं की आंखें देखने में आता है, शायद वैसा ही डाक्टरों को मरीजों की जीभ में आता है। डाक्टर महोदय मुस्कराए। बोले, ''घबराने की कोई बात नहीं है। दवा पीजिए। दो खुराक पीते-पीते आपका दर्द वैसे ही गायब हो जाएगा, जैसे हिंदुस्तान से सोना गायब हो रहा है।'' मैं तो दर्द से बेचैन था। डाक्टर साहब साहित्य का मजा लूट रहे थे। चलते-चलते बोले, “अभी अस्पताल खुला न होगा नहीं तो आपको दवा मंगानी न पड़ती। खैर, चन्द्रकला फारमेसी से दवा मंगवा लीजिएगा। वहां दवाइयां ताजा मिलती हैं। बोतल में पानी गर्म करके सेंकिएगा।'' दवा पी गई। गर्म बोतलों से सेंक भी आरंभ हुई। सेंकते-सेंकते छाले पड़ गए। पर दर्द में कमी न हुई।

दोपहर हुई, शाम हुई। पर दर्द में कमी न हुई, हटने का नाम तो दूर। लोग देखने के लिए आने लगे। मेरे घर पर मेला लगने लगा। ऐसे ऐसे लोग आए कि कहां तक लिखें। हां, एक विशेषता थी। जो आता एक न एक नुस्खा अपने साथ लेता आता था। किसी ने कहा, अजी, कुछ नहीं हींग पिला दो, किसी ने कहा, चूना खिला दो। खाने के लिए सिवा जूते के और कोई चीज बाकी नहीं रह गई जिसे लोगों ने न बताई हो। यदि भारतीय सरकार को मालूम हो जाए कि देश में इतने डाक्टर हैं तो निश्चय है कि सारे मेडिकल कालेज तोड़ दिए जाएं। इतने खर्च की आखिर आवश्यकता ही क्या है?

कुछ समझदार लोग भी आते थे, जो इस बात की बहस छेड़ देते थे कि असहयोग-आंदोलन सफल होगा कि नहीं, ब्रिटिश नीति में कितनी सच्चाई है, विश्व आर्थिक

सम्मेलन में अमेरिका का भाषण बहुत स्वार्थपूर्ण हुआ इत्यादि। मैं इस समय केवल स्मरण-शक्ति से काम ले रहा हूं। तीन दिन बीत गए। दर्द में कमी न हुई। कभी-कभी कम हो जाता था; बीच-बीच में जोरों का हमला हो जाता था, मानो चीन-जापान का युद्ध हो रहा हो।

तीसरे दिन तो यह मालूम होता था कि मेरा घर क्लब बन गया है। लोग आते मुझे देखने के लिए, पर चर्चा छिड़ती थी कि पंडित बनारसीदास ने इस बार किसको पछाड़ा, प्रसाद जी का अमुक नाटक स्टेज की दृष्टि से कैसा है, हिंदी के दैनिक पत्रों में बड़ी अशुद्धियां रहती हैं, अब देश में अनारकिस्ट नहीं रह गए हैं, लार्ड विलिंगडन अब ब्रुकबांड चाय नहीं पीते, छतारी के नवाब टेढ़ी टोपी क्यों लगाते हैं और राय कृष्णदास हफ्ते में नौ बार दाढ़ी क्यों बनवाते हैं; अर्थात लार्ड विलिंगडन और महात्मा गांधी से लेकर रामजियावन लाल पटवारी तक की आलोचना यहां बैठकर लोग करते थे। और यहां दर्द की वह दर्दनाक हालत थी कि क्या लिखूं। मुझे भी कुछ बोलना ही पड़ता था। ऊपर से पान और सिगरेट की चपत अलग, भला दर्द में क्या कमी हो। बीच-बीच में लोग दवा की सलाह और डाक्टर बदलने की सलाह और कौन डाक्टर किस तरह का है, यह भी बतलाते जाते थे।

आखिर में लोगों ने कहा कि तुम कब तक इस तरह पड़े रहोगे। किसी दूसरे की दवा करो। लोगों की सलाह से डाक्टर चूहानाथ कतरजी को बुलाने की सबकी सलाह हुई। आप लोग डाक्टर साहब का नाम सुनकर हंसेंगे। पर यह मेरा दोष नहीं है। डाक्टर साहब के मां-बाप का दोष है। यदि मुझे उनका नाम रखना होता तो अवश्य ही कोई साहित्यिक नाम रखता। परंतु ये यथानाम तथा गुण। आपकी फीस आठ रुपए थी और मोटर का एक रुपया अलग। आप लंदन के एफ.आर.सी.एस. थे।

कुछ लोगों का सौंदर्य रात में बढ़ जाता है, डाक्टरों की फीस रात में बढ़ जाती है। खैर, डाक्टर साहब बुलाए गए। आते ही हमारे हाल पर रहम किया और बोले, मिनटों में दर्द गायब हुआ जाता है, थोड़ा पानी गरम कराइए, तब तक यह दवा मंगवाइए। एक पुर्जे पर आपने दवा लिखी। पानी गर्म हुआ। दो रुपए की दवा आई। डाक्टर बाबू ने तुरंत एक छोटी-सी पिचकारी निकाली; उसमें एक लंबी सूई लगाई, पिचकारी में दवा भरी और मेरे पेट में वह सूई कोंचकर दवा डाली।

यह कह देना आसान है कि मेरा कलेजा निगाहों के नेजे के घुस जाने से रेजा-रेजा हो गया है, अथवा उनका दिल बरूनी की बरछियों के हमले से टुकड़े-टुकड़े हो गया है, पर अगर सचमुच एक आलपीन भी धंस जाए तो बड़े-बड़े प्रेमियों को नानी याद आ जाए, प्रेमिकाएं भूल जाएं। डाक्टर साहब कुछ कहकर और मुझे सांत्वना देकर चले गए। इसके बाद मुझे नींद आ गई और मैं सो गया। मेरी नींद कब खुली कह नहीं सकता, पर दर्द में कमी हो चली थी और दूसरे दिन प्रातःकाल पीड़ा रफूचक्कर हो गई थी।

कोई दो सप्ताह मुझे पूरा स्वस्थ होने में लगे। बराबर डाक्टर चूहानाथ कतरजी की दवा पीता रहा। अठारह आने की शीशी प्रतिदिन आती रही। दवा के स्वाद का क्या कहना। शायद मुर्दे के मुख में डाल दी जाए तो वह भी तिलमिला उठे। पंद्रह दिन के बाद मैं डाक्टर साहब के घर गया। उन्हें धन्यवाद दिया। मैंने पूछा कि अब तो दवा पीने की कोई आवश्यकता न होगी। वे बोले, "यह तो आपकी इच्छा पर है। पर यदि आप काफी एहतियात न करेंगे तो आपको 'अपेंडिसाइटीज' हो जाएगा। यह दर्द मामूली नहीं था। असल में आपको 'सीलियो सेंट्रिक कोलाइटीज' हो गया था। और उससे 'डेवेलप' कर 'पेरिकार्डियल हाइड्रेट्यूलिक स्टमकालिस' हो जाता, फिर ब्रह्मा भी कुछ न कर सकते। मालूम होता है कि आपकी श्रीमती बड़ी भाग्यवती हैं। अगर छः घंटे की देर और हो जाती तो उन्हें जिंदगी भर रोना पड़ता। वह तो कहिए कि आपने मुझे बुला लिया। अभी कुछ दिनों आप दवा कीजिए।"

डाक्टर महोदय ने ऐसे-ऐसे मर्जों के नाम सुनाए कि मेरी तबीयत फड़क उठी। भला मुझे ऐसे मर्ज हुए जिनका नाम साधारण क्या बड़े पढ़े-लिखे लोग भी नहीं जानते। मालूम नहीं, ये मर्ज सब डाक्टरों को मालूम हैं कि केवल हमारे डाक्टर चूहानाथ को ही मालूम हैं। खैर, दवा जारी रखी।

अभी एक सप्ताह भी पूरा न हुआ था कि दो बजे को एकाएक फिर दर्द रूपी फौज ने मेरे शरीररूपी किले पर हमला कर दिया। डाक्टर साहब ने जिन-जिन भयंकर मर्जों का नाम लिया था उनका स्वरूप मेरी तड़पती हुई आंखों के सामने नृत्य करने लगा। मैं सोचने लगा कि हुआ हमला किसी उन्हीं में से एक मर्ज का। तुरंत डाक्टर साहब के यहां आदमी दौड़ाया गया कि इंजेक्शन का सामान लेकर चलिए। वहां से आदमी बिना मांगी पत्रिका की भांति लौटकर आया कि डाक्टर साहब कहीं गए हैं। इधर मेरी हालत क्या थी उसका वर्णन यदि सरस्वती शार्टहैंड से भी लिखे तो संभवतः समाप्त न हो। एयरोप्लेन के पंखे की तेजी के समान करवटें बदल रहा था। इधर मित्रों और घरवालों की कांफ्रेंस हो रही थी कि अब कौन बुलाया जाए, पर 'डिसार्मामेंट कांफ्रेंस' की भांति कोई न किसी की बात मानता था, न कोई निश्चय ही हो पाता था। मालूम नहीं, लोगों में क्या बहस हुई, कौन-कौन प्रस्ताव फेल हुए, कौन-कौन पास। जहां मैं पड़ा कराह रहा था उसी के बगल में लोग बहस कर रहे थे। कभी-कभी किसी-किसी की चिल्लाहट सुनाई दे जाती थी। बीमार मैं था, अच्छा-बुरा होना मुझे था, फीस मुझे देनी थी, परंतु लड़ और लोग रहे थे। मालूम होता था कि उन्हीं लोगों में से किसी की जमींदारी कोई जबरदस्ती छीने लिए जा रहा है। अंत में हमारे मकान के बगल में रहने वाले पंडित जी की विजय हुई और आयुर्वेदाचार्य, रसज्ञ-रंजन, चिकित्सा-मार्तंड, प्रमेह-गज-पंचानन, कविराज पंडित सुखड़ी शास्त्री के बुलाने की बात तय हुई। आधा घंटा तो बहस में बीता। खैर, किसी तरह से कुछ तय हुआ। एक सज्जन उन्हें बुलाने के लिए भेजे गए। कोई पैंतालीस मिनट बीत गए, परंतु वहां से न वैद्यजी आए,

न भेजे गए सज्जन का ही पता चला। एक ओर दर्द इनकम टैक्स की तरह बढ़ता ही चला जा रहा था, दूसरी ओर इन लोगों का भी पता नहीं। और भी बेचैनी बढ़ी। अंत में जो साहब गए थे वे लौटे, वैद्य जी ने बड़े गौर से पत्रा देखा और कहा कि अभी बुद्ध क्रांति-वृत्त में शनि की स्थिति है, एकतीस पल नौ विपल में शनि बाहर हो जाएगा और डेढ़ घड़ी एकादशी का योग है, उसके समाप्त होने पर मैं चलूंगा। आप आधा घंटे में आइएगा। सुनकर मेरा कलेजा कबाब हो गया। मगर वे कह आए थे, अतएव बुलाना भी आवश्यक था। मैंने फिर उन्हें भेजा। कोई आधे घंटे बाद वैद्य जी एक पालकी पर तशरीफ लाए। आकर आप मेरे सामने कुर्सी पर बैठ गए। आप धोती पहने हुए थे और कंधे पर एक सफेद दुपट्टा डाले हुए थे। इसके अतिरिक्त शरीर पर सूत के नाम पर केवल जनेऊ था, जिसका रंग देखकर यह शंका होती थी कि कविराज जी कुश्ती लड़कर आ रहे हैं। वैद्य जी ने कुछ और न पूछा—पहले नाड़ी हाथ में ली। पांच मिनट तक एक हाथ की नाड़ी देखी, फिर दूसरे हाथ की। बोले, "वायु का प्रकोप है, यकृत से वायु घूमकर पित्ताशय में प्रवेश कर अंत्र में जा पहुंची है। इससे मंदाग्नि का प्रादुर्भाव होता है और इसी कारण जब भोज्य पदार्थ प्रतिहत होता है तब शूल का कारण होता है। संभव है, मूत्राशय में अश्मन भी एकत्र हो।" कविराज जी मालूम नहीं क्या बक रहे थे और मेरी तबीयत दर्द और क्रोध से एक दूसरे ही संसार में हो रही थी। आखिर मुझसे न रहा गया। मैंने एक सज्जन से कहा, "जरा आलमारी में से आपटे का कोष तो लेते आइए" यह सुनकर लोग चकराए। कुछ लोगों को संदेह हुआ कि अब मैं अपने होश में नहीं हूं। मैंने कहा, "दवा तो पीछे होगी, मैं पहले समझ तो लूं कि मुझे रोग क्या है?" पंडित जी कहने लगे, "बाबू साहब, देखिए आजकल के नवीन डाक्टरों को रोगों का निदान तो ठीक मालूम ही नहीं, चिकित्सा क्या करेंगे। अंग्रेजी पढ़े-लिखों का वैद्यक-शास्त्र पर से विश्वास उठ गया है। परंतु हमारे यहां ऐसी-ऐसी औषधियां हैं कि एक बार मृत्युलोक से भी लौटा लें। मुहूर्त मिल जाना चाहिए। और अच्छा वैद्य मिल जाना चाहिए।" इसके पश्चात वैद्य जी चरक, सुश्रुत, रसनिघंटु, भेषजदीपिका, चिकित्सा-मार्तंड के श्लोक सुनाने लगे। और अंत में कहा, "देखिए, मैं दवा देता हूं और अभी आपको लाभ होगा। परंतु इसके पश्चात आपको पर्पटी का सेवन करना होगा। क्योंकि आपका शुक्र मंद पड़ गया है। गोमूत्र में आप पर्पटी का सेवन कीजिए, फिर देखिए दर्द पारद के समान उड़ जाएगा और गंधक के समान भस्म हो जाएगा। लिखा है

गोमूत्रेण समायुक्ता रसपर्पटिकाशिता।
मासमात्रप्रयोगेण शूलं सर्वे विनाशयेत्।।

मैंने कहा, "शुक्र अस्त नहीं हो गया, यही क्या कम है। पंडित जी गोमूत्र पिलाइए और गोबर भी खिलाइए। शायद आप लोगों के शास्त्र में और कोई भोजन रह ही नहीं गया है। इसी कारण से आप लोगों के दिमाग की बनावट भी विचित्र है। खैर, पंडित जी

ने दवा दी। कहा कि अदरख के रस में इस औषधि का सेवन करना होगा। खैर, साहब, फीस दी गई, किसी प्रकार वैद्य जी से पिंड छूटा। दो दिन दवा की गई। कभी-कभी तो कम अवश्य हो जाता था, पर पूरा दर्द न गया। सी.आई.डी. के समान पीछा छोड़ता ही न था। वैद्य जी के यहां जब आदमी जाता तब कभी रविवार के कारण, कभी प्रदोष के कारण और शायद त्रिदोष के कारण ठीक समय से दवा ही नहीं देते थे।

अब वैसी बेचैनी नहीं रह गई थी, पर बलहीन होता गया। खाना-पीना भी ठीक मिलता ही न था। चारपाई पर पड़ा रहने लगा। दिन को मित्रों की मंडली आती थी। वह आराम देती थी कम, दिमाग चाटती थी अधिक। कभी-कभी दूर-दूर से रिश्तेदार भी आते थे। और सब लोग डाक्टरों को गाली देकर और मुझे बिना मांगी सलाह देकर चले जाते थे। मैं चारपाई पर 'इंटर्न' था। आखिर मेरा विचार हुआ कि फिर डाक्टर साहब की याद की जाए। जिस समय मैं यह जिक्र कर रहा था एक 'कांग्रेसमैन' बैठे हुए थे। यह सज्जन अभी जेल से लौटे थे। मुझे देखने के लिए तशरीफ लाए थे। बोले, "साहब, आप लोगों को देश का हर समय ध्यान रखना चाहिए। ये डाक्टर सिवा विलायती दवाओं के ठीकेदार के और कुछ नहीं होते। इनके कारण ही विलायती दवाएं आती हैं। आप किसी भारतीय हकीम अथवा वैद्य को दिखलाइए।" ऐसी खोपड़ी वालों से मैं क्या बहस करता? मैंने मन में सोचा कि वैद्य महाराज को तो मैंने देख ही लिया। कुछ और रुपयों पर ग्रह आया होगा, हकीम भी सही। एक की सलाह से मसीहुअ हिंद, बुकराते जमां, सुकरातुश्शफा जनाब हकीम आलुए बुखारा साहब के यहां आदमी भेजा। आप फौरन तशरीफ लाए। इस जमाने में भी जब तेज-से-तेज सवारियों का प्रबंध सभी जगह मौजूद हैं, आप पालकी में चलते हैं। मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि पालकी रख दी जाती है अथवा कहार कंधे पर ले लेता है और हकीम साहब उसमें टहला करते हैं। मेरा मतलब यह है कि जब किसी के यहां आप बुलाए जाते हैं तब पालकी के भीतर बैठकर आप जाते हैं।

हकीम साहब आए। यद्यपि मैं अपनी बीमारी का जिक्र और अपनी बे-बसी का हाल लिखना चाहता हूं, पर हकीम साहब की पोशाक और उनके रहन-सहन तथा फैशन का जिक्र न करना मुझसे न हो सकेगा। सर्दी बहुत तेज नहीं थी। बनारस में यों भी तेज सर्दी नहीं पड़ती। फिर भी ऊनी कपड़ा पहनने का समय आ गया था। परंतु हकीम साहब चिकन का बंददार अंगा पहने हुए थे। सिर पर बनारसी लोटे की तरह टोपी रखी हुई थी। पांव में पाजामा ऐसा मालूम होता था कि चूड़ीदार पाजामा बनने वाला था, परंतु दर्जी ईमानदार था। उसने कपड़ा चुराया नहीं, सबका सब लगा दिया; अथवा यह भी हो सकता है कि ढीली-मोहरी के लिए कपड़ा दिया गया हो और दर्जी ने कुछ कतर-ब्योंत की हो और चुस्ती दिखाई हो। जूता कामदार दिल्ली वाला था, मोजा नहीं था। रूमाल इतना बड़ा था कि अगर उसमें कसीदा कढ़ा न होता तो मैं समझता कि यह रूमाल मुंह अथवा हाथ पोंछने के लिए

नहीं तरकारी बांधने के लिए है। हकीम साहब के दाढ़ी के बाल ठुड्डी की नोक ही पर इकट्ठे हो गए थे। मालूम होता था कि हजामत बनाने का बुरूश है। हकीम साहब पतले-दुबले इतने थे कि मालूम पड़ता था, अपनी तंदुरुस्ती आपने अपने मरीजों को बांट दी है। हकीम साहब में नजाकत भी बला की थी। रहते थे बनारस में, मगर कान काटते थे लखनऊ के।

आते ही मैंने सलाम किया, जिसका उत्तर उन्होंने मुस्कराते हुए बड़े अंदाज से दिया और बोले, "मिजाज कैसा है?"

मैंने कहा, "मर रहा हूं। बस, आपका ही इंतिजार था। अब यह जिंदगी आपके ही हाथों में है।"

हकीम साहव ने कहा, "या रब! आप तो ऐसी बातें करते हैं गोया जिंदगी से बेजार हो गए हैं। भला ऐसी गुफ्तगू भी कोई करता है। मरें आपके दुश्मन। नब्ज तो दिखलाइए। खुदावंदकरीम ने चाहा तो आननफानन में दर्द रफूचक्कर होगा।"

मैंने कहा, "अब आपकी दुआ है। आपका नाम बनारस में ही नहीं, हिंदुस्तान में लुकमान की तरह मशहूर है, इसीलिए आपको तकलीफ दी गई है।

दस मिनट तक हकीम साहब ने नब्ज देखी। फिर बोले, "मैं यह नुस्खा लिखे देता हूं। इसे इस वक्त आप पीजिए, इंशा अल्लाह जरूर शफा होगी। मैंने बगौर देख लिया। लेकिन आपका मेदा साफ नहीं है और सारे फसाद की बुनियाद यही है।"

मैंने कहा, "तो बुनियाद उखाड़ डालिए। किस दिन के लिए छोड़ रहे हैं।"

हकीम आलू बुखारा साहब बोले, "तो आप मुसहिल ले लीजिए। पांच रोज तक मुंजिज पीना होगा इसके बाद मुसहिल। इसके बाद मैं एक माजून लिख दूंगा। उसमें जोफ दिल, जोफ दिमाग, जोफ जिगर, जोफ मेदा, जोफ चश्म, हर एक की रियायत रहेगी।" मुझसे न रहा गया। मैं बोला, "कई जोफ आप छोड़ गए, इसे कौन अच्छा करेगा।" हकीम साहब ने कहा, "जब तक मैं हूं, आप कोई फिक्र न कीजिए।"

एक सज्जन ने उनके हाथों में फीस रखी। हकीम साहब चलने को तैयार हुए। उठे। उठते-उठते बोले, जरा एक बात का ख्याल रखिएगा कि आजकल दवाइयां लोग बहुत पुरानी रखते हैं। मेरे यहां ताजा दवाइयां रहती हैं।

मैंने उनकी दवा उस दिन पी। वह कटोराभर दवा जिसकी महक रामघाट के सिवर से कंपिटीशन के लिए तैयार थी, किसी प्रकार गले के नीचे उतार गया, जैसे अहल्कार लोग अंग्रेजों की डांट निगल जाते हैं। दूसरे दिन मुंजिज आरंभ हुआ। उसका पीना और भी एक आफत थी। मालूम पड़ता था, भरतपुर के किले पर मोरचा लेना है। मेरी इच्छा हुई कि उठाकर गिलास फेंक दूं, पर घरवाले जेल के पहरुओं की भांति सिर पर सवार रहते थे। चौथे दिन मुसहिल की बारी आई। एक बड़े से मिट्टी के बधने से दवा मुझे पीने को दी

गई। शायद दो सेर के लगभग रही होगी। एक घूंट गले के नीचे उतरा होगा कि जान-बूझकर मैंने करवा गिरा दिया। बधना गिरते ही असफल प्रेमी के हृदय की भांति चूर-चूर हो गया और दवा होली के रंग के समान सबकी धोतियों पर जा पड़ी। उस दिन के बाद से हकीम साहब की दवा मुझे पिलाने का फिर किसी को साहस न हुआ। खेद इतना ही रह गया कि उसी के साथ हकीम साहब वाला माजून भी जाता रहा।

दर्द फिर कम हो चला। परंतु दुर्बलता बढ़ती जाती थी। कभी-कभी दर्द का दौरा अधिक वेग से हो जाता था। अब लोगों को विशेष चिंता मेरे संबंध में नहीं रहती थी। कहने का मतलब यह है कि लोग देखने-सुनने कम आते थे। वही घनिष्ठ मित्र आते थे। घरवालों को और मुझे भी दर्द के संबंध में विशेष चिंता होने लगी। कोई कहता कि लखनऊ जाओ, कोई एक्स-रे का नाम लेता था। किसी-किसी ने राय दी कि जल-चिकित्सा कीजिए। एक सज्जन ने कहा, यह सब कुछ नहीं, आप होमियोपैथी इलाज शुरू कीजिए, देखिए कितनी शीघ्रता से लाभ होता है। बोले, ''साहब, इन नन्हीं-नन्हीं गोलियों में मालूम नहीं कहां का जादू है। साहब जादू का काम करती है, जादू का।''

एक नेचर-क्योर वाले ने कहा कि आप गीली मिट्टी पेट पर लेपकर धूप में बैठिए, एक हफ्ते में दर्द हवा हो जाएगा। हमारे ससुर साहब एक डाक्टर को लेकर आए। उन्होंने कहा, ''देखिए साहब! आप पढ़े-लिखे आदमी हैं। समझदार हैं ...'' मैं बीच में बोल उठा, ''समझदार न होता तो भला आपको कैसे यहां बुलाता।''

डाक्टर महोदय ने कहा, ''दवा तो नेचर की सहायता करने के लिए होती है। आप कुछ दिनों तक अपना 'डायट' बदल दीजिए। मैंने इसी डायट पर कितने ही रोगियों को अच्छा किया है। मगर हम लोगों की सुनता कौन है। असल में आपमें विटेमिन 'एफ' की कमी है। आप नीबू, नारंगी, टमाटो, प्याज, धनिया के रस में सलाद भिगोकर खाया कीजिए। हरी-भरी पत्तियां खाया कीजिए।''

मैंने पूछा, ''पत्तियां खाने के लिए पेड़ पर चढ़ना होगा। अगर इसके बजाय घास बतला दें तो अच्छा हो। जमीन पर ही मिल जाएगी।''

इसी प्रकार जो आता इतनी हमदर्दी दिखलाता था कि एक डाक्टर, हकीम या वैद्य अपने साथ लेता आता था।

खाने के लिए साबूदाना ही मेरे लिए अब न्यामत थी। ठंडा पानी मिल जाता था, यह परमात्मा की दया थी। तीन बजे एक पंडित जी महाराज आकर एक पोथी में से बड़-बड़ पाठ किया करते थे और मेरा मग्ज खाते थे। शाम को एक पंडित और आकर मेरे हाथ में कुछ धूल रख जाते कि महामृत्युंजय का प्रसाद है। इसी बीच में मेरी नानी की मौसी मुझे देखने आईं। उन्होंने बड़े प्रेम से देखा। देखकर बोलीं, ''मैं तो पहले ही सोच रही थी कि यह कुछ ऊपरी खेल है।'' मैंने पूछा, ''यह ऊपरी खेल क्या है नानीजी।'' बोलीं, ''बेटा,

"सब कुछ किताब में ही थोड़े लिखा रहता है। यह किसी चुड़ैल का फसाद है।" मेरी स्त्री और माता की ओर दिखाकर कहने लगीं, "देखो न इसकी बरौनी कैसी खड़ी है। कोई चुड़ैल लगी है। किसी को दिखा देना चाहिए"। मैंने कहा, "डाक्टर तो मेरी जान के पीछे लग गए हैं! क्या चुड़ैल उनसे भी बढ़कर होगी।" जब सब लोग चले गए तब मेरी स्त्री ने कहा, "तुम लोगों की बात क्यों नहीं मान लिया करते? कुछ हो या न हो, इसमें तुम्हारा हर्ज ही क्या है। कुछ खाने की दवा तो देंगे नहीं। परमात्मा की आज्ञा तो टाली जा सकती है, परंतु अपनी या मैं तो कहूंगी किसी भले आदमी की स्त्री की आज्ञा कोई भला आदमी नहीं टाल सकता। मैंने कहा, "तुम लोगों को जो कुछ करना है करो, मगर मेरे पास किसी को मत बुलाना। कोई ओझा या भूत का पचड़ा मेरे पास लेकर आया तो वही सन् 2 में मुजफ्फरपुर सम्मेलन में जो चप्पल पहनकर गया था उसी से मैं उठकर मरम्मत करने लगूंगा।" श्रीमती जी बोलीं, "अजी वह कोई ओझा थोड़े ही हैं। एम.ए. पास हैं। कुछ समझा होगा तभी तो यह काम करते हैं। कितनी स्त्रियां रोज उनके पास जाती हैं, कितने पुरुष जाते हैं। बड़े वैज्ञानिक ढंग से उन्होंने इसका अन्वेषण किया है।"

मेरे दर्द में किसी विशेष प्रकार की कमी न हुई। ओझा से तो किसी प्रकार की आशा क्या करता। पर बीच-बीच में दवा भी होती जाती थी। अंत में मेरे साले साहब ने बड़ा जोर दिया कि यह सब झेलना इसीलिए है कि तुम ठीक दवा नहीं करते। होमियोपैथी चिकित्सा शुरू करो, सारी शिकायत गंजों के बाल की तरह गायब हो जाएगी। मैंने भी कहा,"मुर्दे पर जैसे बीस मन वैसे पचास। ऐसा न हो कि कोई कह दे कि अमुक 'सिस्टम' का इलाज छूट गया।" अब राय होने लगी कि किस होमियोपैथ को बुलाया। हमारे मकान से कुछ दूरी पर होमियोपैथ डाकिया था। दिनभर चिट्ठी बांटता था, सवेरे और शाम दो पैसे पुड़िया दवा बांटता था। सैकड़ों मरीज उसके यहां जाते। बड़ी प्रैक्टिस थी। एक और होमियोपैथ थे। चार पैसे फर्मा दिन में पुस्तकों का अनुवाद करते थे और प्रायः सायं होमियोपैथी से चार-छः आने पैदा कर लेते थे। एक मास्टर भी थे जो कहा करते थे कि सच पूछो तो जैसी होमियोपैथी मैने 'स्टडी' की है, किसी ने नहीं की। कुछ बहस के बाद एक डाक्टर का बुलाना निश्चित हुआ। डाक्टर महोदय आए। आप भी बंगाली थे। आते ही सिर से पांव तक मुझे तीन-चार बार ऐसे देखा मानो मैं हानोलूलू से पकड़कर लाया गया हूं और खाट पर लिटा दिया गया हूं। इसके पश्चात मेडिकल सनातन-धर्म के अनुसार मेरी जीभ देखी। फिर पूछा, "दर्द ऊपर से उठता है, कि नीचे से, बाएं से कि दाएं से, नोचता है कि कोंचता है; चिकोटता है कि बकोटता है; मरोड़ता है कि खरबोटता है।" मैंने कहा कि मैंने तो दर्द की फिल्म तो उतरवाई नहीं है। जो कुछ मालूम होता है, मैंने आपसे कह दिया। डाक्टर महोदय बोले, "बिना सिमटाम के देखे कैसे दवा देने सकता है। एक-एक दवा का भेरियस सिमटाम होता है।" फिर मालूम नहीं कितने सवाल मुझसे पूछे। इतने सवाल तो

आई.सी.एस. 'वाइवावोसी' में भी नहीं पूछे जाते। कुछ प्रश्न यहां अवश्य बतला देना चाहता हूं। मुझसे पूछा, "तुम्हारे बाप के चेहरे का रंग कैसा था। कै बरस से तुमने सपना नहीं देखा। जब चलते हो तब नाक हिलती है या नहीं। किसी स्त्री के सामने खड़े होते हो तब दिल धड़कता है कि नहीं? जब सोते हो तब दोनों आंखें बंद रहती हैं कि एक। सिर हिलाते हो तो खोपड़ी में खटखट आवाज आती है कि नहीं। मैंने कहा, "आप एक शार्टहैंड राइटर भी साथ लेकर चलते हैं कि नहीं। इतने प्रश्नों का उत्तर देना मेरे लिए असंभव है।"

फिर डाक्टर बाबू ने पचीसों पुस्तकों का नाम लिया और बोले, "फेरिंगटन यह कहते हैं, नैश यह कहते हैं, क्लार्क के हिसाब से यह दवा होगी। डाक्टर साहब पंद्रह-बीस पुस्तकें भी लाए थे। आध घंटे तक उन्हें देखते रहे। तब दवा दी। आपकी दवा से कुछ लाभ अवश्य हुआ, पर पूरा फायदा न हुआ। मैंने अब पक्का इरादा कर लिया कि लखनऊ जाऊं। जो बात काशी में नहीं हो सकती, लखनऊ में हो सकती है। वहां सभी साधन हैं।

सब तैयारी हो चुकी थी कि इतने में एक और डाक्टर को एक मेहरबान लिवा लाए। उन्होंने देखा, कहा, "जरा मुंह तो देखूं।" मैंने कहा, "मुंह-जीभ जो चाहे देखिए।" देखकर बड़े जोर से हंसे। मैं घबराया। ऐसी हंसी केवल कवि-सम्मेलन में बेढंगी कविता पढ़ने के समय सुनाई देती है। मैं चकित भी हुआ। डाक्टर बोले, "किसी डाक्टर को यह सूझी नहीं। तुम्हें 'पाइरिया' है। उसी का जहर पेट में जा रहा है और सब फसाद पैदा कर रहा है" मैंने कहा, "तब क्या करूं?" डाक्टर साहब ने कहा, "इसमें करना क्या है? किसी डेंटिस्ट के यहां जाकर सब दांत निकलवा दीजिए।" मैंने अपने मन में कहा, "आपको तो यह कहने में कुछ कठिनाई ही नहीं हुई। गोया दांत निकलवाने में कोई तकलीफ ही नहीं होती।' खैर, रातभर मैंने सोचा। मैंने भी यही निश्चय किया कि यही डाक्टर ठीक कहता है। डेंटिस्ट के यहां से पुछवाया। उसने कहलाया कि तीन रुपए फी दांत तुड़वाने में लगेंगे। कुल दांतों के लिए छानबे रुपए लगेंगे। मगर मैं आपके लिए छः रुपए छोड़ दूंगा। इसके अतिरिक्त दांत बनवाई डेढ़ सौ अलग। यह सुनकर पेट के दर्द के साथ-साथ सिर में भी चक्कर आने लगा। मगर मैंने सोचा कि जान सलामत है तो सब कुछ। इतना और खर्च करो। श्रीमती से मैंने रुपए मांगे। उन्होंने पूछा, "क्या होगा?" मैंने सारा हाल कह दिया। वे बोलीं, "तुम्हारी बुद्धि कहीं घास चरने गई है क्या? किसी कवि का तो साथ नहीं हो गया है कि ऐसी बातें सूझने लगी हैं। आज कोई कहता है दांत उखड़वा डालो। कल कोई कहेगा सारे बाल उखड़वा डालो; परसों कोई डाक्टर कहेगा नाक नोचवा डालो, आंख निकलवा दो। यह सब फजूल है। तुम सुबह टहला करो, किसी एक भले डाक्टर की दवा करो। खाना ठिकाने से खाओ। पंद्रह दिन में ठीक हो जाओगे। मैंने सबका इलाज भी देख लिया।" मैंने कहा, "तुम्हें अपनी ही दवा करनी थी तो इतने रुपए क्यों बरबाद कराए?"

कुछ दिन के बाद मैंने समझा कि स्त्रियों में भी बुद्धि होती है। विशेषतः बीस साल की आयु के बाद।

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पं. गजानन्द शास्त्री की धर्मपत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्री जी ने आपके साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी के पिता को षोडशी कन्या के लिए पैंतालीस साल का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। वैद्य का पेशा अख़्तियार किए शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ 'शास्त्रिणी' का साइन-बोर्ड टांगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी उतनी ही उम्र में गहन पातिव्रत्य पर अविराम लेखनी चलाने लगीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है, धर्म की रक्षा के लिए।

इससे सिद्ध है, धर्म बहुत ही व्यापक है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने वालों का कहना है कि नश्वर संसार का कोई काम धर्म के दायरे से बाहर नहीं। संतान पैदा होने के पहले से मृत्यु के बाद पिंडदान तक जीवन के समस्त भविष्य, वर्तमान और भूत को व्याप्त कर धर्म-ही-धर्म है।

जितने देवता हैं, चूंकि देवता हैं, इसलिए धर्मात्मा हैं। मदन को भी देवता कहा है। यह जवानी के देवता हैं। जवानी जीवनभर का शुभ मुहूर्त है, सबसे पुष्ट, कर्मठ और तेजस्वी देवता मदन, जो भस्म होकर नहीं मरे; लिहाजा यह काल और काल के देवता सबसे ज्यादा सम्मान्य, फलतः क्रियाएं भी सबसे अधिक महत्वपूर्ण, धार्मिकता लिए हुए। मदन को कोई देवता न माने तो न माने, पर यह निश्चय है कि आज तक कोई देवता इन पर प्रभाव नहीं डाल सका। किसी धर्म, शास्त्र या अनुशासन को यह मानकर नहीं चले, बल्कि, धर्म, शास्त्र और अनुशासन के मानने वालों ने ही इनकी अनुवर्तिता की है। यौवन को भी कोई कितना निंद्य कहे, चाहते सब हैं, वृद्ध सर्वस्व भी स्वाहा कर। चिह्न तक लोगों को प्रिय हैं—खिजाब की कितनी खपत! धातु-पुष्टि की दवा सबसे ज्यादा बिकती है। साबुन, सेंट, पाउडर, क्रीम, हेजलीन, वेसलीन, तेल-फुलेल के लाखों कारखाने हैं और इस दरिद्र देश में। जब न थे, रामजी और सीताजी उबटन लगाते थे। नाम और प्रसिद्धि कितनी है —संसार के सिनेमा-स्टारों को देख जाइए। किसी शहर में गिनिए—कितने सिनेमा-हाउस हैं। भीड़ भी कितनी—आवारागर्द मवेशी काइन्ज हाउस में इतने न मिलेंगे। देखिए — हिंदू,

मुसलमान, सिख, पारसी, जैन, बौद्ध, क्रिस्तान, सभी; साफा, टोपी, पगड़ी, कैप, हैट और पाग से लेकर नंगा सिर – घुटना तक, अद्वैतवादी, विशिष्टताद्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, साम्राज्यवादी, आतंकवादी, समाजवादी, काजी, सूफी से लेकर छायावादी तक; खड़े-बेड़े, सीधे-टेढ़े सब तरह के तिलक-त्रिपुंड; बुरकेवाली, घूंघटवाली, पूरे और आधे और चौथाई बाल वाली, खुली और मुंदी चश्मेवाली आंखें तक देख रही हैं। अर्थात संसार के जितने धर्मात्मा हैं, सभी यौवन से प्यार करते हैं। इसलिए उसके कार्य को भी धर्म कहना पड़ता है। किसी के न कहने न मानने से वह अधर्म नहीं होता।

अस्तु, इस यौवन के धर्म की ओर शास्त्रिणी जी का धावा हुआ, जब वे पंद्रह साल की थीं अविवाहिता। यह आवश्यक था, इसलिए पाप नहीं। मैं इसे आवश्यकतानुसार ही लिखूंगा। जो लोग विशेष रूप से समझना चाहते हों, वे जितने दिन तक पढ़ सकें, काम-विज्ञान का अध्ययन कर लें। इस शास्त्र पर जितनी पुस्तकें हैं, पूरे अध्ययन के लिए पूरा मनुष्य-जीवन थोड़ा है। हिंदी में अनेक पुस्तकें इस पर प्रकाशित हैं, बल्कि प्रकाशन को सफल बनाने के लिए इस विषय की पुस्तकें आधार मानी गई हैं। इससे लोगों को मालूम होगा कि यह धर्म किस अवस्था से किस अवस्था तक किस-किस रूप में रहता है।

शास्त्रिणी जी के पिता जिला बनारस के रहने वाले हैं, देहात के, प्रयासी, सरयूपारीण ब्राह्मण; मध्यमा तक संस्कृत पढ़े; घर के साधारण जमींदार, इसलिए आचार्य भी विद्वत्ता का लोहा मानते हैं। गांव में एक बाग कलमी लंगड़े का है। हर साल भारत-सम्राट को आम भेजने का इरादा करते हैं, जब से वायुयान-कंपनी चली। पर नीचे से ऊपर को देखकर ही रह जाते हैं, सांस छोड़कर। जिले के अंग्रेज हाकिमों को आम पहुंचाने की पितामह के समय से प्रथा है। ये भी सनातन धर्मानुयायी हैं। नाम पं. रामखेलावन हैं।

रामखेलावन जी के जीवन में एक सुधार मिलता है। अपनी कन्या का, जिन्हें हम शास्त्रिणी जी लिखते हैं, नाम उन्होंने सुपर्णा रखा है। गांव की जीभ में इसका रूप नहीं रह सका; प्रोग्रेसिव राइटर्स की साहित्यिकता की तरह 'पन्ना' बन गया है। इस सुधार के लिए हम पं. रामखेलावन जी को धन्यवाद देते हैं। पंडित जी समय काटने के विचार से आप ही कन्या को शिक्षा देते थे, फलस्वरूप कन्या भी उनके साथ समय काटती गई और पंद्रह साल की अवस्था तक सारस्वत में हिलती रही। फिर भी गांव की वधू-वनिताओं पर, उसकी विद्वत्ता का पूरा प्रभाव पड़ा। दूसरों पर प्रभाव डालने का उसका जमींदारी स्वभाव था, फिर संस्कृत पढ़ी, लोग मानने लगे। गति में चापल्य उसकी प्रतिभा का सबसे बड़ा लक्षण था।

उन दिनों छायावाद का बोलबाला था, खास तौर से इलाहबाद में लड़के पन्त के नाम का माला जपते थे। ध्यान लगाए कितनी लड़ाइयां लड़ीं प्रसाद, पन्त और माखनलाल के विवेचन में। भगवतीचरण बायरन से आगे हैं, पीछे रामकुमार, कितनी ताकत से सामने

आते हुए। महादेवी कितना खींचती हैं।

मोहन उसी गांव का इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी.ए. (पहले साल) में पढ़ता था। यह रंग उस पर भी चढ़ा और दूसरों से अधिक। उसे पन्त की प्रकृति प्रिय थी, और इस प्रियता से जैसे पन्त में बदल जाना चाहता था। संकोच, लज्जा, मार्जित मधुर उच्चारण, निर्भीक नम्रता, शिष्ट आलाप, सजधज उसी तरह। रचनाओं से रच गया। साधना करते सधी रचना करने लगा। पर सम्मेलन शरीफ अब तक नहीं गया। पिता हाई कोर्ट में क्लर्क थे। गर्मी की छुट्टियों में गांव आया हुआ है।

सुपर्णा से परिचय है जैसे पर्ण और सुमन का। सुमन पर्ण के ऊपर है, सुपर्णा नहीं समझी। जमींदार की लड़की, जिस तरह वहां की समस्त डालों के ऊपर अपने को समझती थी, उसके लिए भी समझी। ज्यों-ज्यों समय की हवा से हिलती थी, सुमन की रेणु से रंग जाती थी; वह उसी का रंग है। मोहन शिष्ट था, पर अपना आसन न छोड़ता था।

सुपर्णा एक दिन बाग में थी। मोहन लौटा हुआ घर आ रहा था। सुपर्णा रंग गई। बुलाया। मोहन फिर भी घर की तरफ चला।

"मोहन! ये आम बाबूजी दे गए हैं, ले जाओ। तकवाहा बाजार गया है।"

मोहन बाग की ओर चला। नजदीक गया तो सुपर्णा हंसने लगी, ''कैसा धोखा देकर बुलाया है?—आम बाबूजी ने तुम्हारे यहां कभी और भी भिजवाए हैं?" मोहन लजाकर हंसने लगा।

"लेकिन तुम्हारे लिए कुछ आम चुनकर मैंने रखे हैं। चलो।"

मोहन ने एक बार संयत दृष्टि से उसे देखा। सुपर्णा साथ लिए बीच बाग की तरफ चली, "मैंने तुम्हें आते देखा था, तुमसे मिलने को छिपकर चली आई। तकवाहे को सौदा लेने बाजार (दूसरे गांव) भेज दिया है। याद है मोहन?"

"क्या?"

"मेरी गुइंइयों ने तुम्हारे साथ, खेल में।"

"वह तो खेल था।"

"नहीं वह सही था। मैं अब भी तुम्हें वही समझती हूं।"

"लेकिन तुम पयासी हो। शादी तुम्हारे पिता को मंजूर न होगी।"

"तो तुम मुझे कहीं ले चलो। मैं तुमसे कहने आई हूं। दूसरे से ब्याह करना मैं नहीं चाहती।"

मोहन की सुंदरता गांव की रहने वाली सुपर्णा ने दूसरे युवक में नहीं देखी। उसका आकर्षण उसकी मां को मालूम हो चुका था। उसका मोहन के घर जाना बंद था। आज पूरी शक्ति लड़ाकर, मौका देखकर मोहन से मिलने आई है। मोहन खिंचा। उसे वहां वह प्रेम न दिखा, वह जिसका भक्त था, कहा—

"लेकिन मैं कहां ले चलूं?"

"जहां रहते हो।"

"वहां जो पिताजी है।"

"तो और कहीं।"

"खाएंगे क्या?"

खाना पड़ता है, यह सुपर्णा को याद न था। मोहन से लिपटी जा रही थी। इसी समय तकवाहा बाजार से आ गया। देर का गया था। देखकर सचेत करने के लिए आवाज दी। सुपर्णा घबराई। मोहन खड़ा हो गया।

तकवाहा बाग आ सौदा देकर मोहन को जमींदार की ही दृष्टि से घूरता रहा। मतलब समझकर मोहन धीरे-धीरे बाग से बाहर निकला और घर की ओर चला।

तकवाहा धार्मिक था। जैसा देखा था, पं. रामखेलावन जी से व्याख्या समेत कहा। साथ ही इतना उपदेश भी दिया कि मालिक! पानी की भरी खाल है, कल क्या हो जाए! बिटिया रानी का जल्द ब्याह कर देना चाहिए।

पं. रामखेलावन जी भी धार्मिक थे। धर्म की सूक्ष्मतम दृष्टि से देखने लगे तो मालूम पड़ा कि सुपर्णा के गर्भ हैं, नौ-दस महीने में लड़का होगा। फिर? इस महीने लगन है—ब्याह हो जाना चाहिए।

जल्दी में बनारस चले।

पं. गजानन्द शास्त्री बनारस के वैद्य हैं। वैदकी साधारण चलती है, बड़े दांव-पेंच करते हैं तब। पर आशा बहुत बढ़ी-चढ़ी है। सदा बड़े-बड़े आदमियों की तारीफ करते हैं और ऐसे स्वर से, जैसे उन्हीं में से एक हों। वैदकी चले इस अभिप्राय से शाम को रामायण पढ़ते-पढ़वाते हैं तुलसी-कृत; अर्थ स्वयं कहते हैं। गोस्वामी जी के साहित्य का उनसे बड़ा जानकार – विशेषकर रामायण का, भारतवर्ष में नहीं, यह श्रद्धापूर्वक मानते हैं। सुनने वाले ज्यादातर विद्यार्थी हैं, जो भरसक गुरु के यहां भोजन करके विद्याध्ययन करने काशी आते हैं। कुछ साधारण जन हैं, जिन्हें असमय पर मुफ्त दवा की जरूरत पड़ती है। दो-चार ऐसे भी आदमी, जो काम तो साधारण करते हैं, पर असाधारण आदमियों में गप लड़ाने के आदी हैं। मजे की महफिल लगती है। कुछ महीने हुए, शास्त्री जी की तीसरी पत्नी का असच्चिकित्सा के कारण देहांत हो गया है। बड़े आदमी की तलाश में मिलने वाले अपने मित्रों से शास्त्री जी बिना पत्नी वाली अड़चनों का बयान करते हैं, और उतनी बड़ी गृहस्थी आठाबाठा जाती है-इसके लिए विलाप। सुपात्र सरयूपारीण ब्राह्मण हैं; मामखोर सुकुल।

पं. रामखेलावन जी बनारस में एक ऐसे मित्र के यहां आकर ठहरे, जो वैद्य जी के पूर्वोक्त प्रकार के मित्र हैं। रामखेलावन जी लड़की के ब्याह के लिए आए हैं, सुनकर मित्र ने उन्हें ऊपर ही लिया, और शास्त्री जी की तारीफ करते हुए कहा, "सुपात्र बनारस शहर

में न मिलेगा। शास्त्री जी की तीसरी पत्नी अभी गुजरी हैं; फिर भी उम्र अभी अधिक नहीं, जवान हैं।'' शास्त्री, वैद्य, सुपात्र और उम्र भी अधिक नहीं – सुनकर पं. रामखेलावन जी ने मन-ही-मन बाबा विश्वनाथ को दंडवत की और बाबा विश्वनाथ ने हिंदू-धर्म के लिए क्या-क्या किया है, इसका उन्हें स्मरण दिलाया – वे भक्तवत्सल आशुतोष हैं, यह यहीं से विदित हो रहा है – मर्यादा की रक्षा के लिए अपनी पुरी में पहले से वर लिए बैठे हैं - आने के साथ मिला दिया। अब यह बंधन न उखड़े, इसकी बाबा विश्वनाथ को याद दिलाई।

पं. रामखेलावन जी के मित्र पं. गजानन्द शास्त्री के यहां उन्हें लेकर चले। जमींदार पर एक धाक जमाने की सोची; कहा, ''लेकिन बड़े आदमी हैं, कुछ लेन-देने वाली पहले से कह दीजिए, आखिर उनकी बराबरी के लिए कहना ही पड़ेगा कि जमींदार हैं।"

"जैसा आप कहें।"

"कुल मिलाकर तीन हजार तो दीजिए, नहीं तो अच्छा न लगेगा।"

"इतना तो बहुत है।"

"ढाई हजार ? इतने से कम में न होगा। यह दहेज की बात नहीं, बनाव की बात है।"

"अच्छा, इतना कर दिया जाएगा। लेकिन विवाह इसी लगन में हो जाना चाहिए।"

मित्र चौंका। संदेह मिटाने के लिए कहा, "भई, इस साल तो नहीं हो सकता।"

पं. रामखेलावन जी घबराकर बोले, "आप जानते ही हैं ग्यारह साल के बाद लड़की जितना ही पिता के यहां रहती है, पिता पर पाप चढ़ता है। पंद्रह साल की है। सुंदर जोड़ी है। लड़की अपने घर जाए, चिंता कटे। जमाना दूसरा है।"

मित्र को आशा बंधी। सहानुभूतिपूर्वक बोले, "बड़ा जोर लगाना पड़ेगा, अगले साल हो तो बुरा तो नहीं?"

पं. रामखेलावन जी चलते हुए रुककर बोले, "अब इतना सहारा दिया है, तो खेवा पार ही कर दीजिए। बड़े आदमी ठहरे, कोई हमसे भी अच्छा तब तक आ जाएगा।"

मित्र को मजबूती हुई। बोले, "उनकी स्त्री का देहांत हुआ है, अभी साल भी पूरा नहीं हुआ। बरखी से पहले मंजूर न करेंगे। लेकिन एक उपाय है, अगर आप करें।"

"आप जो भी कहें, हम करने को तैयार हैं, भला हमें ऐसा दामाद कहां मिलेगा?"

"बात यह कि कुल सराधें एक ही महीने में करवानी पड़ेगीं, और फिर ब्रह्मभोज भी तो है, और बड़ा। कम-से-कम तीन हजार खर्च होंगे। फिर तत्काल विवाह। आप तीन हजार रुपए भी दीजिए। पर उन्हें नहीं। अरे रे! – इसे वे अपमान समझेंगे। हम दें। इससे आपकी इज्जत बढ़ेगी, और आखिर हमें बढ़कर उनसे कहना भी तो है कि बराबर की जगह है? हजार जब उनके हाथ पर रखेंगे कि आपके ससुरजी ने बरखी के खर्च के लिए दिए

हैं, तब यह दस हजार के इतना होगा, यही तो बात थी। वे भी समझेंगे।"

पं. रामखेलावन जी दिल से कसमसाए, पर चारा न था। उतरे गले से कहा, "अच्छी बात है।" मित्र ने कहा, "तो रुपए कब तक भेजिएगा? अच्छा, अभी चलिए : देख तो लीजिए, विवाह की बातचीत न कीजिएगा, नहीं तो निकाल ही देंगे। समझिए—पत्नी मरी हैं।"

रामखेलावन दबे। धीरे-धीरे चलते गए। "लड़की कुछ पढ़ी भी है? पढ़ती थी—तीन साल हुए, जब मैं गया था, गवाही थी—मौका देखने के लिए?" मित्र ने पूछा।

"लड़की तो सरस्वती है। आपने देखा ही है। संस्कृत पढ़ी है।"

"ठीक है। देखिए, बाबा विश्वनाथ हैं।" मित्र की तरह पर उतरे गले से कहा।

रामखेलावन जी डरे कि बिगाड़ न दे। दिल से जानते थे, बदमाश है, उनकी तरफ से झूठ गवाही दे चुका है रुपए लेकर; लेकिन लाचार थे; कहा, "हम तो आपमें बाबा विश्वनाथ को ही देखते हैं। यह काम आपका बनाया बनेगा।"

मित्र हंसा । बोला, "कह तो चुके। गाढ़े में काम न दे, वह मित्र नहीं, दुश्मन है।" सामने देखकर, "वह शास्त्री जी का ही मकान है, सामने।" था वह किराये का मकान। अच्छी तरह देखकर कहा, "हैं नहीं बैठक में; शायद पूजा में हैं।"

दोनों बैठक में गए। मित्र ने पं. रामखेलावन जी को आश्वासन देकर कहा, "आप बैठिए। मैं बुलाए लाता हूं।"

पं. रामखेलावन जी एक कुर्सी पर बैठे। मित्रवर आवाज देते हुए जीने पर चढ़े।

जिस तरह मित्र ने यहां रोब गांठा था, उसी तरह शास्त्री जी पर गांठना चाहा। वह देख चुका था, शास्त्री खिजाब लगाते हैं, अर्थ—विवाह के सिवा दूसरा नहीं। शास्त्री जी बढ़-चढ़कर बातें करते हैं, यह मौका बढ़कर बातें करने का है। उसका मंत्र है, काम निकल जाने पर बेटा बाप का नहीं होता। उसे काम निकालना है।

शास्त्री जी ऊपर एकांत में दवा कूट रहे थे। आवाज पहचानकर बुलाया। मित्र ने पहुंचने के साथ देखा—खिजाब ताजा है। प्रसन्न होकर बोला, "मेरी मानिए, तो वह ब्याह कराऊं, जैसा कभी किया न हो, और बहू अप्सरा, संस्कृत पढ़ी, रुपया भी दिलाऊं।"

शास्त्री जी पुलकित हो उठे। कहा, "आप हमें दूसरा समझते हैं?—इतनी मित्रता - रोज की उठक-बैठक, आप मित्र ही नहीं—हमारे सर्वस्व हैं। आपकी बात न मानेंगे तो क्या रास्ता-चलते की मानेंगे?—आप भी!"

"आपने अभी स्नान नहीं किया शायद? नहाकर चंदन लगाकर अच्छे कपड़े पहनकर नीचे आइए। विवाह करने वाले जमींदार साहब हैं। वहीं परिचय कराऊंगा। लेकिन अपनी तरफ से कुछ कहिएगा मत। नहीं तो, बड़ा आदमी है, भड़क जाएगा। घर की शेखी में मत भूलिएगा। आप जैसे उसे नौकर हैं। हां, जन्म-पत्र अपना हरगिज न दीजिएगा। उम्र

का पता चला तो न करेगा। मैं सब ठीक कर दूंगा। चुपचाप बैठे रहिएगा। नौकर कहां है?"

"बाजार गया है।"

"आने पर मिठाई मंगवाइएगा। हालांकि खाएगा नहीं। मिठाई से इंकार करने पर नमस्कार करके सीधे ऊपर का रास्ता नापिएगा। मैं भी यह कह दूंगा, शास्त्री जी ने आधे घंटे का समय दिया है।"

शास्त्री गजानन्द जी गद्‌गद हो गए। ऐसा सच्चा आदमी यह पहला मिला है, उनका दिल कहने लगा। मित्र नीचे उतरा और मित्र से गंभीर होकर बोला, "पूजा में हैं, मैं तो पहले ही समझ गया था। दस मिनट के बाद आंख खोली, जब मैंने घंटी टिनटिनाई। जब से स्त्री का देहांत हुआ है, पूजा में ही तो रहते हैं। सिर हिलाकर कहा—चलो। देखिए, बाबा विश्वनाथ ही हैं। हे प्रभो! शरणागत-शरण! तुम्हीं हो —बाबा विश्वनाथ!" कहते हुए मित्र ने पलकें मूंद लीं।

इसी समय पैरों की आहट मालूम थी। देखा, नौकर आ रहा था। डांटकर कहा, "पंखा झल। शास्त्री जी अभी आते हैं।"

नौकर पंखा झलने लगा। वैद्य का बैठका था ही। पं. रामखेलावन जी प्रभाव में आ गए। आधे घंटे बाद जीने में खड़ाऊं की खटक सुन पड़ी। मित्र उठकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, उंगली के इशारे पं. रामखेलावन जी को खड़े हो जाने के लिए कहकर। मित्र की देखा-देखी पंडित जी ने भी भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ लिए। नौकर अचंभे से देख रहा था। ऐसा पहले नहीं देखा था।

शास्त्री जी के आने पर मित्र ने घुटने तक झुककर प्रणाम किया। पं. रामखेलावन जी ने भी मित्र का अनुसरण किया। "बैठिए, गदाधर जी," कोमल सभ्य कंठ से कहकर गजानंद जी अपनी कुर्सी पर बैठ गए। वैद्यजी की बढ़िया गद्दीदार कुर्सी बीच में थी। पं. रामखेलावन जी आश्चर्य और हर्ष से देख रहे थे। आश्चर्य इसलिए कि शास्त्री जी बड़े आदमी तो हैं ही, उम्र भी अधिक नहीं, 25 से 30 कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।

शास्त्री जी ने नौकर को पान और मिठाई ले आने के लिए भेजा और स्वाभाविक बनावटी विनम्रता के साथ मित्रवर गदाधर ने आगंतुक अपरिचित महाशय का परिचय पूछने लगे। पं. गदाधर जी बड़े दात्त कण्ठ से पं. रामखेलावन जी की प्रशंसा कर चले, पर किस अभिप्राय से वे गए थे, यह न कहा। कहा, "महाराज! आप एक अत्यंत आवश्यक गृहधर्म से मुक्त होना चाहते हैं।

पलकें मूंदते हुए, भावावेश में, शास्त्री जी ने कहा, "काशी तो मुक्ति के लिए प्रसिद्ध है।"

"हां, महाराज!" मित्र ने और आविष्ट होते हुए कहा, "वह छूट तो सबसे बड़ी मुक्ति

है, पर यह साधारण मुक्ति ही है, जैसे बाबा विश्वनाथ के परमसिद्ध भक्त स्वीकारमात्र से इस भव-बंधन से मुक्ति दे सकते हैं।" कहकर हाथ जोड़ दिए। पं. रामखेलावन जी ने भी साथ दिया।

हां, नहीं, कुछ न कहकर एकांत धार्मिक दृष्टि को परम सिद्ध पं. गजानन्द जी शास्त्री पलकों के अंदर करके बैठे रहे।

इसी समय नौकर पान और मिठाई ले आया। शास्त्री जी ने खटक से आंखें खोलकर देखा, नौकर को शुद्ध जल ले आने के लिए कहकर बड़ी नम्रता से पं. रामखेलावन जी को जलपान करने के लिए पूछा। पं. रामखेलावन जी दोनों हाथ उठकाकर जीभ काटकर सिर हिलाते हुए बोले, "नहीं महाराज, नहीं, यह तो अधर्म है। चाहिए तो हमें कि हम आपकी सेवा करें, बल्कि आपके सेवा संबंध में सदा के लिए—"

"अहाहा! क्या कही! - क्या कही!" कहकर, पूरा दोना उठाकर एक रसगुल्ला मुंह में छोड़ते हुए मित्र ने कहा, "बाबा विश्वनाथ जी के वर से काशी का एक-एक बालक अंतर्यामी होता है, फिर उनकी सभा के परिषद शास्त्री जी तो—"

शास्त्री जी अभिन्न स्नेह की दृष्टि से प्रिय मित्र को देखते रहे। मित्र ने, स्वल्पकाल में रामभवन का प्रसिद्ध मिष्ठान्न उदरस्थ कर जलपान के पश्चात मगही बीड़ों की एक नत्थी मुखव्यादान कर यथा स्थान रखी। शास्त्री जी विनयपूर्वक नमस्कार कर जीना तै करने को चले। उनके पीठ फेरने पर मित्र ने रामखेलावन जी को पंजा दिखाकर हिलाते हुए आश्वासन दिया। शास्त्री जी के अदृश्य होने पर इशारे से पं. रामखेलावन जी को साथ लेकर वासस्थल की ओर प्रस्थान किया।

रामखेलावन जी के मौन पर शास्त्री जी का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ चुका था। कहा, "अब हमें इधर से जाने दीजिए; कल रुपए लेकर आएंगे। लेकिन इसी महीने विवाह हो जाएगा?"

"इसी महीने—- इसी महीने", गंभीर भाव से मित्र ने कहा, "जन्मपत्र लड़की का लेते आइएगा। हां, एक बात और है। बाकी डेढ़ हजार में बारह सौ का जेवर होना चाहिए, नया; आइएगा हम खरीदवा देंगे," दलाली की सोचते हुए — कहा, "आपको ठग लेगा। आप इतना तो समझ गए होंगे कि इतने के बिना बनता नहीं, तीन सौ रुपए रह जाएंगे। खिलाने-पिलाने और परजों को देने की बहुत है। बल्कि कुछ बच जाएगा आपके पास। फिजूल खर्च हो यह मैं नहीं चाहता। इसीलिए, ठोस-ठोस काम वाला खर्च कहा। अच्छा, नमस्कार!"

शास्त्री जी का ब्याह हो गया। सुपर्णा पति के साथ है। शास्त्री जी ब्याह करते-करते कोमल हो गए थे। नवीना सुपर्णा को यथाभ्यास सब प्रकार प्रीत रखने लगे।

बाग से लौटने पर सुपर्णा के हृदय में मोहन के लिए क्रोध पैदा हुआ। घरवालों ने सख्त निगरानी रखने के अलावा, डर के मारे उससे कुछ नहीं कहा। उसने भी विरोध किए

बिना विवाह के बहाव में अपने को बहा दिया। मन में यह प्रतिहिंसा लिए हुए, कि मोहन इस बहते में मिलेगा। और उसे हो सकेगा तो उचित शिक्षा देगी। शास्त्री जी को एकांत भक्त देखकर मन में मुस्कराई।

सुपर्णा का जीवन शास्त्री जी के लिए भी जीवन सिद्ध हुआ। शास्त्री जी अपना कारोबार बढ़ाने लगे। सुपर्णा को वैदक की अनुवादित हिंदी पुस्तकें देने लगे, नाड़ी-विचार चर्चा आदि करने लगे। उस आग में तृण की तरह जल-जलकर जो प्रकाश देखने लगे, वह मर्त्य में उन्हें दुर्लभ मालूम दिया। एक दिन श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी के नाम से स्त्रियों के लिए बिना फीस वाला रोग परीक्षणालय खोल दिया – इस विचार से कि दवा के दाम मिलेंगे, फिर प्रसिद्धि होने पर फीस भी मिलेगी।

लेकिन ध्यान से सुपर्णा के पढ़ने का कारण कुछ और है। शास्त्री जी अपनी मेज की सजावट तथा प्रतीक्षा करते रोगियों के समय काटने के विचार से 'तारा' के ग्राहक थे। एक दिन सुपर्णा 'तारा' के पन्ने उलटने लगी। मोहन की एक रचना छिपी थी। यह उसकी पहली प्रकाशित कविता थी। विषय था 'व्यर्थ प्रणय'। बात बहुत कुछ मिलती थी। लेकिन कुछ निंदा थी – जिस प्रेम से कवि स्वर्ग से गिरा जाता है – उसकी। काव्य की प्रेमिका का उसमें वहीं प्रेम दर्शाया गया था। सुपर्णा चौंकी। फिर संयत हुई और नियमित रूप से 'तारा' पढ़ने लगी।

एक साल बीत गया। अब सुपर्णा हिंदी में मजे में लिख लेती है। मोहन से उसका हाड़-हाड़ जल रहा था। एक दिन उसने पातिव्रत्य पर एक लेख लिखा। आजकल के छायावाद के संबंध में भी पढ़ चुकी थी और बहुत कुछ अपने पति से सुन चुकी थी। काशी हिन्दी के सभी वादों की भूमि है। प्रसाद काशी के ही हैं। उनके युवक पाठक शिष्य अनेक शास्त्रियों को बना चुके हैं। पं. गजानन्द शास्त्री गंगा नहाते समय कई बार तर्क कर चुके हैं, उत्तर भी भिन्न मुनि के भिन्न मत की तरह अनेक मिल चुके हैं। एक दिन शास्त्री जी के पूछने पर एक ने कहा, "छायावाद का अर्थ है शिष्टतावाद; छायावादी का अर्थ है सुंदर साफ वस्त्र और शिष्ट भाषा धारण करने वाला; जो छायावादी है, वह सुवेश और मधुरभाषी है; जो छायावादी नहीं है वह काशी के शास्त्रियों की तरह अंगोछा पहनने वाला है या नंगा है।" दूसरे दिन दो थे। नहा रहे थे। शास्त्री जी भी नहा रहे थे। "छायावाद क्या है?" - शास्त्री जी ने पूछा। उन्होंने शास्त्री जी को गंगा में गहरे ले जाकर डुबाना शुरू किया, जब कई कुल्ले पानी पी गए, तब छोड़ा; शिथिल होकर शास्त्री जी किनारे आए, तब लड़कों ने कहा, "यही है छायावाद।" फलतः शास्त्री जी छायावाद और छायावादी से मौलिक घृणा करने लगे थे और जिज्ञासु षोडशी प्रिया को समझाते रहे कि छायावाद वह है, जिसमें कला के साथ व्यभिचार किया जाता है तरह-तरह से। आइडिया के रूप में, सुपर्णा जैसी ओजस्विनी लेखिका के लिए इतना बहुत था। आदि से अंत तक उसके लेख में प्राचीन पतिव्रतधर्म और नवीन छायावादी व्यभिचार प्रचारक के कंठ से बोल रहा था। शास्त्री जी ने कई बार पढ़ा और पत्नी को सती समझकर मन-ही-मन प्रसन्न हुए। वह लेख संपादकजी के पास

भेजा गया। संपादकजी लेखिका मात्र को प्रोत्साहित करते हैं ताकि हिन्दी की मरुभूमि सरस होकर आबाद हो, इसलिए लेख या कविता के साथ चित्र भी छापते हैं। शास्त्रिणी जी को लिखा। प्रसिद्धि के विचार से शास्त्री जी ने एक अच्छा सा चित्र उतरवाकर भेज दिया। शास्त्रिणी जी का दिल बढ़ गया। साथ में उपदेश देने वाली प्रवृत्ति भी।

इसी समय देश में आंदोलन शुरू हुआ। पिकेटिंग के लिए देवियों की आवश्यकता हुई – पुरुषों का साथ देने के लिए भी। शास्त्रिणी जी की मारफत शास्त्री जी का व्यवसाय अब तक भी न चमका था। शास्त्री जी ने पिकेटिंग में जाने की आज्ञा दे दी। इसी समय महात्माजी बनारस होते हुए कहीं जा रहे थे, कुछ घंटों के लिए उतरे। शास्त्री जी की सलाह से एक जेवर बेचकर, शास्त्रीणी जी ने दो सौ रुपए की थैली उन्हें भेंट की। तन, मन और धन से देश के लिए हुई इस सेवा का साधारण जनता पर असाधारण प्रभाव पड़ा। सब धन्य-धन्य कहने लगे। शास्त्रिणी जी पूरी तत्परता से पिकेटिंग करती रहीं। एक दिन पुलिस ने दूसरी स्त्रियों के साथ उन्हें भी लेकर एकांत में, कुछ मील शहर से दूर, संध्या समय छोड़ दिया। वहां से उनका मायका नजदीक था। रास्ता जाना हुआ। लड़कपन में वहां तक वे खेलने जाती थीं। पैदल मायके चली गईं। दूसरे देवियों से नहीं कहा, इसलिए कि ले जाना होगा और सबके लिए वहां सुविधा न होगी। प्रातःकाल देवियों की गिनती में यह एक घटी, संवाद-पत्रों ने हल्ला मचाया। ये तीन दिन वाद विश्राम लेकर मायके से लौटीं, और शोक-संतप्त पतिदेव को और उच्छृंखल रूप से बड़बड़ाते हुए संवादपत्रों को शांत किया – प्रतिवाद लिखा कि संपादकों को इस प्रकार अधीर नहीं होना चाहिए।

आंदोलन के बाद इनकी प्रैक्टिस चमक गई। बड़ी देवियां आने लगीं। बुलावा भी होने लगा। चिकित्सा के साथ लेख लिखना भी जारी रहा। ये बिलकुल समय के साथ थीं। एक बार लिखा, "देश को छायावाद से जितना नुकसान पहुंचा है, उतना गुलामी से नहीं।" इनके विचारों का आदर नीम-राजनीतिज्ञों में क्रमशः जोर पकड़ता गया। प्रोग्रेसिव राइटर्स ने भी बधाइयां दीं और इनकी हिन्दी को आदर्श मानकर अपनी सभा में सम्मिलित होने के लिए पूछा। अस्तु शास्त्रिणी जी दिन-पर-दिन उन्नति करती गईं। इस समय नया चुनाव शुरू हुआ। राष्ट्रपति ने कांग्रेस को वोट देने के लिए आवाज उठाई। हर जिले से कांग्रेस उम्मीदवार खड़े हुए। देवियां भी। वे मर्दों के बराबर हैं। शास्त्रिणी जी भी जौनपुर से खड़ी होकर सफल हुईं। अब उनके सम्मान की सीमा न रही। एम.एल.ए. हैं। 'कौशल' में उनके निबंध प्रकाशित होते थे। लखनऊ आने पर 'कौशल' के प्रधान संपादक एक दिन उनसे मिले और 'कौशल' कार्यालय पधारने के लिए प्रार्थना की। शास्त्रिणी जी ने गर्वित स्वीकारोक्ति दी।

'कौशल' कार्यालय सजाया गया। शास्त्रिणी जी पधारीं। मोहन एम.ए. होकर यहां सहकारी है, लेकिन लिखने में हिंदी में अकेला। शास्त्रिणी जी ने देखा। मोहन ने उठकर नमस्कार किया। "आप यहां", शास्त्रिणी जी ने प्रश्न किया। "जी हां," मोहन ने नम्रता से उत्तर दिया, "यहां सहायक हैं।" शास्त्रिणी जी उद्धत भाव से हंसी। उपदेश के स्वर में बोलीं, "आप गलत रास्ते पर थे!"

वसीयत

भगवतीचरण वर्मा

जिस समय मैंने कमरे में प्रवेश किया, आचार्य चूड़ामणि मिश्र आंखें बंद किए हुए लेटे थे और उनके मुख पर एक तरह की ऐंठन थी, जो मेरे लिए नितांत परिचित-सी थी, क्योंकि क्रोध और पीड़ा के मिश्रण से वैसी ऐंठन उनके मुख पर अक्सर आ जाया करती थी। वह कमरा ऊपरी मंजिल पर था और वह अपने कमरे में अकेले थे। उनका नौकर बुधई मुझे उस कमरे में छोड़कर बाहर चला गया।

आचार्य चूड़ामणि की गणना जीवन में सफल, संपन्न और सुखी व्यक्तियों में की जानी चाहिए, ऐसी मेरी धारणा थी। दो पुत्र, लालमणि और नीलमणि। लालमणि देवरिया के स्टेट बैंक की शाखा का मैनेजर था और नीलमणि लखनऊ के सचिवालय में डिप्टी सेक्रेटरी था। तीन लड़कियां थीं, सरस्वती, सावित्री और सौदामिनी। सरस्वती के पति श्री ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक इलाहाबाद में पी.डब्ल्यू.डी. के सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर थे, सावित्री के पति श्री जयनारायण तिवारी की सुल्तानपुर में आटे की और तेल की मिलें थीं तथा सौदामिनी के पति संजीवन पांडे सेना में कर्नल थे और मेरठ छावनी में नियुक्त थे।

आचार्य चूड़ामणि का और मेरा साथ करीब चालीस वर्ष पुराना था। एक ही दिन हम दोनों की हिन्दू विश्वविद्यालय के दर्शन-विभाग में नियुक्ति हुई थी। आचार्य चूड़ामणि रीडर बने थे और मैं लेक्चरर बना था।

उनके अथक परिश्रम, अटूट निष्ठा तथा अडिग संयम का ही परिणाम था कि वे विश्व में भारतीय दर्शन के विशेषज्ञ माने जाते थे। प्रकांड पांडित्य के ग्रंथों से लेकर बी.ए. की पाठ्य पुस्तकों तक अनेक ग्रंथों की रचना उन्होंने की थी। न जाने कितनी कमेटियों के वह सदस्य थे। हरेक विश्वविद्यालय उन्हें अपने यहां परीक्षक बनाकर अपने को धन्य समझता था। साथ ही बड़े कट्टर किस्म के ब्राह्मण थे वे। और तो और, मेरे घर की बनी हुई चाय तक उन्होंने कभी नहीं पी। महीनों उन्हें वाराणसी से बाहर रहना होता था और तब वे सत्तू, दूध, फल तथा अपने घर में बनी हुई मटरियों या लड्डुओं से हफ्तों काम चला लेते थे।

वाराणसी के लंका मोहल्ले में उन्होंने दुमंजिला मकान खरीद लिया था, उसी में वह

रहते थे। उनकी पत्नी तथा उनके पुत्रों ने उनसे कितना आग्रह किया कि वे कहीं खुली जगह में कोई कोठी बनवा लें, लेकिन उन्होंने कतई इनकार कर दिया। गर्मी में दो बार और जाड़ों में एक बार नित्य गंगा-स्नान करके पूजा करना नियम-सा था।

जनवरी का प्रथम सप्ताह था। उस दिन जब वह गंगा-स्नान करके लौटे, उन्हें कुछ ज्वर-सा मालूम हुआ। उनकी पत्नी जसोदा देवी अपनी परंपरा के अनुसार लखनऊ में अपने छोटे पुत्र के यहां थी, उनके नौकर बुधई के ऊपर उनकी देखभाल करने का पूरा भार था। दोपहर के समय जब उन्हें पसलियों में दर्द भी मालूम हुआ, उन्होंने वैद्यराज धन्वन्तरि शास्त्री को बुलाया। वैद्यराज ने नब्ज देखकर काढ़ा पिलाया – निदान था कि सर्दी लग गई है, ठीक हो जाएगी। दूसरे दिन जब बुखार और तेज हुआ, तब उन्होंने डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने देखा कि उन्हें निमोनिया हो गया है। दोनों फेफड़े जकड़ गए हैं। उसने दवा दी। बीमारी के चौथे दिन आचार्य चूड़ामणि ने बुधई को भेजकर मुझे बुलाया था।

थोड़ी देर तक मैं उनकी चारपाई के सामने खड़ा रहा कि वे आंखें खोलें, फिर हार कर मुझे ही बोलना पड़ा, "गुरुदेव! आपका शिष्य जनार्दन जोशी आपकी सेवा में उपस्थित है।"

मेरा इतना कहना था कि आचार्य चूड़ामणि ने अपनी आंखें खोल दीं, "जर्नादन! मेरा अंत समय आ गया है। तुम मेरे सबसे अधिक निकटस्थ रहे हो, तो तुम्हें बुला भेजा!"

मैंने आचार्य चूड़ामणि की बीमारी के संबंध में लालमणि से सब कुछ नीचे ही सुन लिया था, जो देवरिया से एक घंटा पहले ही आ गया था–आचार्य चूड़ामणि का तार पा कर। मेरी आंखों में भी आंसू आ गए। मैंने कहा, "गुरुदेव! यह संसार असार है और यह शरीर नश्वर है!"

कमजोर आवाज में आचार्य ने कहा, "हां, जनार्दन! यही पढ़ा है लेकिन अभी मेरी अवस्था ही क्या है . . . कुल मिलाकर पचहत्तर वर्ष! सोच रहा था, संन्यासाश्रम का भी कुछ रस लूं, लेकिन लगता है, मृत्यु सिर पर आ गई है! मृत्यु से बड़ा भय लगता है!" और जैसे वे बेहद थके हों, उन्होंने आंखें मूंद लीं।

मैंने उन्हें धीरज बंधाया, "दिल छोटा मत कीजिए, गुरुदेव! बताइए, मेरे लिए क्या आदेश है?"

आचार्य चूड़ामणि ने फिर आंखें खोलीं, "अरे हां, मेरे तकिये के नीचे कुछ कागज रखे हैं, उसमें मेरी वसीयत है। कल इसकी रजिस्ट्री यहीं घर पर करा चुका हूं। एक प्रति न्यायालय में है। दूसरी यह है। तो इसे निकाल लो। एकमात्र तुम मेरे सबसे अधिक निकटस्थ हो और इस दुनिया में एकमात्र तुम पर मेरा विश्वास रहा है। मैंने उन सबों को कल ही तार करवा दिया है जिन्हें मेरे क्रिया-कर्म में सम्मिलित होना है और मेरी वसीयत के अनुसार

कुछ मिलना है। इस वसीयत के कार्यान्वयन के लिए मैंने तुम्हें नियुक्त किया है। तो यह वसीयत मैं तुम्हें सौंपता हूं। मेरा प्रणांत होते ही यह वसीयत लागू हो जाएगी।"

"गुरुदेव की असीम कृपा रही है मेरे ऊपर!" यह कहकर मैंने आचार्य के तकिये के नीचे ये कागजों का पुलिंदा निकाला। इधर मैंने उन कागजों को उलटना आरंभ किया, उधर आचार्य चूड़ामणि की आंखें उलटने लगीं। मैंने तत्काल बुधई और लालमणि को बुला कर आचार्य को भूमि पर उतारा। इधर मैंने उनके मुख में गंगाजल डाला, उधर आचार्य के प्राण महायात्रा पर निकल पड़े।

बुधई को उनके कमरे में छोड़कर मैं लालमणि के साथ नीचे वाले बड़े हाल में आया। कागज का पुलिंदा मेरे हाथ में था। लालमणि ने पूछा, "यह कैसे कागज हैं, जोशी जी?"

"यह तुम्हारे पिता की वसीयत है, और तुम्हारे पिता के कथनानुसार इसी समय से लागू हो जाती है। तो इसे पढ़ना आवश्यक है।"

"हां, बुधई ने बताया था कि सब-रजिस्ट्रार साहब को पिताजी ने बुलाया था।" लालमणि बोला।

एक छोटी-सी भूमिका अपने संबंध में, फिर वसीयत में कार्यान्वयन के अनुच्छेद आरंभ हो गए थे। पहला अनुच्छेद इस प्रकार था—"मैं चूड़ामणि मिश्र आदेश देता हूं कि मेरा अंत्येष्टि-संस्कार सनातम धर्म की प्रथा से हो, और अपने अंत्येष्टि-संस्कार के लिए मैंने पचास हजार की रकम अपनी अलमारी में अलग निकाल रखी है, जो क्रिया-कर्म का व्यय काटकर मेरा अंत्येष्टि-संस्कार करने वाले को मिलेगी। मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि मेरे दोनों पुत्र अधर्मी और नास्तिक हैं। वैसे मेरा अंत्येष्टि-संस्कार करने का उत्तरदायित्व मेरे ज्येष्ठ पुत्र लालमणि पर है, लेकिन मेरा आदेश है कि मेरा अंत्येष्टि-संस्कार वही कर सकता है, जो यज्ञोपवीत धारण किए हो और जिसके सिर पर शिखा हो। यदि मेरे ज्येष्ठ पुत्र में यह शर्त नहीं होती, तो नीचे लिखी नामों की तालिका के अनुसार प्राथमिकता के क्रम से यज्ञोपवीत और शिखा धारण करने वाला ही मेरा अंत्येष्टि संस्कार कर सकेगा..." मैं पढ़ते-पढ़ते रुक गया। लालमणि की ओर देखकर मैंने पूछा, "क्यों चिरंजीव लालमणि, तुम्हारो चोटी-बोटी है कि नहीं? और यज्ञोपवीत पहनते हो या नहीं?"

कुल उलझन के भाव से उसने कहा, "चुटइया रख के कहीं स्टेट बैंक की मैनेजरी होती है? और जनेऊ हर दूसरे-तीसरे दिन मैला हो जाता है, तो हमने पहनना ही छोड़ दिया।"

"तब तो पचास हजार गए हाथ से, तुम अंत्येष्टि-संस्कार के योग्य नहीं हो। तुम्हारे बाद नीलमणि का नंबर है।"

"उसके भी न चोटी है, न जनेऊ है। यह जो तीसरे नंबर पर हमारा चचेरा भाई है जगत्पति मिश्र, राज-ज्योतिषी, यह निहायत झूठा और आवारा है! ग्राहकों को फंसाने के लिए इसकी एक बलिश्त की चोटी लहराती है और झूठी कसमें खाने के लिए मोटा-सा जनेऊ

पहने है।''

जगत्पति मुझसे भी एक बार पांच रुपए ऐंठ ले गया था, तो मैंने कुछ सोचकर कहा, ''लालमणि, हमारी सलाह मानो, तो तुम किसी नाई की दुकान पर तत्काल मशीन से अपने बाल छंटा लो, तो चौथाई या आधी इंच की चोटी निकल ही आएगी। और वहां से लौटते हुए एक जनेऊ भी लेते आना।''

मेरी बात सुनते ही लालमणि तीर की तरह बाहर निकला। लालमणि के जाने के बाद मैंने वसीयत का दूसरा अनुच्छेद पढ़ा – "मैं चूड़ामणि मिश्र चाहता हूं कि मेरी मृत्यु की सूचना तार या टेलीफोन द्वारा मेरी पत्नी जसोदा देवी, मेरे पुत्र लालमणि तथा नीलमणि, मेरी पुत्रियां सरस्वती, सावित्री और सौदामिनी तथा मेरे भतीजे जगत्पति, श्रीपति और लोकपति को दे दी जाए। अन्य संगे-संबंधियों को सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं। इन समस्त कुटुंब वालों की प्रतीक्षा बारह घंटे से लेकर चौबीस घंटे तक की जाए, इसके बाद मणिकर्णिका घाट पर मेरे शरीर का दाह-संस्कार हो। मेरे दसवें के दिन समस्त संगे-संबंधियों की उपस्थिति में मेरी वसीयत का शेषांश पढ़ा जाए।"

अब मुझे आचार्य चूड़ामणि मिश्र की वसीयत में दिलचस्पी आने लगी थी, लेकिन आचार्य की आज्ञा मुझे शिरोधार्य करनी थी, इसलिए वसीयत को तहकर मैंने अपनी जेब के हवाले किया। आचार्य प्रवर का भौतिक शरीर अगले चौबीस घंटों में बिगड़ने न पाए, मुझे इस बात की चिंता थी। सौभाग्य से लालमणि वाराणसी आ गया था और करीब आधे घंटे बाद वह चौथाई इंच लंबी चोटी धारण किए हुए नाई की दुकान से घर वापस आ गया। इस समय उसके कंधे पर एक मोटा-सा जनेऊ भी लहरा रहा था। मैंने वसीयत का दूसरा अनुच्छेद उसे सुनाकर आदेश दिया कि वसीयत में बताए लोगों को तार या टेलीफोन से खबर कर दे, अपने चचेरे भाइयों के परिवार को बुला ले और एक सिल्ली बर्फ भी मंगवाकर आचार्य प्रवर का शरीर उस पर रखवा दे। दूसरे दिन सुबह नौ बजे आचार्य जी की शव यात्रा मणिकर्णिका घाट के लिए रवाना होगी। मैं सुबह सात-साढ़े सात बजे पहुंच जाऊंगा।

कितनी शानदार शव-यात्रा थी आचार्य चूड़ामणि की! मैं तो दंग रह गया था। वाराणसी के सभी धर्माध्यक्ष और पंडित सम्मिलित थे उसमें। शर्मा-शर्मी कुछ नेता भी आ गए थे। जगत्पति की आपत्तियों के बावजूद आचार्य की कपाल-क्रिया उनके ज्येष्ठ पुत्र लालमणि ने की अपनी चोटी और यज्ञोपवीत के बल पर।

दसवें के दिन जब घर शुद्ध हो गया, मैं आचार्य की वसीयत लेकर उनके घर पहुंचा। उनके सब परिवार वाले तथा सगे-संबंधी आ गए थे। नीचे वाले कमरे में लोग एकत्र हुए। एक ओर स्त्रियां थीं, आचार्य की पत्नी जसोदा देवी, लालमणि की पत्नी नीरजा मिश्र, नीलमणि की पत्नी मधुरिमा मिश्र, दोनों के ही बाल बाब्ड, दोनों ही अंग्रेजी-मिश्रित हिंदी में बात करने

वालीं। आचार्य की पुत्रियां सरस्वती और सावित्री, भारतीयता की प्रतिमूर्ति लेकर सौदामिनी अपनी भाविजों से इक्कीस निकलती हुई। दूसरी ओर पुरुष थे, आचार्य के पुत्र लालमणि और नीलमणि, आचार्य के दामाद ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक, जयनारायण तिवारी तथा संजीवन पांडे, आचार्य के भतीजे जगत्पति मिश्र, श्रीपति मिश्र और लोकपति मिश्र! बुधई सब लोगों के पान-पानी की व्यवस्था कर रहा था।

मैं उस समय तक अत्यधिक गंभीर था! आचार्य चूड़ामणि के आदेश का पालन करते हुए मैंने उनकी वसीयत का शेषांश अपने घर पर नहीं पढ़ा था, यद्यपि उसे पढ़ने की इच्छा बहुत हुई थी।

मैंने वसीयत पढ़ना आरंभ किया। दो अनुच्छेदों में लोगों की कोई दिलचस्पी नहीं थी, वह तो सब हो चुका था। अब मैं तीसरे अनुच्छेद पर आया, जो इस प्रकार था—"मैं चूड़ामणि मिश्र आदेश देता हूं कि मेरा दाह-संस्कार करने वाले व्यक्ति की पत्नी सूतक हट जाने के बाद छह महीने तक नित्यप्रति सुबह स्नान करके ग्यारह ब्राह्मणों की रसोई अपने हाथ से बनाकर उन्हें भोजन कराएगी"...

उसी समय लालमणि की पत्नी नीरजा मिश्र ने तमककर कहा, ''जाड़े में सुबह स्नान करके ग्यारह ब्राह्मणों की रसोई बनावे मेरी बला! बूढ़े की सनक पर मैं अपनी जान नहीं दे सकती!''

मैंने नीरजा मिश्र की बात अनसुनी करते हुए तीसरे अनुच्छेद का शेषांश पढ़ा — "यदि वह स्त्री इससे इंकार करती है, तो क्रमानुसार यह काम मैं दूसरी वधू, और इसके बाद अपनी तीन लड़कियों के हाथ में सौंपता हूं। इसके लिए उस स्त्री के लिए पचीस हजार रुपए की रकम निश्चित करता हूं।"

एकाएक मुझे मधुरिमा मिश्र की भारी और मोटी आवाज सुनाई दी, ''पिताजी का आदेश वेदवाक्य है मेरे लिए! जीजी नहीं करती हैं तो न करें, मैं उनकी इच्छा की पूर्ति करूंगी।''

नीरजा एकाएक तड़प उठीं, ''बड़ी इच्छा की पूर्ति करने वाली होती हो! जिंदगी में कभी रसोई बनाई है या अब बनाओगी। लखनऊ में बैरों से खाना बनवाकर खाती हो! मैं तो अक्सर अपने घर में रसोई खुद ही बना लिया करती हूं। जहां छह-सात आदमियों की रसोई बनाती हूं, वहां ग्यारह आदमियों की रसोई बना लिया करूंगी, कुल छह महीने की तो बात है!'' और नीरजा ने मुझसे पूछा, ''यह तो नहीं लिखा है कि गरम पानी से स्नान न किया जाए?''

मुझे कहना पड़ा, ''यह शर्त लगाना वह भूल गये।''

नीरजा ने ताली बजाते हुए कहा, ''तो फिर मुझे यह स्वीकार है! अब आगे पढ़िए।''

मधुरिमा मिश्र अपनी जेठानी को कोई कड़ा उत्तर देना चाहती थी कि नीलमणि बोल

उठा, ''ठीक है, यह अधिकार भाभी जी का है। वैसे भाभी जी का मधुरिमा पर आक्षेप अनुचित है। मधुरिमा ने पचास-पचास आदमियों का भोजन अकेले अपने हाथ से बनाया है। भाभी जी को अपने शब्द वापस लेने चाहिए।''

''मैं अपने शब्द किसी हालत में वापस नहीं ले सकती!'' नीरजा ने चीखकर कहा।

लेकिन वाह रे लालमणि! उसने उठकर कहा, ''मैं नीरजा के शब्द वापस लेता हूं। अब आप आगे पढ़िए।''

बात और आगे न बढ़े, मैंने वसीयत पढ़ना आरंभ किया – अनुच्छेद चार इस प्रकार है – "मैं चूड़ामणि मिश्र अपनी पत्नी जसोदा देवी से जीवनभर परेशान रहा। अत्यंत आलसी, चटोरी और लापरवाह स्त्री है यह। मैंने तो दाल-भात और सत्तू खाकर जीवन बिता दिया, लेकिन यह हरामजादी मुझसे छिपाकर प्रायः नित्य ही रबड़ी, मलाई और मिठाई खाती है"...

तभी जसोदा देवी ने चिल्लाकर कहा, ''हाय राम! यह सब लिखा है इस बुढ़वे ने! ऐसे खबोस आदमी के पल्ले मैं पड़ गई इसे नरक में जगह न मिलेगी! घरवालों को सता सताकर जमाजथा इकट्ठी करता रहा . . . नाश हो इसका!''

इसी समय लालमणि और नीलमणि ने एक साथ अपनी माता को डांटा, "अम्मा! पिताजी को गाली मत दो! हां जोशी जी, आप आगे पढ़िए।"

मैंने चौथे अनुच्छेद का शेषांश पढ़ा – "मेरी मृत्यु के बाद इस रांड को मेरे पुत्रों पर निर्भर रहना पड़ेगा, जो अपनी जोरुओं के गुलाम हैं। ये मेरी पुत्रवधुएं इसे भूखों मार देंगी, और इसकी बिगड़ी हुई आदतों के कारण इसे भयानक कष्ट होगा। इसलिए मैं जसोदा के नाम दो लाख रुपया छोड़ता हूं, जिसके ब्याज पर यह मजे में जिंदा रह सकती है।"

मैंने चौथा अनुच्छेद समाप्त ही किया था कि स्त्रियों के कक्ष में एक हंगामा-सा खड़ा हो गया। जसोदा देवी "हाय लालमन के पिता!" कहकर धड़ाम से जमीन पर लेट गईं और अन्य स्त्रियों ने उन्हें घेर लिया। दस सेकेंड बाद ही उन्होंने रोना प्रारंभ कर दिया ''तुम तो स्वर्ग में चले गए, लालमन के पिता हमें इस नरक में छोड़ गए। हमें क्षमा करो! जो हमारे अनजाने हमसे अपराध हो गया है! हाय लालमन के पिता! और उन्होंने अपनी छाती पीटना आरंभ कर दिया।

मैंने समस्त साहस बटोरकर कड़े स्वर में कहा, ''यह सब कारन बाद में कीजिएगा, अभी तो वसीयत पढ़ी जा रही है!'' और जसोदा देवी की पुत्रियों ने उन्हें जबरदस्ती चुप कराया।

मैंने अब पांचवां अनुच्छेद पढ़ना आरंभ किया – "मैं चूड़ामणि मिश्र अपनी पुत्री सरस्वती के पति ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक से अत्यधिक खिन्न हूं। एक हफ्ता पहले मैंने यह खबर पढ़ी थी कि ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक के विरुद्ध पांच लाख रुपए के गबन की इन्क्वायरी की

मांग उठाई गई है एसेंबली में। इसके अर्थ यह हैं कि यह ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक बेईमान और रिश्वतखोर है. . ."

ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक की ओर सब लोगों की निगाहें उठ गई और सहसा ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक उठ खड़े हुए, "यह बूढ़ा हमेशा का बदमिजाज और बदजवान रहा है, मरने के पहले पागल भी हो गया था!" और उन्होंने अपनी पत्नी सरस्वती को आज्ञा दी, "चलो, इस घर में मेरा दम घुट रहा है . . . एकदम चलो!"

सरस्वती भी उठ खड़ी हुई, लेकिन सावित्री और सौदामिनी ने सरस्वती का हाथ पकड़ लिया, "पहले पूरी बात तो सुन लो"

दूसरी ओर पुरुषों ने ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक का हाथ पकड़कर बैठाया। नीलमणि ने मुझसे कहा, "हां, जोशी जी, पांचवां अनुच्छेद पूरा कीजिए।"

मैंने पांचवां अनुच्छेद पूरा किया– "और अगर ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक पर इन्क्वायरी बैठ गई, तो बहुत संभव है, इसकी नौकरी जाती रहे, इसे शायद सजा भी हो जाए। इस सब में इसके पाप की कमाई भी नष्ट हो सकती है। इसलिए मैं सरस्वती के लिए एक लाख रुपया छोड़ता हूं।"

कमरे में सन्नाटा छा गया। ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक चुप बैठे छत की ओर देख रहे थे और सरस्वती सुबक रही थी। जसोदा देवी ने सरस्वती के सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "कोई बात नहीं, इनकी तो आदत ही ऐसी थी।

मैंने अब वसीयत का छठा अनुच्छेद पढ़ा – "मैं चूड़ामणि मिश्र अपनी दूसरी लड़की सावित्री से हमेशा संतुष्ट रहा हूं। अत्यंत सुशील और विनम्र रही है यह। भगवान की भी इस पर कृपा है। इसके पति जयनारायण तिवारी का ऊंचा कारबार है, आटे की मिल, तेल की मिल, और अब वह शक्कर की मिल भी खोल रहा है। सावित्री और जयनारायण को मेरे शत-शत आशीर्वाद।" और मैं चुप हो गया।

तभी मुझे जयनारायण की आवाज सुनाई दी, "वसीयत के अनुसार हमें कुछ मिलेगा भी या नहीं?"

यह तो उन्होंने नहीं लिखा है। छठा अनुच्छेद समाप्त हो गया, केवल आशीर्वाद ही दिया है उन्होंने।

और अब सावित्री ने रो-रोकर कहना आरंभ किया, "पिताजी हमेशा हम लोगों से जलते रहे, हमारी संपन्नता का बखान करते रहे। उन्हें क्या पता कि इस साल हमें दो लाख रुपए का घाटा हुआ है।"

जयनारायण तिवारी ने सावित्री को डांटा, "क्यों घर का कच्चा चिट्ठा खोल रही हो? घाटा हुआ है तो हमें, कोई हरामजादा इस घाटे को पूरा कर देगा?"

कर्नल संजीवन पांडे ने कड़े स्वर में कहा, "तिवारी जी, गाली-वाली देना हो, तो अपने

मजदूरों और मातहतों को देना! यहां दोगे, तो मुंह तोड़ दिया जाएगा!"

मैंने सब लोगों से हाथ जोड़कर विनयपूर्वक कहा, "पहले वसीयत समाप्त हो जाए, तब आपस में लड़िए-झगड़िए।"

काफी चांव-चांव के बाद सब लोग शांत हुए। मैंने अब सातवां अनुच्छेद पढ़ा – "मैं चूड़ामणि मिश्र अपनी छोटी लड़की सौदामिनी का मुंह नहीं देखना चाहता। यह मेरे नाम को कलंकित कर रही है। बाल कटे हुए, अंग्रेजी में बात करती है। मुझे बताया गया है कि यह कभी-कभी सिगरेट और शराब भी पी लेती है, यद्यपि मुझे इस पर विश्वास नहीं होता . . ."

मुझे पढ़ते-पढ़ते रुक जाना पड़ा, सौदामिनी चीख रही थी, "यह सब छोटे जीजाजी की हरकत है! वह हमेशा पिताजी के कान भरते रहे, तभी पिताजी ने मुझे कभी अपने यहां नहीं बुलाया।"

उसी समय मुझे सावित्री की चीख सुनाई दी, "अरे उन्हें बचाओ! वह संजीवन उनकी जान ले लेगा!"

अब मैंने पुरुषों की गैलरी की ओर देखा, और मेरी आंखों को विश्वास नहीं हुआ। कर्नल संजीवन पांडे जयनारायण तिवारी का गला पकड़े थे और कह रहे थे, "क्यों बे, सूअर के बच्चे! हमारे यहां आकर स्कॉच व्हिस्की मांगता है और पीछे चुगली करता है!" और जयनारायण तिवारी "गों-गों" की आवाज कर रहे थे। ज्ञानेन्द्रनाथ पाठक और नीलमणि ने बड़ी मुश्किल से जयनारायण तिवारी को संजीवन पांडे के पंजे से छुड़ाया।

मैंने कहा, "आप लोगों को इस पवित्र अवसर पर इस तरह लड़ना-झगड़ना शोभा नहीं देता! इससे आचार्य की दिवंगत आत्मा को क्लेश होगा। पहले मैं पूरी वसीयत पढ़ लूं, तब आप आपस में एक-दूसरे से निबटिएगा। अभी सातवां अनुच्छेद समाप्त नहीं हुआ है।"

सब लोग शांत हो गए। मैंने पढ़ना आरंभ किया– "लेकिन इस समय मुझे लगता है, मुझसे सौदामिनी के प्रति अन्याय हो गया है। एक पतिव्रता स्त्री को जो करना चाहिए, वही सब वह कर रही है। और मैं संजीवन पांडे को भी दोष नहीं दे सकता। फौज में बड़ा अफसर है। चीन की फौज से लड़ा, पाकिस्तान की फौज से लड़ा और सौभाग्य से जीवित बचा हुआ है। लेकिन मृत्यु की छाया उसके सिर पर मंडराती ही रहती है। और इसलिए वह खुलकर मांस-मदिरा का सेवन करता है। खुले हाथ खर्च करता है। पास में पैसा नहीं। अगर वह मर जाएगा, तो सौदामिनी और उसके बच्चों को भीख मांगने की नौबत आएगी। इसलिए मैं डेढ़ लाख रुपयों की व्यवस्था करता हूं, जिसका ब्याज आठ प्रतिशत की दर से बाहर हजार रुपए प्रतिवर्ष, यानी एक हजार रुपया महीना होगा।"

एकाएक सौदामिनी किलक उठी, "धन्य हो पिताजी! तुम निश्चय स्वर्ग में जाओगे!"

और मैंने देखा कि संजीवन पांडे ने उठकर जयनारायण तिवारी को गले से लगाया, ''भाई साहब, मुझे क्षमा कीजिएगा! आपकी ही वजह से उस खबीस बूढ़े से डेढ़ लाख रुपए की रकम हाथ लगी!''

मैंने संजीवन पांडे को डांटा – तुमको शर्म नहीं आती, जो अपने पिता-तुल्य पूज्य आचार्य को खबीस बूढ़ा कह रहे हो! अच्छा, मैं आठवां अनुच्छेद पढ़ता हूं – मैं चूड़ामणि मिश्र अपने भतीजे जगत्पति मिश्र राज-ज्योतिषी के कष्टों से भली-भांति परिचित हूं। इसके पास कोई बैठक नहीं है, इसलिए ग्राहक खुद इसके यहां नहीं फंसता, इसे घूम-फिरकर ग्राहकों को फंसाना पड़ता है। बावजूद अपने झूठ और आडंबर के यह अपना पेशा नहीं चला पा रहा है। अपने संकटमोचन के मकान का ऊपरी खंड मैं जगत्पति मिश्र को देता हूं, एक हजार रुपयों की रकम के साथ, जिससे यह अपना एक शानदार साइनबोर्ड बनवा ले, एक टेलीफोन लगवा ले और अपने पेशे योग्य पीतांम्बर आदि वस्त्र खरीद ले।"

जगत्पति मिश्र ने कुछ हिचकिचाते हुए कहा, ''हमारे लिए सिर्फ इतना ही?''

उत्तर नीलमणि ने दिया, ''पहले हैसियत बना लो, फिर लखनऊ आना। वहां ज्योतिषियों की बड़ी पूछ है, हम तुम्हें काफी रकम पैदा करा देंगे।''

मुझे डांटना पड़ा, ''यह सब बातें बाद में, अभी तो वसीयत का क्रम चल रहा है। हां तो नवां अनुच्छेद इस प्रकार है–"मैं चूड़ामणि मिश्र अपने भतीजे श्रीपति मिश्र से अत्यंत संतुष्ट हूं। हाई स्कूल पास होने के बाद ही वह राजनीति में आ गया, और राजनीतिक नेताओं की चमचागीरी करके वह खाने-पीनेभर के लिए झटक लेता है। लेकिन उसे केवल इतने से संतोष नहीं कर लेना चाहिए, उसे स्वयं एम.एल.ए. या मिनिस्टर बनना चाहिए। मैं जानता हूं कि चुनाव लड़ने के लिए पूंजी की आवश्यकता है, क्योंकि एक चुनाव में पचास-साठ हजार रुपयों का खर्च है। मैं श्रीपति मिश्र के लिए पचास हजार रुपयों की व्यवस्था करता हूं, ताकि वह अगला चुनाव लड़ सके। अपनी मक्कारी, छल-कपट और गुंडागर्दी के बल पर श्रीपति अपने प्रदेश का ही नहीं, भारतवर्ष का बहुत बड़ा नेता बन सकेगा।"

हर्षातिरेक से उमड़ते हुए अपने आंसुओं को पोंछते हुए श्रीपति ने कहा, ''चाचाजी, आपने मेरे चरित्र पर जो लांछन लगाया है, वह सरासर अपने भ्रम के कारण! लेकिन मैं आपके आदेशों का पालन करूंगा।''

मैंने अब दसवां अनुच्छेद पढ़ा – "मैं चूड़ामणि मिश्र अपने भतीजे लोकपति मिश्र का आदर करता हूं। विनम्र, शिष्ट, अध्यवसायी और पंडित। अपने अथक परिश्रम और अपनी योग्यता के बल पर ही वह संस्कृत महाविद्यालय का प्राचार्य बन सका है। मैं अपनी समस्त पुस्तकें उसे देता हूं, जिसकी जिल्दें बनवाकर वह मेरे मकान के नीचे वाले खंड में एक अच्छा-सा पुस्तकालय स्थापित कर दे। इसी मकान में वह आकर रहे भी और जसोदा

की देखभाल करे। जसोदा की मृत्यु के बाद इस मकान के नीचे के खंड का स्वामी लोकपति मिश्र होगा। अगर जसोदा लोकपति के साथ न रहना चाहे, तो वह अपने पुत्रों-पुत्रियों के साथ या कहीं दूसरी जगह रह सकती है। ऐसी हालत में जसोदा के जीवनकाल में ही इस नीचे के खंड पर लोकपति का स्वामित्व हो जाएगा। पुस्तकों की जिल्दें बंधवाने के लिए तथा रैक खरीदने के लिए मैं दो हजार रुपयों की व्यवस्था करता हूं।"

लोकपति ने भूमि पर अपना मस्तक नवाकर कहा, ''चाचाजी का आदेश शिरोधार्य है। लेकिन जिल्द-बंधाई और रैकों के खरीदने के लिए यह रकम बहुत कम है।''

तभी मुझे लालमणि की आवाज सुनाई दी, ''इसमें हजार-दो हजार और जो लगे, मुझसे ले लेना।''

ग्यारहवां अनुच्छेद इस प्रकार था – "मैं चूड़ामणि मिश्र अपने सेवक बुधई से बहुत संतुष्ट हूं, जो गत बीस वर्षों से मेरे अंत समय तक बड़ी लगन और बड़ी भक्ति के साथ मेरी सेवा करता रहा। भोजन यह मेरे यहां करता था, वस्त्र यह मेरे पहनता था, अपनी तनख्वाह यह पूरी-की-पूरी अपने घर भेज देता था। तो मैं आदेश देता हूं कि मेरे समस्त वस्त्र, सूती, रेशमी और ऊनी बुधई को दे दिए जाएं। भंडारघर में जितना भी अनाज-घी-चीनी है, वह सब भी बुधई को दे दिया जाए और मेरी ओर से सौ रुपए देकर इसे विदा कर दिया जाए। यदि मेरे कुटुंब का कोई व्यक्ति बुधई को अपने यहां नौकर रखना चाहे, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

जसोदा देवी ने कड़ककर बुधई से पूछा, ''कितना सामान है भंडार में?''

बुधई ने हाथ जोड़कर कहा, ''एक बोरा चावल, एक बोरा गेहूं, पांच किलो चीनी, एक मन गुड़, एक टीन घी और दो कनस्तर सत्तू है, दालें भी थोड़ी-थोड़ी हैं।

जसोदा देवी ने कहा, ''तेरही के दिन जो भोज होगा, यह अनाज उसमें काम आएगा। बुधई को कैसे दिया जा सकता है?''

मुझे बोलना पड़ा, ''भोज का प्रबंध लालमणि को करना पड़ेगा, जिन्हें इस सबके लिए पचास हजार की रकम मिली है। लालमणि अगर चाहें, तो यह अनाज बुधई से बाजार भाव पर खरीद लें।"

लालमणि ने कहा, ''यह सब बाद में देखा जाएगा। अब आप वसीयत का शेषांश पढ़िए।''

बारहवें अनुच्छेद की प्रतीक्षा में सभी लोग थे, जो इस प्रकार था—"मैं चूड़ामणि मिश्र अपने मकान के रूप में अचल संपत्ति तथा बैंक में जमा ग्यारह लाख रुपयों की चल संपत्ति का स्वामी हूं। यह ग्यारह लाख की रकम पिछले अप्रैल में मेरे नाम में थी, ब्याज लगाकर यह रकम अब और बढ़ गई होगी। संभवतः इस राशि पर मृत्यु कर भी देना होगा। तो मृत्यु कर देने के बाद जो रुपया बचे, उसमें से इस वसीयत में निर्धारित राशियां बांट दी जाएं, और जो बचे, वह बराबर-बराबर भागों में लालमणि और नीलमणि में वितरित हो

जाए।"

मैंने कुछ रुककर कहा, "वसीयत समाप्त हो गई है, केवल एक फुटनोट है मेरे लिए अलग से। अगर आप कहें, तो उसे भी पढ़ दूं।"

एक स्वर से सब लोगों ने कहा, "हां-हां, उसे भी पढ़ दीजिए।"

फुटनोट इस तरह था – "मेरे परम शिष्य जनार्दन जोशी! तुम्हारा उत्तरदायित्व केवल इस वसीयत को मेरे परिवार वालों को सुनाना होगा। इस वसीयत की रजिस्ट्री हो चुकी है जो अदालत में मौजूद है। तो जनार्दन, तुम इस वसीयत पर परिवार वालों के हस्ताक्षर लेकर अदालत में तत्काल जमा कर देना। जहां तक तुम्हारा संबंध है, तुम हमेशा भावानात्मक प्राणी रहे हो। तुम्हें भौतिक दर्शन पर विश्वास नहीं रहा है। न तुमने सॉरल पढ़ा, न चार्वाक का दर्शन पढ़ा है। एकमात्र वेदांत के तुम पंडित रहे हो। मुझे तुमसे कभी-कभी ईर्ष्या होने लगती है कि कितना संतोष है तुम्हें, तुम्हारे मन में कितनी शांति है। मैं निःसंकोच कहता हूं कि तुम मेरे सबसे अधिक निकटस्थ हो। मैं तुम्हें अंतिम उपहार के रूप में अपना परम-प्रिय तोता गंगाराम भेंट करता हूं, जिसे मैंने अपने प्राणों की तरह पाला है। जब तुम अदालत में इस वसीयत को जमा करके लौटना, तब बुधई से गंगाराम को ले लेना।"

मैंने घड़ी देखी, दस बज चुके थे, मैं उठ खड़ा हुआ, "अदालत खुल गई होगी, मैं पूज्य गुरुदेव की आज्ञानुसार यह वसीयत वहां जमा करके वापस लौटता हूं।"

अदालत में अधिक समय नहीं लगा, बारह बजे ही मैं लौट आया। बुधई ने तोते का पिंजरा मुझे थमा दिया।

लंका से अस्सी घाट अधिक दूर नहीं है, जहां मेरा मकान है। पिंजरा हाथ में लेकर मैं पैदल ही चल पड़ा। उस समय मेरे मन में परम संतोष था। आचार्य इतने संपन्न और इतनी स्थिर बुद्धि के आदमी होंगे, मैंने पहले कभी कल्पना न की थी। मैं इस पर सोचता मगन भाव में चल रहा था कि मुझे सुनाई पड़ा, "तुम बुद्धू हो।"

मैं चौंक पड़ा। बिलकुल साफ आवाज। और मैंने अनुभव किया कि यह आवाज तोते के पिंजरे से आई थी। इस आवाज को सुनकर मेरे विचारों ने पलटा खाया। आचार्य ने लाखों रुपए उन लोगों को बांट दिए, जिनसे वे बेहद नाराज थे, जिन्हें वे गालियां देते थे, लेकिन मेरे लिए उन्होंने एक पैसे की भी व्यवस्था नहीं की। अब मुझे आचार्य चूड़ामणि पर कुछ झुंझलाहट होने लगी। इस झुंझलाहट के मूड में मैं तेजी से डग बढ़ाकर चलने लगा। तभी मुझे पिंजरे से सुनाई पड़ा, "मैं पंडित हूं!"

बड़ी साफ आवाज, जैसे आचार्य चूड़ामणि स्वयं बोल रहे हों। तो आचार्य एक मूल्यवान उपहार मुझे दे गए हैं। अस्सी घाट सामने दीख रहा था कि मुझे फिर सुनाई पड़ा, "तुम बुद्धू हो!"

आसपास के लोग मुझे और मेरे हाथ वाले पिंजरे को देख रहे थे और मुझे लगा कि

आचार्य चूड़ामणि अपनी वसीयत में मुझे ठेंगा दिखाकर मेरा उपहास कर रहे हैं। मेरा अंदर वाला वेदांती न जाने कहां गायब हो गया। मैं तेजी से अपने घर की ओर न मुड़कर गंगाजी की ओर चलने लगा, तभी पिंजरे से सुनाई पड़ा, "मैं पंडित हूं!"

सामने गंगाजी लहरा रही थीं। मैंने आचमन करते हुए कहा, "आचार्य, तुम पंडित थे, इससे कोई इंकार नहीं कर सकता, तुम्हारी आत्मा को शांति मिले!" और मैं अपने घर की ओर चलने को उद्यत ही हुआ कि गंगाराम बोल उठा, "तुम बुद्धू हो!"

जैसे सिर से पैर तक आग लग गई हो मेरे, मैंने पिंजरे की खिड़की खोलते हुए कहा, "मैं बुद्धू हूं, यह मानने से मैं इंकार करता हूं। हे गंगाराम, मैं तुम्हें मुक्त करता हूं!" मेरे कहने के साथ ही गंगाराम पिंजरे से उड़ गया।

और मैं घाट पर खाली पिंजरा छोड़कर घर की ओर चल दिया।

कुछ वर्गवाद

कुट्टिचातन्

वैज्ञानिकों, दार्शनिकों, मनीषियों और वी.पी. से माल भेजने वालों सभी ने अपने-अपने ढंग से मानव-जाति का वर्गीकरण किया और अपने-अपने स्थान पर, अपनी-अपनी सीमाओं के अंदर, उनके बनाए हुए वर्ग सार्थक भी हो सकते हैं। विज्ञान और दर्शन में हमारी पहुंच उतनी ही है कि बस किसी से पूछा गया कि 'भई, तैरना कितना जानते हो?' तो बोला कि 'कुछ लोग बिना हाथ-पैर हिलाए डूब सकते हैं, हम डूबने से पहले जरा हाथ पैर मार लेंगे।' और जहां तक वी.पी. माल का प्रश्न है, हमने वी.पी. छुड़ाए-ही-छुड़ाए है और एक-आध तो ऐसा भी छुड़ गया है कि उसमें से माल ही नहीं निकला! फिर भी हमने मोटे तौर पर मानव-जाति को दो वर्गों में बांटने का जो भारी आविष्कार किया है, वह इतना भारी है कि उसका गुरुत्व हमीं पहचानते हैं।

साधारणतया मानव दो प्रकार के होते हैं— कुकुर-मानव और बिलार-मानव। कहीं आप इन पशु-विशेषणों से समझें कि हम व्यंग्य कर रहे हैं—तो याद दिला दें कि प्राचीन सामुद्रिक ने पुरुष-नारी को जिन चार-चार श्रेणियों में बांटा, वे आठों पशु-श्रेणियां ही थीं —तो व्यंग्य तो हर बात में है ही और हमारा अभिप्राय यह है कि मानवों में मूलतः दो प्रवृत्तियां पाई जाती हैं—कुछ को कुत्ते अच्छे लगते हैं, कुछ को बिल्लियां। हमें स्वयं दोनों अच्छे लगते हैं, पर यह निर्णय करने का कभी मौका नहीं मिला कि यह पसंद आवर्तित होती रहती है, या कभी दोनों एक साथ भी और एक जितने अच्छे लगते हैं! यह जिज्ञासा अब भी बनी है, क्योंकि कभी अगर हमने इसकी पड़ताल करने का प्रयत्न किया भी, तो शोध के साधनों ने योग नहीं दिया—कभी कुत्ते ने बिल्ली को खदेड़ दिया, तो कभी बिल्ली ही कुत्ते पर ऐसी खिसियाकर झपटी की कुत्ता दुम की लंगोटी लगाता हुआ भाग गया और फिर कभी दिखा नहीं—जैसे नकली साधू जिस मुहल्ले में उनकी पोल खुल जाए वहां फिर कभी नहीं आते!

वैसे अनुमान तो यही है कि दोनों एक साथ शायद ही किसी को अच्छे लगते हैं। समकालीन मुहावरे में कहें कि लोग या तो कुकुरवादी होते हैं, या बिलारवादी। सुना है कि अंग्रेज लोग कुत्ते भी बहुत पालते हैं और बिल्लियां तो इतनी कि इंगलिस्तान में हर

तीन परिवारों पर दो बिल्लियों की पड़त आती है—पर अंग्रेज तो समझौतावादी जाति है, इसलिए उसका दृष्टांत काम नहीं देता!

दोनों मतवादियों के कुछ लक्षण विशिष्ट होते हैं। हमारे एक विश्लेषणपटु मित्र का दावा है कि पुरानी कहावत को बदलकर यह कहना चाहिए कि 'हमें बता दो कि किसी का कुत्ता (या बिल्ली) कैसा (या कैसी) है, और हम बता देंगे कि वह आदमी कैसा है!'

साधारणतया बिलारवादी अंतर्मुखी होते हैं। वे चिंताशील बहुत होते हैं, पर अपने-हमारे विचारों की चर्चा कम करते हैं, और अपनी गतिविधि में हस्तक्षेप सहन नहीं कर सकते। उनमें संदेह करने की शक्ति कम हो, ऐसा नहीं, पर वे प्रदर्शन कम करते हैं। कुछ उनमें सत्तालोलुप भी होते हैं, और सत्ता की साधना में कड़ी-से -कड़ी तपस्या कर सकते हैं। पर साधारणतया उनका सहज संयमित जीवन उनके स्वस्थ आत्मानुशासन का ही परिणाम होता है।

और कुकुरवादी? बहिर्मुखी और प्रगल्भ, संवेदनशील और अपनी संवेदनाओं का अत्यंत प्रदर्शन करने वाले, सीधे-सादे, अल्प-संतोषी प्राणी होते हैं। बातों में उन्हें प्रेम होता है, कभी कुछ अच्छी बात कह जाते हैं तो उससे स्वयं इतने प्रभावित हो जाते हैं कि बार-बार दुहराते हैं। आपने देखा है कि कुत्ता भी फेंकी हुई गेंद या लकड़ी उठाकर ले आता है तो उसे मालिक के पास रखकर किस अदा से उसके लिए प्रशंसा की मांग करता है? दाद न मिलने से वह अत्यंत अप्रतिभ हो जाता है।

आप कहीं समझें कि हम कुत्ते के स्वभाव का मानव पर आरोप कर रहे हैं, और यह वैसी ही बात हुई कि चुकंदर खाने से रक्त बढ़ता है, या कि तोते की जीभ खाने से आदमी बहुत बोलने लगता है। लेकिन यह बात हमारा आविष्कार नहीं है।स्वयं कुकुरवादी कुत्ते और मनुष्य के गुणों की तुलना किया करते हैं—और निर्णय भी कुत्ते के पक्ष में दिया करते हैं। ऐसी एक उक्ति प्रसिद्ध है : 'जितना अधिक मैं मानवों को जानता हूं, उतना ही मैं कुत्तों से प्रेम करता हूं।' बात गहरी मालूम होती है, और बहरहाल कहने का ढंग तो चमत्कारपूर्ण है ही—कुकुरवादी इससे कितने प्रसन्न होते हैं, क्या ठिकाना। और बहुत-से लोग जो कुत्तों से न मालूम स्नेह करते हैं या नहीं पर मानव-द्वेषी जरूर हैं, इस वाक्य को प्रमाण-वाक्य मानकर चलते हैं—इसके बाद मानव के पक्ष में सोचने को कुछ उनके पास रह ही नहीं जाता!

हमें सदैव यह लगा है कि इस कथन की कुछ पड़ताल करनी चाहिए। पहला प्रश्न तो यह है कि जब आप कहते हैं। कि आदमी की निस्बत में आपको कुत्ता अधिक प्रिय जान पड़ता है, तब 'आदमी' वर्ग में क्या आप अपने को भी गिन लेते हैं, या कि विचारक की तटस्थता की ओट लेकर अपने को छोड़ देते हैं? अगर ऐसा है तो जनाब, आप आत्म-प्रशंसक हैं, और आदमी से कुत्ते को अच्छा बताने का आपका यह स्टंट केवल इसलिए

है कि आप अपने को दोनों से अच्छा मानते रह सकें—आपकी बात केवल प्रच्छन्न आत्मश्लाघा है।

और अगर ऐसा नहीं है, आप अपने को अलग नहीं रख रहे हैं, और 'मानव को जानने' से अभिप्राय स्वयं अपने को जानने से ही है—यानी अगर आप यह कहना चाहते हैं कि जितना आप अपने को जानते हैं उतना ही आप कुत्ते को अधिक प्रिय समझते हैं, तो यह आत्मावसाद विनय तो हो सकता है, पर प्रश्न यह रह जाता है कि आप तो कुत्तों से प्रेम करते हैं पर क्या कुत्ते भी आपसे प्रेम करते हैं? और यहां आकर हम पाते हैं कि यह फिर आत्म-समर्थन का ही एक रूप है। हर आदमी मूलतः अपने को मजनूं मानता है, मुहब्बत के नाम पर मिट जाने वाला! जो मनुष्य को अपना प्यार नहीं दे सकते वे इसी पर इतराते हैं कि हम कुत्ते से इतनी मुहब्बत करते हैं।

वास्तव में मनुष्य है बड़ा अहम्मन्य प्राणी, और कुत्ते की स्वामिभक्ति का जो इतना बड़ा घटाटोप उसने खड़ा किया है, वह वास्तव में उसकी अहम्मन्यता का ही प्रतिबिंब है। स्वामिभक्ति अर्थात् मेरे प्रति भक्ति! कर्तव्यनिष्ठा, अर्थात् मेरे प्रति निष्ठा। अगर उसके अहं की पुष्टि उसके निकट इतना महत्व न रखती होती, तो क्या वह इस बात को अनदेखी कर सकता कि बुनियादी मूल्यों में स्वामिभक्ति से कहीं अधिक महत्व स्वातंत्र्य प्रेम का है? दया के दो टुकड़ों पर निरंतर दुम हिलाते पीछे फिरने वाला कुत्ता महान है, स्वामिभक्त है, क्योंकि दुत्कारने पर भी लौट आता है और तलुए चाटता है और बरसों आपके इशारों पर हां-हजूर करने वाला तोता दुष्ट है, नाशुकरा है, क्योंकि कभी भी मौका पाकर उड़ जाता है और फिर आपकी ओर कानी आंख नहीं देखता! क्यों साहब, आप ही क्या दुनिया के केंद्र हैं कि आपके प्रति लगाव ही जीव मात्र के धर्म की कसौटी हो जाए? कुत्ते की दासत्व-स्वीकृति को आप आदर्श मानें, बिल्ली की निस्संगता को अकृतज्ञता, और तोते के स्वाधीनता-प्रेम को इतना हेय समझें कि विश्वासघाती को आप कहें तोताचश्म—कैसा अंधेर है।

हम तो तोते की निष्ठा को चातक की निष्ठा से कम नहीं मानते। तोते को बंदी रखिए, खिलाइए-पिलाइए, जैसा आप बोलाएंगे बोलेगा। एक दिन पिंजरे से निकल जाने दीजिए, बस फरंट हो जाएगा। फिर कहां का रोटी-चूरमा और कहां का मिट्ठूपन। सुखद-से-सुखद दासत्व भी जिसके स्वातंत्र्य प्रेम को न भरमा सके, वही तो स्वातंत्र्य-निष्ठ है, नहीं तो थोड़ी-बहुत लपक-झपक तो सांकल पर बंधा पालतू कुत्ता भी कर लेता है।

और तोते की निष्ठा और भी स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है जब हम देखते हैं कि तोता एक ओर अपना सोने का पिंजरा छोड़कर जाता है, दूसरी ओर निश्चित मृत्यु के मुख में जाता है—क्योंकि जो एक बार बंदी जीवन में रह चुका है, उसे फिर तोता-समुदाय स्वीकार नहीं करता, मार ही डालता है। यह जानते हुए कि एक बार दास बनकर रह चुकने

के अपराध पर निश्चय ही मृत्यु-दंड मिलेगा, तोता सोने की कीलों के मोह में न पड़कर स्वातंत्र्य का ही वरण करता है—क्या यही धर्म नहीं है? स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः?

वास्तव में मानव की अधिकतर मान्यताएं—मूल्यों के संबंध में उसकी अवधारणाएं—वार्गिक चिंतन का परिणाम होती हैं—चिंतन का नहीं तो भावनाओं का कह लीजिए। कुछ तो यह मानव की सहज दुर्बलता है कि कोटियों-श्रेणियों में सोचता है, कुछ इधर इसको मार्क्सीय विचारधारा ने दार्शनिक प्रामाणिकता दे दी है। यह प्रायः मान लिया जाता है कि ऐसा वर्गगत चिंतन एक सीमा नहीं, एक विशेषता है। फलतः ऐसे संकीर्ण चिंतन की प्रवृत्ति और उसका अभ्यास बढ़ता जाता है। यहां तक कि उस चिंतन का आरोप हम पशुओं पर भी करते हैं। पशु-जगत में जातिवाद और जाति-पांतिवाद का नहीं तो और क्या कारण हो सकता है? जैसे सामंत 'अभिजात' होते हैं—अंग्रेजी मुहावरे के अनुसार उनका रक्त नीला होता है—उसी प्रकार नस्ली अलसासी (अल्सेशियन) भी अभिजात होता है और शहर की गलियों में भटकने वाले वर्णसंकर की अपेक्षा 'उच्च'-कुलीन। आप कहेंगे कि यह अभिजातवाद तो डाक्टर मलान का जातिवाद है, मार्क्स का वर्गवाद तो नहीं। और आप ठीक ही कहेंगे जहां तक अलसासी और अज्ञातकुल गली के कुत्तों की तुलना का प्रश्न है। लेकिन जाति-पांति मूलतः तो कर्मगति वर्गीकरण का ही जड़ीभूत रूप है न? यही तो मार्क्सवाद भी मानता है कि कहार-कुरमी का स्तर इसलिए छोटा माना गया कि ये कमकर थे, और क्षत्रिय-ब्राह्मण इसलिए ऊंचे रहे कि ये संपन्न और नकारे थे?

वर्गों का आधार श्रम-संबंध है, यानी मालिक-चाकर के, काम देने और लेने वाले के संबंध, यही मानकर हम चलें तो कुत्ते-बिल्लियों के मामले में हम और भी दिलचस्प परिणामों पर पहुंचते हैं।

हमारे जैसे नाई-टहलुए, नौकर-चाकर, भंगी-भिश्ती, साईस-खिदमतगार होते हैं—और हां, कुत्ते-बिल्ली आदि पालतू जानवर भी होते हैं।—उसी प्रकार (अगर जैसा कि हमने कहा—) शुद्ध श्रम-संबंधों के आधार पर वर्ग-विभाजन करते हुए देखें तो, इन पालतू जानवरों के भी होते हैं। हम क्योंकि मानवों की भाषा बोलते हैं, और भाषा सामूहिक अहं की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम होने के नाते जिसकी भाषा होती है, उसकी नैतिक मान्यताओं और भावनामूलक आग्रहों से बंधी होती है; इसलिए हमें इन संबंधों पर कुत्ते या बिल्ली की दृष्टि से विचार करने में कठिनाई होना स्वाभाविक ही है। नहीं तो यह कहकर बताने की आवश्यकता न होती कि अच्छे खानदानी कुत्ते-बिल्ली के भी इसी प्रकार चाकर-टहलुए होते हैं। सामंतों के पीठ मर्द होते थे तो बिल्लियों के भी कर्णकण्डूयक होते हैं और राजा के पीछे-पीछे उसका पल्ला उठाए चलने वाला कोई कंचुकी होता है तो कुत्ते के पीछे-पीछे उसकी सांकल संभाले चलने वाला भी कोई होता ही है। रानी का दामन पकड़कर चलना बड़े गौरव की बात समझी जाती है; कुत्तों की कल संभाले जो लोग पार्क-बगीचों में घूमते नजर आते

हैं कोई उनकी मुद्रा पर ध्यान दे तो यही समझने लगेगा कि वही मुख्य है और कुत्ता गौण। यह भी तो इसीलिए है कि देखने वाले भी मानव हैं और वर्ग-चेतना के कारण एक कुत्ते का पिछलगुआ दूसरे कुत्ते के पिछलगुए को ही पहले देखता है, स्वयं कुत्ते को नहीं! हमारे ही निकट तो इस बात का महत्व होता है कि एक कुत्ते की सांकल पर कल्लू बेरा है और दूसरे की सांकल पर छोटे डिप्टी साहब—भले ही कल्लू बेरे के सामने जो कुत्ता हो वह कुक्कुर राजवंशी अलसासी या ग्रेट डेन हो, और डिप्टी साहब के आगे निरा भुच्चर। स्वयं कुत्तों को इससे कोई मतलब नहीं होता, पार्क में कुत्ता-कुतिया अपने सजातीय को ही पहले देखते हैं, उन्हीं से दुआ-सलाम करते हैं या गाली-गुफ्तार! उनके जंजीर-बरदार उनके निकट कोई महत्व नहीं रखते।

इसीलिए हम मार्क्सवादियों के कायल हैं। उन्होंने यह बात स्पष्ट करके रख दी है कि असल में शब्दों का कोई अपना अर्थ नहीं होता, अर्थ केवल एक आरोप है, जो वर्ग-चेतना से अनुशासित होता है और मुख्यतया भावाग्रही होता है। जैसे हमारे सामजिक संबंध हों, वैसा ही अर्थ हमें भाषा देती है—या हम भाषा को देते हैं, भाषा से निकालते हैं। शब्दार्थ-संबंधी उनकी यह स्थापना इतनी महत्वपूर्ण है कि इसका एक नया विज्ञान बन गया है—'सिमैण्टिक्स'; इसका हिन्दी पर्याय हम 'शब्दार्थ-विज्ञान' बताते; पर अर्थ तो अब स्थिर रहा नहीं, द्वंद्व-सिद्धांत के अधीन चलनशील हो गया; इसलिए कहें 'शब्द-बीज-विज्ञान'। हर शब्द एक बीज है और विज्ञान से पहले तो यह था कि जिसका बीज हो वही फल होगा, जो आप बोएंगे वही आपको फलेगा, पर अब विज्ञान की बदौलत यह हुआ है कि बोवे सेंहुड़ काटै ऊख। यह तो बुर्जुआ विज्ञान का मताग्रह था कि एक जीवन में पाए हुए संस्कार वंश-परंपरा में नहीं आ जाते—लाइसेंको ने वह सब बदल दिया है।

अब देखिए न : हम कहते हैं, 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का'। कहने-कहने में हम इस बात की उपेक्षा कर गए कि हमारी बात ही हमारी भावना का खंडन कर रही है—भावना हम यह जगाना चाहते हैं कि कुत्ता कहीं का नहीं है, यद्यपि आरंभ में ही तथ्य यह माना है कि कुत्ता धोबी का है। जब वह धोबी का है, तब उसे इससे क्या कि वह घर का है या घाट का? वह तो धोबी का है ही और जरा कहावत गढ़ने वाले आदमी-बच्चे से यह पूछा जाए कि कुत्ते का धोबी आखिर कहां का है, घर का कि घाट का? असल में चिड़ी-बल्ले की चिड़िया की तरह इधर-उधर मारा-मारा तो वह फिरता है, लेकिन क्योंकि वह भी श्रम-कर इंसान है, इसलिए हमने उसके अनाथत्व का आरोप कर दिया बिचारे कुत्ते पर, जो और जो कुछ हो या न हो, संबंधकारक से अनुशासित अवश्य है!

जी नहीं हम बहके नहीं! यह तो वर्ग-गत चिंतन का परिणाम ही है! क्योंकि एक बार बांटकर देखने चले तो फिर बांटने का अंत नहीं। जिसे दो में बांटा जा सकता है उसे चार में भी बांटा जा सकता है, क्योंकि प्रत्येक भाग को फिर दो में बांटा जा सकता है।

विश्लेषण-बुद्धि की यही मर्यादा है। हम बहुत दिनों तक स्वयं विश्लेषणवादी नहीं तो वैसे वादियों के कायल जरूर रहे, पर अंत में समझ में आ गया कि प्याज को बहुत छीलने से हाथ कुछ नहीं आता, परत-पर-परत उतारते समय हम शून्य तक ही पहुंचते हैं। तब से हम समन्वयवादी हो गए हैं। परत-पर-परत चढ़ाना ही ठीक मानने लगे हैं और तब से तो हम चारों खाने चित्त पड़े हैं जब से एक समन्वयवादी ने हमें यह बताते हुए, कि असल में भेद केवल बुद्धि-भेद है, वैसे सब कुछ एक है, यह दृष्टांत दिया कि विश्लेषणवादी अंग्रेज कहते हैं 'फाइटिंग लाइक कैट्स एण्ड डाग्स'—कुत्ते-बिल्लियों की तरह लड़ना; पर कुत्ते-बिल्ली दो नहीं हैं, मूलतः एक हैं : जिस आधार पर वे टिके हैं (यानी उनकी दुम) वह एक ही है—दुम दोनों की कभी सीधी नहीं होती!

बम्भोलेनाथ

नागार्जुन

कार्तिक पूर्णिमा को बीते तीन रोज हो गए थे।

मैं किसी काम से सोनपुर उतरा था। मन में एक इच्छा उठी कि क्यों न चार घंटे बाबा हरिहरनाथ के इर्द-गिर्द चक्कर लगाया जाए।

मेला के दिन थे। भीड़-भाड़, धक्कम-धुक्की के क्या कहने! मेला यद्यपि उतार पर था, तथापि लोगों की तादाद कम नहीं थी। पुल से कुछ इधर ही रेलवे बांध के नीचे उतरा, सीधे शालिग्रामी की तरफ—दक्षिण-पश्चिम दिशा में रुख किया। आगे बढ़ने पर, रास्ते से कुछ अलग एक भारी भीड़ दिखाई दी। झांकने पर बम्भोला के दर्शन हुए।

वह बीच की खाली जगह में घूम रहे थे। गति धीर और ललित ही थी . . .

यह बम्भोला और कोई नहीं, एक बैल थे। उनकी नकेल एक चंदन-तिलकधारी आदमी के हाथ में थी।

वह आदमी नाना प्रकार के प्रश्न पूछता जा रहा था और भोलानाथ अपना भारी-सा माथा हिला-हिलाकर माकूल जवाब दे रहे थे। बैल क्या था, नाटे कद का एक अच्छा-खासा सांढ़ था वह। किल्होर (ककुद) में से टंगरी निकल आई थी जो चिर रोगी बछड़े की सूखी टांग-जैसी थी। गर्दन पर झूल, जिसमें हजारों कौड़ियां टंकी पड़ी थीं; बीच-बीच में अबरख के चमकीले टुकड़े भी। गले में पथरीली मोहनमाला। सींगों के बीच सतरंगी झालर। कपोलों पर लाल-काली-पीली रेखाएं उरेही हुई . . .

बड़ा ही भव्य रूप था बम्भोले का।

अपने को रोकना मेरे लिए मुश्किल था। उस सर्वज्ञ में चमत्कार देखने के लिए आखिर मैं भी दर्शकों में शामिल हो ही गया।

"जय हो बम्भोला दानी! केकरा उंगरी में चानी के अंगूठी वबा? दोहाई मालिक के, बताईं!"

शाबाशी और टिटकारी पाकर बम्भोला आहिस्ते से बढ़े और पूरब की ओर नीली धारियों वाले हाफ-शर्ट पहने अधेड़ आदमी की बंधी मुट्ठी में अपनी नाक भिड़ा दी। सैकड़ों जोड़ी उत्सुक आंखें उस व्यक्ति के चेहरे की ओर लग गईं तो उसे मुट्ठी खोलनी ही पड़ी।

सचमुच चांदी का छल्ला उसकी तर्जनी में था।

भीड़ में से उल्लास की ध्वनि उठी।

फिर तिलकधारी महाराज ने बम्भोले की पीठ थपथपाई, और पूछा, "सरकार! केहू बीड़ी पियऽ ताऽऽ, तनी देखाई!"

बस क्या था, फिर पशुपतिनाथ बाएं से दाएं हुए और इधर आकर एक बुड्ढे के पेट में हल्के-हल्के सींग छुआ दिया।

उसके हाथ में बीड़ी नहीं थी, मगर लोगों ने जब शंकित और दुहरी-तिहरी निगाहों से बुड्ढे को देखा तो उसने कबूल किया, "जी, हमरा हाथ में हलइ एगो बीड़ी, बाकी भोला बाबा के डरे अबहिएं बिग देलिअइ अ ऽऽ . . ."

फिर उल्लास से लोगों की आंखें चमक उठीं।

तीसरी बार बम्भोला से पूछा गया, "केकरा पाकिट में फोल्टन पेन बा?"

अब तक उचकते-उचकते मैं भीड़ के आगे आ गया था और पाकिट में यही पेन थी। देखा, मंद-मधुर गति से बाबा पशुपतिनाथ मेरी ही ओर बढ़े आ रहे हैं। थुथुन छुआ देंगे तो कुर्ते पर मुहर लग जाएगी, इसी डर से मैं पीछे हो गया।

लोगों को हंसी आ गई और साथ ही आवाज उठी, "धन्न हैं, धन्न हैं बाबा!"

अपने नजदीक एक शहरू लड़के को पाया। उसकी मुट्ठी में इकन्नी गोजते हुए मैंने कहा, "मुट्ठी बंद कर लो और भीड़ के बाहर जाकर खड़े हो जाओ।"

वह बाहर निकल चुका तो मैंने तिलकधारी पंडित से पूछा, "अच्छा महाराज, किसकी मुट्ठी में यहां इकन्नी है? बतलाएं आपके ओढरदानी।"

लेकिन आश्चर्य की बात है; भोलानाथ इस विकट परीक्षा में भी उत्तीर्ण रहे। हुआ यह कि मेरा प्रश्न सुनकर और सेवक की टिटकारी पाकर बाबा ने सींगों के इशारे से बाहर निकलने की इच्छा व्यक्त की। सामने वालों ने रास्ता छोड़ दिया। भीड़ से बाहर आकर उन्होंने लड़के को ढूंढ लिया, उसकी हॉफ पैंट सूंघने लगे। लड़का निर्विकार और गंभीर बना रहा, भोलानाथ भी खड़े रहे। छोकरे ने इकन्नी पाकिट में नीचे डाल ली थी।

तिलकधारी सेवक ने सामने आकर पूछा, "सांचहू सरकार! पहचानल जाता? इहे इकन्नी रखले बाड़न?"

पशुपतिनाथ ने फिर लड़के की हॉफ पैंट से नाक भिड़ा दी। अब छोकरा भभाकर हंस पड़ा।

लोग तो आश्चर्य में डूब गए।

उत्तर की तरफ छोटा-सा चबूतरा था, उस पर पीली-पीली भारी-भारी जटाओं वाले एक साधू महाराज धूनी रमाए हुए थे। जरा हटकर मेहतर बैठा था।

अबकी पंडित ने अपने मालिक से पूछा, "बतावल जाए सरकार, केकर काम सबसे

जब्बुर बा?"

मैंने सोचा, सधुआई तो एक अच्छी-खासी तपस्या है। इससे भारी काम भला और क्या होगा? शायद इन्हीं बाबाजी की तरफ भोलानाथ का संकेत होगा।

परंतु ऐसा हुआ नहीं। हुआ यह कि बम्भोला आहिस्ते-आहिस्ते मेहतर के निकट पहुंचे। कूड़ा वाला कनस्तर से अपनी नाक वह सटाने वाले ही थे कि सेवक ने इधर नकेल खींच ली, "हो गइल मालिक, हो गइल, जान गइलीं!"

आधा घंटा से भी ज्यादा समय गुजरा होगा। मुझे और भी बहुत सारी जगह देखनी थीं। दुअन्नी दक्षिणा देकर मैं खिसक आना चाहता था। लेकिन बाबा के सेवक ने एक नया ही पैंतरा पकड़ा।

पीठ थपथपाकर उसने भोलानाथ से पूछा, "बताइए त मालिक! यहां कौन बाबू हैं जो आपको एगो रुपैया देना चाहते हैं?"

माथा ठनका। मेरी पाकिट में एक रुपए का खुला नोट अलग पड़ा था . . .

पशुपतिनाथ मेरे सामने हाजिर थे।

चवन्नी देकर आखिर मैंने जान छुड़ाई और सृष्टि के इस अनोखे चमत्कार को नमस्कार किया!

एक गांधीवादी बैल की आत्मकथा

राधाकृष्ण

जो लोग अभी तक मुझे बड़ा लेखक मानने से इंकार करते हैं उनकी उदासीनता को मैं क्या कहूं। वैसे अगर वे मुझे बड़ा लेखक मान लें तो उनका एक पैसा भी खर्च नहीं होगा और मैं मुफ्त में बड़ा लेखक हो जाऊंगा। जो भी हो, मैंने अपना ढांचा बड़े लेखक का बना लिया है। सिर में ब्राह्मी का तेल लगाता हूं और टैगोर की तरह दाढ़ी बढ़ा रहा हूं। दरवाजे पर एक पहरेदार रख लिया है, जो लोगों को मेरे पास आने से रोकता है, कहता है कि जरा हमारे लेखक जी की दाढ़ी बढ़ जाने दीजिए, तब आइएगा। वह कहता है कि हमारे लेखक जी लिखने के पीछे इतने व्यस्त हैं कि लिखते-लिखते अपनी लिखावट पर ही सो जाते हैं। जब वे सोकर उठें तो आकर भेंट कर लीजिएगा। फल हुआ कि लोगों ने मेरे पास आना-जाना, मिलना-जुलना बंद कर दिया है। अब तो वे लोग भी नहीं आते जो बार-बार उपहार में मेरी किताब लेने के लिए आया करते थे। इधर इतना सूनापन भर गया है कि मैं ही सोचता हूं कि लिखना-पढ़ना छोड़कर घर से निकल जाऊं और लोगों से मिलता रहूं। अकेले पड़ा-पड़ा बड़ा बोर मालूम होता है। उस दिन ऐसा ही सोच रहा था। उसी समय मेरा दरबान आ पहुंचा, "हुजूर, एक गाय साहब आए हुए हैं। कहते हैं कि आपसे मिलना बड़ा जरूरी है।"

मैंने कहा, "गाय आई हुई है, क्यों आई हुई है? कहां से आई है . . . डेरी फार्म से?"

उसने कहा, "जरूरी मुलाकात के लिए आए हुए हैं। किसी तरह का फारम तो उनके पास नहीं देखा।"

यह ताज्जुब है कि किसी लेखक से मिलने के लिए कोई गाय चली आए। यह तो वैसा ही आश्चर्यजनक हो गया कि जैसे किसी उपन्यासकार के पास किसी उपन्यास की नवयुवती नायिका चली आए। मगर गाय जी को मैं बिठाऊं कहां? मनुष्यों की कुर्सी का भी अभाव है तो गाय की कुर्सी किधर से लाऊं! सोचा कि चलो, बाहर ही खड़े-खड़े बात कर लूंगा और धन्यवाद देकर विदा कर दूंगा। कमरे में आकर अगर गोबर कर दें तो उठाना मुश्किल हो जाएगा। बाहर निकला तो देखता हूं कि गाय नहीं, मिलने के लिए बैल आए हुए हैं। तब दरबान की बात याद आई कि उसने कहा था, एक गाय साहब आए हुए हैं।

मैंने हाथ जोड़कर कहा, "नमस्ते जी, कहिए, कैसे आना हुआ?"

बोले, "मैं कुटीर-उद्योग भंडार से आ रहा हूं। शायद आप मुझे पहचानते भी होंगे। मैं वहां कोल्हू में तेल पेरता हूं। हमारे भंडार में गांधी जी की चिट्ठी लटकती रहती है। आपने भी देखा होगा।"

सच कहूं तो मैंने यह सब कुछ नहीं देखा है। मगर सिर इस तरह हिलाया कि सब देखा है, सब जानता हूं। अब आगे कहिए आप क्या कहना चाहते हैं? मन में एक प्रकार की विरक्ति भी हुई कि लेखक से मिलने आ गए और अपने साथ न रोमांस लाए, न यौन-समस्या की कोई मानसिक उलझन। न इनके पास प्रगतिवाद है और न द्वंद्वात्मक भौतिकवाद। मन कुछ विरक्त होने लगा।

बैल जी ने कहा, "सुनिए महोदय, मैंने सुना है कि आप लेखक हैं। मैं चाहता हूं कि आप मेरी जीवन-कथा सुन लें और उसके बाद मेरा जीवनचरित लिखकर किसी पेपर में छपवा दें। इससे संसार का बहुत लाभ होगा।"

मैंने कहा, "बंधुवर, दुनिया अब बदल गई है। संसार सोचता है कि अब एटम बम से ही उसका लाभ होने वाला है, जीवनचरित से लाभ नहीं होता। इसके अलावा तमाम किस्म के भाषणों और वक्तव्यों को छापने के लिए पेपर में जीवनचरित के लिए जगह भी नहीं निकल पाती। इसलिए आपको जो भी कहना है वह किसी वक्तव्य की तरह कहें या इंटरव्यू के रूप में बतलाएं। तब मैं सोच सकता हूं कि मैं आपके किस लायक हूं।"

"अच्छा, तो यह बात है!" बैल जी ने बड़ी गंभीरता से कहा, "खैर, कोई बात नहीं। मैं संक्षेप में ही कहता हूं। आप उसमें भी थोड़ा संक्षेप मिलाकर किसी पेपर में छपवा दें तो संसार का उपकार हो जाएगा।"

उसके बाद उन्होंने जो कुछ बतलाया उसका संक्षेप इस प्रकार है, "मैं बैल हूं, यह आप देख ही रहे हैं। मैंने गांधीवाद के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिया है। आज कई वर्षों से कुटीर-उद्योग भंडार में तेल पेरता हूं। मेरी आंखों पर पट्टी बंधी होती है और मैं तेल पेरता रहता हूं। मैंने अपने जीवन को संयत बना लिया है और थोड़ी-सी घास तथा तेल की खली खाकर गुजारा कर लेता हूं। आखिर सादगी रखनी चाहिए या नहीं?"

मैंने सिर हिलाया, "जी हां, आप ठीक कहते हैं। सादगी तो रखनी ही चाहिए। आप तो सादगी के अवतार मालूम पड़ते हैं। सादगी के मारे खादी भी नहीं पहनते और घास और खली खाकर गुजारा कर लेते हैं। मगर मैं यह नहीं समझ पाया कि किसी पेपर के लिए आपके इंटरव्यू की उपयोगिता क्या है?"

उन्होंने मेरी ओर देखते हुए सिर हिलाया। बोले, "उपयोगिता है और जरूर है, मैं ओवरटाइम भी करता हूं। लेकिन मुझे ओवरटाइम के लिए कुछ नहीं मिलता। दिन हो,

रात हो, शाम हो, सबेरा हो—मुझे हर वक्त काम में लगा रहना पड़ता है। मगर न मुझे ओवरटाइम मिलता है। और न किसी तरह की बढ़ोतरी ही होती है आप देखिए, केंद्रीय सरकार में काम करने वालों का वेतन कई बार बढ़ चुका। लोगों को प्रमोशन भी मिला है। मगर मैं चुपचाप तेल पेरता रहता हूं, और मेरे लिए कुछ भी नहीं।"

उसकी बात सुनकर मन बड़ा विरक्त हो गया। यह बैल निश्चय ही आलसी है और मुफ्त में वेतन बढ़वाने पर तुला हुआ है। ऐसे लोगों को पब्लिसिटी नहीं मिलनी चाहिए। मैंने पूछा, "आप दिनभर में कितना तेल पेर लेते होंगे?"

बैल जी ने कहा, "मेरी आंखों पर पट्टी बंधी रहती है इसलिए ठीक-ठीक देख नहीं पाता, लेकिन दिन और रात मिलाकर तीन-साढ़े तीन सौ मन तेल तो जरूर ही पेर लेता हूं।

"साढ़े तीन सौ मन!" मैं आसमान से गिरा। मेरे मुंह से निकला, "ऐसा असंभव है। एक बैल इतना तेल कदापि नहीं पेर सकता।"

उसने कहा, "लेखक होकर भी आप इस तरह चौंकते हैं!

उसने मुझे शिक्षा देकर बतलाया कि आप हिसाब कर लें। अगर मैं गलत बतलाऊं तो मेरा कान पकड़ लीजिए। देखिए, प्रतिदिन दो सौ मन तो खुदरा बेचने वाले दुकानदार ले जाते हैं। इसके अलावा जेल है, अस्पताल है, सेनिटोरियम है, होस्टल है, वहां हमारा तेल डाइरेक्ट जाता है। सब मिलाकर साढ़े तीन सौ मन तेल रोज होता है या नहीं। विश्वास न हो तो आप जांच-आयोग बैठा दीजिए और देख लीजिए कि मैं सच कह रहा हूं या झूठ।"

मैंने कहा, "भाई बैल जी, आपकी बात पर मुझे अभी तक विश्वास नहीं होता। मैं जांच कर लूं, उसके बाद ही आपकी बात पर विश्वास कर सकता हूं। अगर आप रोज साढ़े तीन सौ मन तेल पेरते हैं तो आप विश्व के सर्वश्रेष्ठ बैल हैं।"

उसने कहा, "मैं संसार का सर्वश्रेष्ठ बैल तो हूं ही। मैं गांधीवादी बैल हूं। कोई दिल्लगी नहीं है। जी चाहे आप मेरे उद्योग भंडार में जाकर जांच कर लें"

मैंने उसका फोटो खींच लिया और जांच का आश्वासन देकर विदा कर दिया। बात झूठ तो थी ही। भला यह भी कभी संभव है कि एक बैल एक दिन में तीन सौ मन तेल पेर ले। इतना तेल तो तेल की मिल में नहीं निकल सकता। मगर यह बैल ऐसा है जो गांधीवादी होकर भी झूठ बोल रहा है। आजकल झूठ का ही बोलबाला है।

उसने अपना पता बतलाया था 'कुटीर-उद्योग भंडार'। वहां पहुंचने में कोई दिक्कत नहीं हुई। जाकर देखा कि हमारे चिर-परिचित बैल जी आंख पर पट्टी लगाकर अकेले तेल पेर रहे हैं और तमाम तेल के मटके रखे हुए हैं। देखने में लगता था कि जैसे अलीबाबा के यहां चालीस चोरों के तेल वाले मटके रखे हों। दुकान में बिक्री भी काफी दीख पड़ी। कोई एक मन तेल मांग रहा था, कोई दस मन। वहां पांच आदमी काम कर रहे थे और

किसी को तेल बेचने से फुरसत नहीं थी। एक बैल है जो तेल पेरता जा रहा है और एक ही घंटे में कई मटके तेल बिक-बिकाकर खत्म हो जाते हैं। मालूम होता है जैसे तेल की नदी बह रही है।

मुझे निठल्ले की तरह खड़ा देखकर उद्योग भंडार के मालिक ने पूछा, "आप?"

"जी हां, मैं देख रहा हूं।"

उसने कहा, "क्या देख रहे हैं! यहां असली सरसों का तेल मिलता है। किसी तरह के फरेब की यहां गुंजाइश ही नहीं। तेल आपके सामने पेरा जा रहा है।"

मैंने कहा, "जी हां, देख रहा हूं। तेल मेरे ही सामने पेरा जा रहा है।"

उसने कहा, "मेरे यहां किसी किस्म का गोलमाल नहीं। मैं स्कूल और कालिज के सत्तर होस्टलों में तेल की सप्लाई करता हूं। दस सेनिटोरियम और सतरह अस्पतालों में भी मेरा तेल जाता है। मेरा तेल स्वास्थ्यवर्द्धक है जी, तमाम दुकानदार भी मेरे यहां से घानी का तेल ले जाया करते हैं।"

मैंने पूछा, "आपका सारा तेल असली होता है?"

उसने कहा, "देख लीजिए, आपके सामने ही तेल पेरा जा रहा है। आंख के सामने जो चीज है देख लीजिए और विश्वास कर लीजिए।"

मैंने तेल पेरते हुए उस बैल को देख लिया। तेल भी असली था और बैल भी असली था। अगर वहां कुछ गलत था तो गांधीवाद ही अविश्वसनीय था। मैंने देखा कि तेल पेरने वाला बैल बहुत दुबला हो गया है और कुटीर उद्योग भंडार के मालिक बेतरह मोटे पड़ गए हैं।

ठंड : आजादी : समाजवाद!

गोपाल प्रसाद व्यास

ठंड कुछ जल्दी आ गई।

जी, हमारी शादी भी जल्दी हो गई थी और मुल्क में आजादी भी जल्दी आ गई।

मतलब?

मतलब कि हम युवावस्था आते न आते पराधीन हो गए और देश आजादी के अर्थ को समझते न समझते आजाद हो गया।

जी!

जी क्या जी, अब हमें और हमारे देश, दोनों को कीमत चुकानी पड़ रही है।

कैसे?

जी, हम दोनों ही जिम्मेदारियों से भाग रहे हैं। मन-ही-मन बड़बड़ा रहे हैं। कहीं का गुस्सा, कहीं उतार रहे हैं। हम दोनों का ही परिवार बढ़ गया है। समस्याएं बढ़ गई हैं। सुलझने में नहीं आ रही, इसलिए खीझ रहे हैं।

जी?

हम अपना गुस्सा अपनी पत्नी पर उतारते हैं। पत्नी बच्चों पर उतारती है। और बच्चे, जो सामने पड़ जाए उस पर उतारने लगते हैं।

यानी, समस्याओं का बोझ नहीं उतर रहा, गुस्सा उतर रहा है?

जी हां!

यही हालत हमारे देश की है। जैसे चाव-चाव में हमने अपना ब्याह रचवा लिया था, वैसे ही हमारे नेता भी अपने सिर पर सेहरा बांधकर आजादी को घर ले आए। भाई जी, पराई बेटी को घर ले आना सहज है, मगर उसकी फरमाइशों को पूरा करना, उसके सपनों को संजोना, घर को बनाना और उसकी हिफाजत करना आसान काम नहीं।

ठीक है।

क्या ठीक है? अनुभवहीन, कामचोर, अस्वस्थ लोग जैसे किसी कल-कारखाने को नहीं चला सकते वैसे ही हाल देश के नेताओं का है। यूं समझ लो कि जैसे आजकल के नौसिखिए डाक्टर रोगियों के स्वास्थ्य और जीवन से खेल-खेलकर उपचार करना सीखते हैं, वही ट्रेनिंग

आज हमारे सरकार चलाने वाले प्राप्त कर रहे हैं। यह दवा काम नहीं करती तो वह दो। दवा ने असर नहीं किया तो इंजेक्शन ठोको। इंजेक्शन बेकार गया तो हटाओ, आपरेशन ही कर डालो। मरीज बचे या मरे, इसकी चिंता नहीं। चिंता एक्सपेरीमेंट करने की है।

हूं।

हूं क्या भई, जैसे ठंड जल्दी आई या जैसे आजादी जल्दी आई, वैसे ही देश की राजनीति में समाजवाद भी कुछ जल्दी ही आ गया है।

आखिर कहना क्या चाहते हो?

यही कि ठंड का आना बुरा नहीं है। गर्मी शांत हो गई। मौसम सुहावना हो गया, लेकिन लोगों को जूड़ी-ताप मलेरिया आदि से बचने के लिए तैयार तो जाना चाहिए? अगर इस ठंड ने आकर बीमारी फैला दी तो मौसम दुखदायी नहीं हो जाएगा?

जी हां!

इसी प्रकार आजादी किसी राष्ट्र का जीवन है। पराधीनता शव है और स्वाधीनता शिव। लेकिन शिव को यदि हम भंगेड़ी-गंजेड़ी और अशिववेष मानकर ही पूजने और बरतने लगें और अपने आसपास सींग मारने वाले सांडों तथा विष-दंश करने वाले सांपों को ही इकट्ठा कर लें, तो क्या ठीक रहेगा? प्रोपेगण्डा का डमरू बजाने और भीख से अपना खप्पर भरने से आजादी की पार्वती प्रसन्न नहीं हो सकती। स्वर्ग से उतरी हुई आजादी की गंगा को अगर हमारे रुद्र नेता अपनी ही जटाओं में रोक रखेंगे, तो अमृत फलदायिनी, पतित-पावनी गंगा देश की धरती को पवित्र कैसे करेगी? अगर शिव के गण, मतलब राजनीतिक दलों के कार्यकर्ता और नेताओं के समर्थक अपने विकट वेश और अघोर कर्मों से प्रजापति के यज्ञों का विध्वंस ही करते रहे तो सुख-शांति कैसे स्थापित होगी?

धन्य हैं।

जी हां, हम निःसंदेह आजादी पाकर धन्य हुए, लेकिन आज तक ऐसी स्थिति नहीं आ पाई कि इसके लिए जनता, नेताओं का धन्यवाद करती और नेता कठिन परिश्रम, सहनशीलता और अटल राष्ट्रभक्ति के लिए जनता को धन्यवाद देते।

जी हां!

और यही बात समाजवाद के कथित आगमन के संबंध में भी है। हमारे यहां पूंजीवाद से पहले ही समाजवाद आ रहा है। श्रमिकों में कर्तव्य-बोध की जागृति तो हुई नहीं उन्हें समाजवाद का बोध कराया जा रहा है। कुछ लोगों का कहना है कि यह हड़ताली समाजवाद है और कुछ लोगों का कहना है कि यह इम्पाला समाजवाद है। एयरकंडीशन्ड बंगलों में बादशाहों की तरह रहने वाले और इम्पाला गाड़ियों में मचकते हुए सैर करने वाले आज समाजवाद के संवाहक हैं। बताइए, जिन्होंने गरीबी देखी नहीं, वे उसके दर्द को समझेंगे?

जिनकी भैंसों और कुत्तों के इलाज राजकीय स्तर पर होते हों, वे अमीरी मिटाएंगे? भारत की कोटि-कोटि संवेदनशील जनता को जो अपढ़, अशिक्षित और अस्वस्थ मानकर उससे दूर रहते हों, वे वर्ग-भेद को, असामनता को मिटाने में सहायक हो सकते है?

छोड़ो जी, कहां की बातें ले बैठे?

हां जी, हमें भी इससे क्या? हमने भी ठंड से बचने के लिए स्वेटर निकालने को कह दिया है। आजादी का ताम्रपत्र पाने के लिए दिन-रात दौड़-धूप कर रहे हैं। और पिछले ढाई साल में समाजवाद पर कम-से-कम ढाई सौ लैक्चर झाड़ चुके हैं।

भारतपुत्र नौरंगीलाल

अमृतलाल नागर

नए वर्ष का पहला दिन था। हम लोग बीच में अंगीठी रखे मूंगफलियों की टुंगार पर सैद्धांतिक बहस गरमा रहे थे। जोर इस बात पर था कि मनुष्य को किसी-न-किसी सिद्धांत पर चलना चाहिए। सिद्धांतहीन आदमी बेपेंदी के लोटे के समान होता है। मैं इस बहस से बोर हो चुका था। प्रिंसिपल चौबे जी शुरू से ही चुप थे। तल्लीन भाव से मूंगफलियां टूंग रहे थे। प्रसंग बदलने के लिए मैंने उन्हें छेड़ा, "चौबे जी! जान पड़ता है, इन सिद्धांतवादियों ने आपकी बोलती बंद कर रखी है—वरना आप, और चिड़ी चुप?"

प्रिंसिपल साहब अपने हाथ की अंतिम मूंगफली छीलते हुए हंसे, दानों को मींजा, फूंक से पतले छिलके उड़ाए और एक दाना मुंह में डालकर अपने चौबेशाही लहजे में बोले, "जे हमाई बोलती का बंद करेंगे वकील साब। जे तो मोमफली रांड ने म्हों बंद रखा है मेरा—छुटती नहीं है काफिर म्हों की लगी हुई।" कहकर दूसरा दाना भी मुंह में डाल लिया और नमक की चुटकी भरने को हाथ बढ़ाया।

खरे साहब बोले, "आपकी बात कुछ जमी नहीं चौबे जी। अरे मूंगफलियां तो हम सभी खा रहे थे और सिद्धांत भी गरमा रहे थे।"

"माफ कीजिएगा खरे साब, आप और शर्मा जी तो नाजी फौजियों के समान मोमफलियों का बलात्_भोग कर रहे थे और ऊपर से सिद्धांतवाद की जै-जैकारें भी बोल रहे थे। जे भला कौन-सा सिद्धांत है? वकील साब, मैं एक ऐसे कट्टर सिद्धांतवादी की कथा सुनाता हूं कि जिसने सिद्धांत के डंके की चोट पर, अभी पिछली मई में पंडित मोतीलाल नेहरू और टैगोर की जन्म-शताब्दियों के साथ-साथ अपने ससुर की जन्म-शताब्दी भी एक जिले की जनता से मनवा ली थी।"

चौबे जी का ये कहना था कि हम सबके सब आश्चर्य और हंसी के समानावेश में सहसा बंध गए। हम सब हंसने की मुद्रा में मुंह बाए रहे और अचंभे की चकाचौंध से हमारी आंखें चुंधिया गईं। जनम के बतरसिया चौबे जी ने सब ओर से दृष्टि खींचकर दोनों हाथ और आंखें अंगीठी के कोयलों पर साध लीं, और कहना आरंभ किया, "बाबूगंज, जहां के प्रतापसिंह इंटर कालेज में मैं प्रिंसिपल हूं, जिले का सर्वश्रेष्ठ कस्बा है। लगभग पंद्रै-बीस

तो बड़े-बड़े लखपती ब्यौपारी आढ़तिये हैं वहां, और फिर छोटे-मोटे धनी लोग भी हैं। तहसील का दफ्तर भी वहीं है जहां कालेज है; मतलब ये कि खासा महत्वपूर्ण स्थान है। बड़े चौराहे के पास ही बस स्टेशन है। बड़ी चहल-पहल रहती है वहां। उसी चौराहे पर जयपुर-शैली की एक पत्थर की छतरी बनी है। उसके चारों ओर संगमर्मर की पटियों पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है—मन्द्र श्री भारतमाता। अंदर, बीचोंबीच पत्थर के एक ऊंचे चौकोर चबूतरे पर संगमर्मर की बनी मझोले साइज की भारतमाता, बाएं हाथ में तिरंगा ध्वज लिए दाहिने हाथ से आशीर्वाद दे रही हैं और उसी हाथ के नीचे माता के चरणों के पास घुटने मोड़कर हाथ जोड़े बैठे गांधी टोपीधारी एक गोल-मटोल क्लीनशेव्ड सेठनुमा व्यक्ति की मूर्ति भी आपको दिखलाई देगी। नीचे लिखा है—भारतमाता और भारतपुत्र। उसके नीचे एक लंबी इबारत लिखी है जो मुझे ठीक-ठीक याद न होने पर भी कुछ इस प्रकार है कि "यह मन्द्र बाबूगंज की जनता की इछा से बाबूगंज निवासी सुर्गबासी लाला फेंकूलाल जी, सुपुत्र लाला मैकूलाल जी के दमाद तथा गजपुरा निवासी लाला छेनामल जी, सुपुत्र लाला गेनामल जी के आत्मज, भारतपुत्र सेठ नौरंगीलाल जी, मालिक फर्म छेनामल फेंकूलाल ने गदर शताब्दी के उपलछ में निर्माण कराया तथा इसका ऊतघाटन माननीय मुख्य मंत्री जी के कर्कमलों के द्वारा मिती 31 मई सन 1957 ई. को समपन्न भया।"

"क्यों चौबे जी, ये भारतपुत्र क्या बला है?"

"कहीं ये भारतपुत्र टाइटिल भारत-रत्न वजन पर तो नहीं आया, चौबे जी?"

शर्मा, खरे दोनों ही उत्सुकतावश ताबड़तोड़ प्रश्न कर बैठे। चौबे जी ने मिठास भरे स्वर में कहा, "आप सत्य के निकट पहौंच गए शर्मा जी। पर अभी किस्से के क्रम से चलिए, तभी आप ये पहचान और मान सकेंगे कि हमारे मित्र भारतपुत्र नौरंगीलाल जी एकदम बेजोड़ सिद्धांतवादी हैं। ऐसा नमूना न आपको किसी जू में मिलेगा और न म्यूजियम में। बीसवीं सदी के साथ-ही-साथ आपका भी अवतार हुआ था। इस समय साठ-इकसठ के हैं। पक्का संवरिया रंग है, सिर धड़ पे यों रक्खा है जैसे बड़े पहाड़ी आलू पे छोटा गोलमटोल मटरिया आलू रखा हो। कान बड़े हैं, नाक पसरी हुई और उसकी फुनगी पे एक काला मोटा मस्सा है। टांगें उनके भारी-भरकम, गोलमटोल शरीर को देखते हुए अपेक्षाकृत पतली जनानी हैं पर उनमें जोर मर्दाना भरते हैं। दूर से उनकी चीखभरी पतली आवाज ऐसे सुनाई पड़ती है जैसे कोई हलाल किया जाता सूअर चीख रहा हो। पक्के, बिना सूंड़ के गणेश जी लगते हैं। दूसरी लड़ाई के दिनों में बड़े चौराहे के पास ही पक्की संगीन हवेली बनवाई और अंग्रेजों की नाक के दीया बाल के राष्ट्रीय झंडे के रंगों से उसे आयल पेंट कराया। नौरंगीलाल की तिरंगी कोठी दूर-दूर तक मशहूर है। चालीस-पचास लाख की हैसियत है। जानकार लोग देख-देखकर कहते हैं कि तकदीर हो तो ऐसी हो। मगर स्वयं भारतपुत्र अपनी सफलता का सारा श्रेय तकदीर को न देकर अपने ससुर नंबर एक श्री फेंकूलाल द्वारा दी

गई सिद्धांत-दीक्षा को देते हैं।"

"तो क्या आपकी बात का यह तात्पर्य निकाला जाए कि आपके भारतपुत्र जी के एक से अधिक ससुर हैं?" खरे ने पूछा।

"जी हां; भारतपुत्र जी दो घोड़ों की सवारी का सिद्धांत पालते हैं। यही उनके ससुर नंबर एक का दिया हुआ गुरुमंत्र है। बात ये है कि बचपन में ही नौरंगीलाल अनाथ हो गए थे। चाचाओं ने उनका हिस्सा हड़पने के लिए उन्हें मार-पीटकर घर से निकाल दिया। बड़े-बड़े कष्ट भोगे। फिर सन् इक्कीस के आंदोलन में बाबूगंज के प्रसिद्ध गुलाबजामुन-विक्रेता फेंकू हलवाई इनके बड़े प्रशंसक थे। जब जेल से लौटे तो उन्होंने ही शरण दी और कहा, 'नौरंगीलाल, तुम बनिये के बेटे हो। सदा दो घोड़ों की सवारी रखा करो। अगर एक न चला तो दूसरा चल ही निकलेगा। देस का काम करो और हमारे बही-खाते संभालो। अगर चमक गए तो नेता बनोगे, नहीं, हमारे दामाद तो बन ही जाओगे। मैं सरकारी अमलों से तुम्हारी पटरी बैठा दूंगा और तुम अपने बल्लमटेरों से कह दो कि ताड़ीखाने पे धरना न देवें और जो देवें तो अगवाड़े के फाटक पे। पिछवाड़े से माहकों को भीतर जाने दिया करें क्योंकि राधे कलार से मेरा साझा है।' नौरंगीलाल मान गए और तब से दो घोड़ों की सवारी वाला सिद्धांत ही साथ रहा है। अंग्रेजी राज में वे अफसरों के मित्र भी रहे और देशभक्तों के भी। कहा कि अगर इससे लड़का न हुआ तो उससे होगा। उन्होंने घी का व्यापार किया और बनस्पती का भी। अगर एक शक्कर मिल से सौदा तैयार किया तो दूसरी देसी खांड बनाने वालों से भी करार कर आए। कांग्रेसी सरकार का साथ भी देते हैं और जनता की मदद भी करते हैं। सदाबर्त बांटते हैं। जिले-भर में जहां-जहां उनका तगादा फैला है, उन्होंने कुएं बनवाए हैं; हमारे कालेज का साइंस-कक्ष बनवाया, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूल की नई बिल्डिंग बनवाई। फर्म के नाम में अपने बाप का नाम भी रखा और उपकारी ससुर का भी। हनुमान जी को चोला चढ़ाते हैं और सैयद के आले में रेवड़ी फूल भी चढ़ाते हैं। मतलब यह कि, चाहे हनुमान जी उनकी सुख-समृद्धि बनाए रखें, चाहें सैयद जी, या दोनों मिलके अपना-अपना जोर दिखलाएं—बहरहाल उनकी सुख-समृद्धि बरकरार रहे, यही सिद्धांत है।

पहली बार जब हमारी राष्ट्रीय सरकार ने भारतरत्न, पद्मभूषण धनचक्र आदि गौरव-पदक बांटने शुरू किए तो हमारे नौरंगीलाल जी के एक मुसाहब साप्ताहिक 'कोलाहल' के संपादक मांगीलाल 'पुरुषार्थी' ने खुशामद में उन्हें भड़ी पर चढ़ा दिया। कहा, 'सेठजी, आप इतने बड़े देशभक्त हैं, मुख्यमंत्री जी के साथ जेल गए हैं, आपको भारतरत्न का खिताब मिलना ही चाहिए।' नौरंगीलाल की समझ में यह बात खट से आ गई। मगर अभी एक ही घोड़ा सामने आया था। उन्होंने कहा, 'ठीक है मगर एक और सुझाव भी आना चाहिए। अगर मुख्यमंत्री ने भारतरत्न न बनाया तो और क्या बनाने को कहूं?'

उनके दूसरे मुसाहब अध्यापक तोताराम 'बसंत' ने चढ़ती सलाह दी। कहा, 'मेरी राय में पहले आप मंत्रीगिरी मांगे। अगर मंत्री न बनाएं तो फिर भारतरत्न ही बन जाइएगा।' नौरंगीलाल जी उसी दिन मोटर पर मुख्यमंत्री से मिलने गए और कहा, 'आपके साथ तीन-तीन बार जेल गया हूं, मुझे मंत्री बना दीजिए।' मुख्यमंत्री जी घाघ थे। बोले, 'नौरंगीलाल, तुम्हें मंत्री क्या मैं राज्यपाल बना देता, मगर तुम पढ़े-लिखे नहीं हो।' नौरंगीलाल बोले कि अच्छा, तो फिर भारतरतन ही बना दीजिए। मुख्यमंत्री ने कहा, 'भई वो तो महापुरुषों को ही बनाया जाता है।' नौरंगीलाल तप गए। कहा, 'मैंने हजारों रुपया चंदा दिया है आपको। उसी के जोर पर मुझे महापुर्स बना दीजिए।' मुख्यमंत्री बोले, 'रुपया तो तुमने जनता से कमाया है। जनता का रुपया जनता की सरकार को दे दिया। उसमें तुम्हारा महापुरुषत्व कहां सिद्ध होता है?' इस पर नौरंगीलाल का खून खौल उठा, कुर्सी से उठते हुए बोले, 'महाराज जी, मैं तो सिद्धांतवादी आदमी हूं। जब मैंने महापुरुष बनने की ठान ली है तो अवस्स-अवस्स बनूंगा। सरकार यों पदवी न देगी तो जनता के जोर से लूंगा आपके हाथ से लूंगा' ये कहके घर आए और अपने मुसाहबों को बुलाके पूछा कि अब क्या करना चाहिए। बसंत और पुरुषार्थी जब कोई सुझाव न दे सके तो वे मेरे पास आए। सब हाल सुनाकर बोले, 'चौबे जी, अब तो इज्जत का सवाल है, मुझे महापुर्स बनना ही पड़ेगा।' मैंने कहा, 'इसमें क्या कठिनाई है? अगर उन्होंने भारतरत्न नहीं बनाया तो आप भारतपुत्र बन जाइए। रत्न तो खजाने में बंद पड़े रहते हैं और पुत्र सदा माता के पास रहता है।' सुनते ही नौरंगीलाल उछल पड़े, कहा कि 'चौबे जी आपसे कभी उरिन नहीं हो सकता।' बस फिर तो जोर बांध दिए नौरंगीलाल जी ने! कलकत्ते से डिजाइन बनवाया, इटली से संगमर्मर की मूर्ति बनवाई, जयपुर से कारीगर आए, चौराहे पर पत्थर की छतरी बनी। इतने में गदर-शताब्दी समारोह मनाने के दिन आए। आप फिर मुख्यमंत्री के पास पहुंचे और बोले, 'गदर की याद में मैंने भारतमाता का मन्द्र बनवाया है; उसका ऊतघाटन आपको करना ही होगा।' यह काम आसान था, इसलिए मुख्यमंत्री राजी हो गए। लेकिन जब उत्सव के दिन आकर उन्होंने मूर्ति का पर्दा हटाया तो भारतमाता के साथ-साथ भारतपुत्र भी दिखाई दिए। बोले, 'नौरंगीलाल, तुमने धोखा दिया। अपने पैसे के जोर पर पदवी धारण की और मुझसे उद्घाटन कराया, ये ठीक बात नहीं।' नौरंगी बोले, 'महराज जी, मुझे तो महापुर्स बनना था। जब आपने मुझे न बनाया और ये सिच्छा दी कि पैसा जन्ता का है तो मैं जन्ता के जोर पर भारतपुत्र बन गया। इसमें धोखे की बात ही कहां उठती है? ये तो सिद्धांत की बात है'।"

हंसते-हंसते हमारा हाल बेहाल हो गया, चौबे जी!

"यही नहीं वकील साहब, पिछले वर्ष सात मई को इसी दो घोड़े के सिद्धांत पर उन्होंने अपने सिद्धांत गुरु यानी ससुर नंबर एक श्री फेंकूलाल जी की जन्म-शताब्दी भी धूमधाम से मनवा डाली। हुआ ये कि एक दिन पुराने कागज-पत्रों में अचानक आठ मई, सन् 1861 ई.

का लिखा तत्कालीन अंग्रेज कलक्टर फाक्स साहब का एक सार्टिफिकेट उनके हाथ लग गया जो कि फेंकूलाल के पिता मैकूलाल को उनके गुलाबजामुनों की प्रशंसा में दिया था। फेंकूलाल जी जब जीवित थे तो कहा करते थे कि जिस दिन बप्पा को साहब का साटीपिकट मिला था उसी दिन हमारा जनम भया था। तब तक भारतपुत्र के कानों में यह समाचाार पड़ चुका था कि आठ मई को मोतीलाल नेहरू और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जन्म-शताब्दी मनाई जाएगी। भारतपुत्र के मन में समाई कि यदि और कहीं नहीं तो कम से कम बाबूगंज में फेंकूलाल जन्म-शताब्दी अवश्य मनाई जानी चाहिए। कुछ भी हो, आखिर वे भारतपुत्र के ससुर थे; उनके मरने के बाद उन्हीं का मकान चार हजार में बेचकर ये हैसियत पाई। यह सब सोचकर भारतपुत्र ने अपने दोनों बौद्धिकपरामर्शदाताओं को बुलवाया। 'कोलाहल' के सम्पादक श्री मांगीलाल 'पुरुषार्थी' और अध्यापक तोताराम 'बसंत' ने भारतपुत्र का प्रस्ताव सुनकर मूड़ी हिलाई, कहा 'असंभव है'। जब दोनों ही घोड़े अड़ गए तो भारतपुत्र गरमाए। कहा, 'अरे, कुछ सिद्धांत का विचार करो पुर्सार्थी जी! अगर आठ मई को पैदा होने वाले दो आदमियों को महापुर्स माना जाता है तो तीसरे को क्यों नहीं माना जाएगा?'

बसंत जी बोले, 'हम तो आपकी खातिर मान लेंगे भारतपुत्र जी, पर जनता को प्रमाण चाहिए। पंडित मोतीलाल जी इत्ते बड़े कानूनदां, बड़े-बड़े अंग्रेज उन्हें मानते थे। पेरिस से कपड़े धुलवाते थे। बत्तीस घोड़ों की बग्घी पे सवारी निकली थी उनकी। जवाहरलाल नेहरू ऐसा महापुरुष लड़का भया. . .'

'अच्छा तो यही सब बातें मैं अपने कक्का में साबित कर दिखाऊं, तब तो उन्हें महापुर्स मानोगे?' भारतपुत्र बोले।

'हां, मान लेंगे।' बसंत जी ने जोरदार सिर हिलाया।

'तो सुनो। हमारे कक्का और राधे कलार में साझेदारी को लैके मुकदमेबाजी भई। हाई कोरट तक मामला गया। बनाफरराय ऐडूकेट और हासिमअली वकील कहैं कि 'फैंकूलाल, तुम्हारा केस कमजोर है, लड़ने के लिए पोइंट नहीं मिलता।' कक्का बोले, 'किससे पोइंट लीजिएगा सरकार, मुझे सारी दफाएं बरहिब्ज याद हैं।' इसके बाद कक्का हमारे कानून बतावें और वकील लड़ें। हाई कोरट में आयके डिगरी कराय ली। बनाफरराय बोले कि 'फेंकूलाल, मान गए, तुम्हें। जो पढ़े-लिखे होते तो बड़े भारी ऐडूकेट बनते।' इस तरह एक तर्क सटीक बैठाकर भारतपुत्र ने विजेता की भांति अगला मोर्चा साधा, बोले, 'अब रही अंग्रेजों के मानने की बात। तो उन्होंने मोतीलाल जी की वकालत का लोहा माना और फेंकूलाल जी के गुलाबजामुनों का भी। उनके कपड़े अगर यहां नहीं धुले तो इनके कपड़े कहीं नहीं धुले। उनके बेटे भारतरतन भए तो इनके दामाद भारतपुत्र भए। अब बोलो, दोनों में बरब्बर की छूटी कि नहीं। तोताराम, मैं कच्ची गोटी नहीं खेलता। कक्का जरूर महापुर्स थे। पुर्सार्थी जी, अब आओ और अपने रबीनाथ टागोर से भी हमारे कक्का का

मुकाबला कर लेओ।'

पुरुषार्थीजी व्यावहारिक पुरुष थे। अपने पत्र के संरक्षक से भिड़ने को तैयार न हुए। कहा, 'खैर, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ और फेंकूलाल जी में तो स्पष्ट समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों ही रस के व्यापारी। एक की कविता में रस, दूसरे के गुलाबजामुनों में। एक सारी दुनिया के गुरु, दूसरे आपके . . .'

'बस, यही तो गड़बड़ है। एक तरफ पूरी दुनिया, दूसरी तरफ अकेले भारतपुत्र। गुरुदेव का पलड़ा भारी बैठता है।' तोता बसंत बोले। भारतपुत्र तप गए, बोले, 'पूरे घोंघाबसंत हो तोताराम! अगर पलड़ा भारी है तो डंडी क्यों नहीं मारते? कम तौलो उन्हें! बहरहाल ये बात अब हर तरह से तै समझो पुर्सार्थी जी कि जैसे गदर-सताब्दी में तुम सबने मुझे महापुर्स बनाया था, वैसे ही जनम-सताब्दी में हमारे पुज्ज कक्का को भी महापुर्स बनाना होयगा। जैसा उन दोनों का कारक्रम बने वैसा कक्का का भी बनाओ। जो खर्च लगेगा हम देंगे।'

तोताराम बोले, 'सरकार ने आदेश दिया है कि दो महापुरुषों की जन्म-तिथि एक दिन मनाने से घपला होगा, इसलिए एक की छः को और दूसरे की आठ मई को मनाई जाए। दोनों दिन एक-एक कवि-सम्मेलन और मुशायरा हो तथा बच्चों को मिठाई बांटी जाए।'

भारतपुत्र बोले, 'ठीक है, हमारे सिद्धांत से यह आदेस मेल खाता है। बरब्बर दो घोड़ों की सवारी है—छै को इनकी, आठ को उनकी, और बीच में सात खाली है तो हमारे कक्का की। उनका मुसहरा, इनका कबी समेलन और हमारे कक्का के दिन नौटंकी होएगी। उस दिन हजारों की भीड़ आवेगी। तुम्हारे मुसहरे कबी समेलन की नाक कट जाएगी। बच्चों को गुलाबजामुन खिलाऊंगा और नौटंकी देखने वालों को सरबत और बीड़ियां पिलाऊंगा। फिर तो पबलिक हमारे कक्का की ही जैजैकार बोलेगी।' और जनाब, भारतपुत्र ने यही कर भी दिखाया। जिले में फेंकूलाल जन्म-शताब्दी समारोह की सबसे अधिक धूम रही। अब बोलिए शर्मा जी, भारतपुत्र का सिद्धांतवाद सच्चा कि आप लोगों का?"

खरगोश के सींग

प्रभाकर माचवे

बड़े-बूढ़े कह गए हैं—'आदमी में पशु से अधिक एक चीज है ज्ञान। नहीं तो वह बिना सींग-पूंछ का प्राणी है।'

ज्ञान तो अक्ल से प्राप्त होता है। पर हमारे ज्ञानार्थी जो कालेज में पढ़ने वाले या वालियां हैं, उनकी हालत दूसरी है। उनको उम्र आने पर पंख फूटते हैं सा सींग उगते हैं। और उनके जीवन का उसूल है—

इश्क नाजुक-मिजाज है बेहद,
अक्ल का बोझ सह नहीं सकता।

अभी हाल में कटक गया था। वहां सुनता हूं, लोग जाते हैं तो अक्सर भटक जाते हैं। पर मैं नहीं भटक सका। वहीं सींग का बहुत बढ़िया काम होता है। वह देखने गया था। सींग की छड़ी, सारस, सांप, फूलदान, कलम, कंघिया, खिलौने और एक खरगोश भी देखा। सींग का खरगोश, जी हां, खरगोश के सींग . . .?

अक्सर जो चीज असंभव, अशक्य, कभी न पाई जाने वाली हो उसे खरगोश के सींग या 'आकाश-कुसुम' या रेती से तेल, या ऐसा ही कुछ कहते हैं। संस्कृत का श्लोक है कि एक बार रेती रगड़ कर तेल भी मिल जाए खरगोश के सींग उग आवें, परंतु मूर्ख का हृदय क्षणभर भी नहीं बदलता।

मैं तो शिक्षक हूं और 'करत-करत अभ्यास ते जड़मति होत सुजान' (यानी सुजान भी जड़मति हो जाता है) मानता हूं। हर साल कई मूर्खों को (अगर डिग्री-याफ्ता नौजवानों को ही अकल वाले कहा जाए तो) बुद्धिमान बनाया करता हूं। और इसीलिए मुझे दृढ़ विश्वास है कि खरगोश के एक-न-एक दिन सींग जरूर उगेंगे। इसी को तो 'युटोपिया' की आशा कहते हैं। और यह आशा न होती तो विधाता की सृष्टि को हम ज्यों-का-त्यों मंजूर कर लेते। मगर नहीं, हम भरसक कोशिश करते हैं कि इस सृष्टि को बदलेंगे। नया बनाएंगे, बेहतर बनाएंगे।

इस खरगोश के सिर पर सींग उगने की समस्या से मैं दूसरे एक विचार पर पहुंचा कि आखिर सींग का उपयोग क्या है? क्यों प्रकृति ने यह 'शृंगापत्ति' (तर्कशास्त्र में between

two horns की उलझन) नाहक मोल ली। गैंडे के ललाट में से एक नुकीला सींग आगे रहता है और 'यूनीकार्न' आदि राक्षसों का भी वर्णन सींगयुक्त है। सींग लड़ने का खास हथियार रहा होगा उन जानवरों का जो कि सिर से काम लेना चाहते हैं, परंतु दिमाग जिनका विकसित नहीं था। यों यही काम हाथी अपने दांत से और 'हिप्पो' अपनी थूथड़ी से और मगर अपनी कंटीली पूंछ से लेता होगा। ज्यों-ज्यों जानवर सभ्य होने लगा, उसने सींग का परित्याग कर दिया। जो जंगली हिरन, रेंडियर और बारहसींगे (उनके सिर पर एक दर्जन ही सींगों की व्यवस्था विधाता ने किस गणित के हिसाब से की पता नहीं) थे वे बाद में बिना सींग के पालतू मृग-शावक बन गए। और जहां पहाड़ी 'याक' के सींग होते हैं, मैदान पर खच्चर-घोड़े फिर बिना सींग के लद्दू जानवर हैं। और यहां अपने मित्र श्री गर्दभ जी का तो स्मरण कर ही लेना चाहिए, क्योंकि लड़ना उसके स्वभाव में है ही नहीं। बहुत खीझ उठे तो पिछली दो टांगों से गर्द उड़ा दी—जैसे मध्यमवर्ग के साधारण लोग घर बैठे निंदा निरर्थक आलोचना, टीका, टिप्पणी scandal किया करते हैं।

तो सींग पहले उच्च रहा होगा, बाद में जंगल में छिपे रहने के लिए एक खोल (कमोफ्लाज) और बाद में धीरे-धीरे वह नदारद होने लगा। परंतु अभी भी आज गऊ माता, महिष (भैंस) और उनके पतिराजों में यह सींग पहनने का रिवाज मौजूद है, यद्यपि नार्वे, स्वीडन की ओर बिना सींग की गाएं होती हैं। ज्यों-ज्यों विकास के क्रम में प्राणी सिर के अंदर के हिस्से से ज्यादा काम लेने लगा, उसने बाहर के ये 'डेकोरेशन्स' कम कर डाले। मगर कह मैं यह रहा था कि भले आदमियों को आज के अणु-युग में हमेशा असंभव-से -असंभव बातों के लिए तैयार रहना चाहिए। और जितनी विचित्र और साधारण कल्पना आदमी करे उतना बड़ा 'कल्पक' वह माना जाता है, इसलिए अगर खरगोश सुंदर छोटे-छोटे बकरी जैसे दो सींग पहनकर आपके सामने उझलने भी लगे, तो आप को चौंकना नहीं चाहिए। क्योंकि कभी बेचारे खरगोश के भी तो दिल में यह इच्छा हो सकती है कि देखें सींग उगाकर या पहनकर कैसे लगते हैं? कुछ आदमी इसी शौक से अपने सिर पर तिकोनी टेढ़ी टोपी या ऐसी सींगदार पगड़ी पहनते हैं। उदयशंकर के नाच में नन्दी जो बनता है वह तो दो बड़े सींग सिर से बांध ही लेता है। नन्दी और कुछ आदमियों में बहुत बातों में साम्य है। क्योंकि जब तक उसे छुओ नहीं, शिवजी का दर्शन दुर्लभ है, वैसे ही जब तक चपरासी साहब या प्राईवेट सेक्रेटरी साहब को पुजापा नहीं चढ़े, बड़े साहब के दर्शन नामुमकिन होते हैं। इसलिए संस्कृत में ऐसे शृंगियों (सींग वालों) से सावधान रहने का आदेश है।

सींग का एक उपयोग आदमी ने 'बिगुल' की तरह से भी किया था। रण के वर्णनों में एक वाद्य यह रणशृंग भी है। कई यूनानी देवी-देवता तो इसे साथ लेकर रहते थे। आगे चलकर बिगुल इसी से बना। दूसरा सींग का उपयोग आदमी ने उसे पोला कर, या वह

खोखला ही हो तो वैसे ही साफ कर, चीजें रखने के लिए, एक 'थर्मस' की तरह किया लोग घर में दीवानखाने सींगों से सजाकर रखते हैं। मेरी समझ में आज तक यह शौक नहीं आया है—कोई शिकारी हो और खुद मारे हुए जानवरों के सींग रखे तो कुछ शान की बात भी है। नहीं तो अपने मकान में आगे-पीछे कद आदम आईने के पास दो पनियाली, मुर्दा आंखों वाले हिरन के सींग टंगे हैं, और उनके सींगों पर हैट और पैंट-कोट लटकाए जा रहे हैं।

अभी मैंने परसों एक बात देखी है और मेरा विश्वास बढ़ गया है कि जरूर खरगोश के सींग उगेंगे। नेपोलियन की तरह हम भी अपने कोश से 'नामुमकिन' शब्द निकाल देंगे। और वह बात यह है कि मैंने एक घूस या रिश्वत न लेने वाला कस्टम का सिपाही देखा है, फैशन न करने वाली एक कालेज की लड़की देखी है, अपने सरकार की निंदा न करने वाला एक समाजवादी देखा है, और प्रांतीयता से जो नहीं भरा हुआ है, ऐसा पंजाबी, बंगाली, मद्रासी या महाराष्ट्रीय आदमी देखा है। अभी मुझे भरोसा है कि चमत्कारों का युग नहीं बीता है। खरगोश के सींग उग सकते हैं और इस दुनिया में जीने के लायक अभी बहुत उम्मीद का सामान बाकी है। जिस दिन खरगोश के सींग उगेंगे वह कछुए से होड़ करने का अभिमान छोड़ देगा। और वह भी 'धीमे मगर निश्चित' गति से अपने ध्येय तक पहुंचेगा। जवान लोग खरगोश की तरह चंचल, सलज्ज और पलायन-प्रिय होते हैं। कभी-कभी वे 'मई के खरगोशों', की तरह पागल होते हैं। परंतु वे दायित्व को समझने लग जाएं—देश के और घर के और बाहर के—तो उनकी इच्छाओं के फर-फर उड़ते हुए कागजों पर पेपर-वेट रखा जा सके और बहती दुर्द्धर्ष नदी को बांध नहीं घाट बांधे जा सकें।

रोमन लिपि की खूबी है कि सिंह और सींग लिखने में कोई अंतर वह नहीं करती। और राजपूती शान वाले सिंहों का ध्यान आते ही (जिनके लेहंड़े नहीं होते) मुझे एक चुटकुला याद आया जो एक परीक्षार्थी का 'हाउलर' है।

प्रश्न था—बाघसिंह का चरित्र-चित्रण कीजिए।

'रक्षाबंधन' नाटक में बाघसिंह एक प्रमुख पात्र है। बाघसिंह एक वीर राजपूत है। उनकी वीरता प्रशंसनीय है।

किंतु परीक्षार्थी ने जिन शब्दों में बाघसिंह जी का चरित्र-चित्रण किया है वह कम प्रशंसनीय नहीं है।

परीक्षार्थी ने लिखा है—"बाघ और सिंह दोनों जंगली जानवर हैं। दोनों जंगल में रहते हैं और शिकार किया करते हैं। संसार में अफ्रीका के बाघ और सिंह बहुत प्रसिद्ध हैं।"

लालफीता

अमृतराय

पता नहीं क्यों लोगों को लाल फीते से ऐसी आग लगती है। मुझे तो लाल फीता अच्छा लगता है। उसका रंग भी और ढंग भी।

आपने शायद कभी सोचकर नहीं देखा, लाल फीता बड़े काम की चीज है। उसके बिना देश एक कदम नहीं चल सकता। उसी तरह जैसे आपके जूते में फीता न हो तो आप एक कदम नहीं चल सकते। आपके पैर कहीं जा रहे होंगे और आपका जूता कहीं जा रहा होगा। पैर को जूते से या जूते को पैर से कसने के लिए फीता बहुत जरूरी है, वर्ना यही होगा कि आप लंगड़े आदमी की तरह पैर घसीट-घसीटकर लबड़-झबड़ चलेंगे, जितनी दूर चल सकेंगे, और फिर थककर बैठ जाएंगे। लाल फीते के बगैर देश भी उसी तरह लबड़-झबड़ चलने लगता है। यह कोई चाल नहीं और न इस तरह कोई देश ज्यादा देर या ज्यादा दूर तक चल ही सकता है। और हमें तो अभी मीलों जाना है, जैसा कि पंडित नेहरू वसीयत कर गए हैं।

फीता, वह किसी भी रंग का हो, व्यवस्था का ही दूसरा नाम है। फीते के बिना कहीं व्यवस्था नहीं। मेज के कागज-पत्थर उड़-उड़कर सब तरफ फैलें नहीं, इसके लिए आप उन्हें समेटकर फीते से बांध देते हैं। लड़कियों के (और आजकल तो बहुत से लड़कों के भी) बाल आपने फीते से बंधे देखे होंगे, यह भी इसीलिए कि हवा में बिखरें नहीं। यहां तक कि गेहूं-चावल की बोरियों और हल्दी-नमक की थैलियों का मुंह भी फीतों से कस दिया जाता है, ताकि जो कुछ जहां रखा है सलामती से वहीं पड़ा रहे और अपने को कोई नुकसान न पहुंचे!

मतलब यह कि फीते बगैर कहीं गुजारा नहीं। और इस बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि वह आदमी बहुत ही समझदार, बहुत ही दूरंदेश था जिसने उस फीते का रंग लाल तजबीज किया। किसी और रंग में यह बात नहीं पैदा हो सकती थी। काला तो ऐसा मनहूस रंग है कि उसे देखते ही लोगों का ख़ून सूख जाता। पीला कोई रंग नहीं क्योंकि वह साल-छः महीने में ही उड़ जाता, जब कि छोटे-से-छोटे मामले की भी फाइल बरसों चलती है तब किसी किनारे पहुंचती हैं, जो अक्सर किनारा नहीं एक अलग तरह का मझधार होता

है। कत्थई रंग इसलिए नामुनासिब था कि वह जमे हुए खून का रंग नहीं। वह काई का रंग है और किसी को भी उस फाइल में बंद अपनी तकदीर पर काई जमते देखकर अच्छा न लगता।

इस लाल रंग का क्या कहना! यह तो रंगों का बादशाह है। इसमें किसी तरह का कोई ऐब नहीं। यह खून का रंग है, और पता नहीं कैसे-कैसे जरूरतमंदों का खून उन फाइलों के अंदर बंद रहता है। यह धड़कते हुए दिलों का रंग है, और भगवान जानता है कि उनके पन्नों में बंद अपनी किस्मत का भेद जानने के लिए लोगों के दिल किस तरह धड़कते हैं। यह जिंदगी का रंग है, और जो एक बार उन लाल फीतों में उलझ गया उसे फिर किसी और से यह समझने की जरूरत नहीं कि जिंदगी किस चीज का नाम है। यह दहकते हुए शोलों का रंग है—जो फाइलों में बंद है, उन्हीं लाल फीतों की निगरानी में! यह टेसू का रंग है जनाब—जो सब वहां मसले पड़े हैं, उन तमाम उम्मीदों के साथ जो सब वहां सोई पड़ी हैं। और अक्सर उसी तरह सोते-सोते दम तोड़ देती हैं; मगर लाल फीता वह चीज है कि तब भी उन्हें मरने नहीं देता।

यही असल जादू है इस लाल फीते का—मरीज मरता भी नहीं कि छुट्टी हो और जीता भी नहीं कि उठकर खड़ा हो और कुछ हाथ-पैर फटकारे। वह तो त्रिशंकु है जो अधर में लटक रहा है, उसी लाल फीते से . . .

जो अपने ढंग की एक बहुत मजबूत रंग-बिरंगी नाइलन की रस्सी है, राजसत्ताओं को अपनी तोप-बंदूक से ज्यादा भरोसा लाल फीते की इस रेशमी फांसी का होता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि लाल फीता समाज को स्थिरता और स्थायित्व देता है; लाल फीता न हो तो हर घड़ी उथल-पुथल ही मची रहे और आदमी का जीना हराम हो जाए। वर्ना अभी देखिए सब कुछ कितने आराम से चल रहा है, हम अपनी अमीरी में खुश, आप अपनी गरीबी में खुश। कम-से-कम, गदर तो नहीं मचा है। सब इसी लाल फीते की मेहरबानी है। और सच तो यह है कि एक बार गदर मच भी जाए तो लाल फीते को उसका डर नहीं : वह उस गदर को भी लाल फीते से बांधकर रख देगा! बस एक जांच कमीशन बैठाने भर की तो बात है। सेवा-निवृत्त न्यायाधीशों की देश में कमी नहीं और एक कमीशन के लिए एक आदमी से ज्यादा का काम नहीं। किसी को भी बुलाकर सहेज दिया। और जांच कमीशन बैठ गया, गवाही-साखी होने लगी, आज यहां चार महीने बाद, वहां चौदह महीने बाद कहीं और, खर्रे-पर-खर्रे लिखे जाने लगे, रिपोर्टें तैयार हो-होकर लाल फीतों में बंधने लगीं और फाइलों का पेट फूल चला। उधर समय अपनी गति से चलता रहा और जब तक कमीशन का काम सिमटने के करीब आया, पता चला कि पांच साल बीत चुका है। तब तक गदर टांय-टांय फिस। रंगमंच से अलग नेपथ्य में बैठे-बैठे बेचारा कब तक दम न तोड़े। धन्य हो। सांप भी मर गया, लाठी भी नहीं टूटी।

जय जय जय हे लालफीतेश्वर
भारत भाग्य विधाता

पंजाब, सिंध, गुजरात,मराठा, द्राविड़, उत्कल, बंग—भारत देश में सब तरफ आज तुम्हारा ही बोलबाला है। बड़े-से-बड़े लोग तुम्हारे आगे घुटने टेकते हैं। तुम्हारी मर्जी के बिना यहां पत्ता भी नहीं ड़ोलता। तुम अमुक दफ्तर में क्लर्क हो, अपनी फाइलों के सर्वशक्तिमान राजा, और तुम्हारा राजचिह्न लाल फीता है जिसकी गुंजलक में तुमने सारी सृष्टि को बांध रखा है। तुम्हें प्रसन्न किए बिना अर्थात प्रसाद चढ़ाए बिना एक कागज इधर से उधर नहीं हो सकता। बहुत बार लोगों को यह भ्रम हो जाता है कि तुमको किनारे सरकाकर किसी आला अफसर या सीधे मिनिस्टर साहब के जरिए भी उनका काम हो सकता है, मगर दस-ही-पांच चक्करों में उनका भ्रम दूर हो जाता है और यह बात अच्छी तरह उनके दिमाग में बैठ जाती है कि अपनी उस तिलिस्मी दुनिया के तुम्हीं राजा हो, तुम्हारे खुल जा सुमसुम कहे बगैर उन लाल फीतों में बंद फाइलों के दरवाजे खुल ही नहीं सकते . . .

बिल्कुल ठीक बात है, लाल फीते की लगाम न हो तो घोड़े कुदक्का मारने लगें! सबको अपनी सम गति से ले चलने वाला सूत्र यही लाल फीता है। यहां आकर सबकी चौकड़ी भूल जाती है, क्योंकि लाल फीता ठहराव का ही दूसरा नाम है। क्या रखा है बेकार की उछल-कूद में। दुनिया कोई आज की नहीं है। वह अनादि है, अनंत है। सदा से ऐसी हो रही है और सदा ऐसी ही रहेगी। कुछ लोग हमेशा असंतुष्ट रहेंगे। यही उनका काम है। उनसे घबराने की कोई जरूरत नहीं। ऐसे दुनिया-सुधारक जाने कितने आए और अपनी खिचड़ी पकाकर चले गए मगर दुनिया अपनी लीक पर चलती रही, जो उसका खास अपना ढंग है। उसी लीक का नाम लाल फीता है।

आदमी तो आदमी, भगवान का काम भी लाल फीते के बगैर नहीं चलता, जभी तो उसने वर्णाश्रम धर्म बनाया, किसी को छूत और किसी को अछूत बनाया, जात-पांत की लीकें बनाईं, ऊंच-नीच की व्यवस्था की। इतनी बड़ी सृष्टि को चलाना कोई खेल है? चलाना मतलब ढंग से चलाना—इस तरह कि हर चीज अपने ठीक ठिकाने पर रहे, कहीं कोई गड़बड़ी न हो, सबकी चाल बंधी हो, सब अपनी-अपनी कील पर और अपने-अपने घेरे में घूमते हों! जरूरत भी है, वर्ना एक-दूसरे से टकरा न जाएं इतने सब जो ये असंख्य ग्रह-उपग्रह हैं। जभी तो ज्ञानी लोग कहते हैं कि समस्त सृष्टि एकता की डोर में बंधी हुई है—और मेरा विश्वास है कि वह डोर और कुछ नहीं अपना यही लाल फीता है।

मेरा ख्याल है कि आपने जरूर कुछ विदेशी सम्राटों की तसवीरें देखी होंगी। उनके हाथ में राजदंड के साथ एक गोला भी रहता है। वह और कुछ नहीं, इसी लाल फीते का गोला है। हमने सुविधा की दृष्टि से दोनों को मिलाकर एक कर दिया है—उसी का नाम गदा है जो हमारे इहलोक और परलोक के बड़े-से-बड़े राजा हाथ में लेकर बैठते हैं।

इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर

हरिशंकर परसाई

वैज्ञानिक कहते हैं, चांद पर जीवन नहीं है।

पर सीनियर पुलिस इंस्पेक्टर मातादीन (डिपार्टमेंट में एम.डी. साब) कहते हैं—वैज्ञानिक झूठ बोलते हैं, वहां हमारे जैसे ही मनुष्यों की आबादी है।

विज्ञान ने हमेशा इंस्पेक्टर मातादीन से मात खाई है। फिंगर प्रिंट विशेषज्ञ कहता रहता है—छुरे पर पाए गए निशान मुलजिम की अंगुलियों के नहीं हैं। पर मातादीन उसे सजा दिला ही देते हैं।

मातादीन कहते हैं, "ये वैज्ञानिक केस का पूरा इनवेस्टिगेशन नहीं करते। उन्होंने चांद का उजला हिस्सा देखा और कह दिया, वहां जीवन नहीं है। मैं चांद का अंधेरा हिस्सा देखकर आया हूं। वहां मनुष्य जाति है।"

यह बात सही है क्योंकि अंधेरे-पक्ष के मातादीन माहिर माने जाते हैं।

पूछा जाएगा इंस्पेक्टर मातादीन चांद पर क्यों गए थे? टूरिस्ट की हैसियत से या किसी फरार अपराधी को पकड़ने? नहीं, वे भारत की तरफ से सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अंतर्गत गए थे। चांद सरकार ने भारत सरकार को लिखा था —"यों हमारी सभ्यता बहुत आगे बढ़ी है। पर हमारी पुलिस में पर्याप्त क्षमता नहीं है। वह अपराधी का पता लगाने और उसे सजा दिलाने में अक्सर सफल नहीं होती। सुना है, आपके यहां रामराज है। मेहरबानी करके किसी पुलिस अफसर को भेजें जो हमारी पुलिस को शिक्षित कर दे।"

गृहमंत्री ने सचिव से कहा, "किसी आई.जी. को भेज दो।"

सचिव ने कहा, "नहीं सर, आई.जी. नहीं भेजा जा सकता। प्रोटोकाल का सवाल है। चांद हमारा एक क्षुद्र उपग्रह है। आई.जी. के रैंक के आदमी को नहीं भेजेंगे। किसी सीनियर इंस्पेक्टर को भेज देता हूं।"

तय किया गया कि हजारों मामलों के इनवेस्टिगेटिंग आफीसर सीनियर इंस्पेक्टर मातादीन को भेज दिया जाए।

चांद की सरकार को लिख दिया गया कि आप मातादीन को लेने के लिए पृथ्वी-यान भेज दीजिए।

पुलिस-मंत्री ने मातादीन को बुलाकर कहा, "तुम भारतीय पुलिस की उज्ज्वल परंपरा के दूत की हैसियत से जा रहे हो। ऐसा काम करना कि सारे अंतरिक्ष में डिपार्टमेंट की ऐसी जय-जयकार हो कि पी.एम. (प्रधानमंत्री) को भी सुनाई पड़ जाए।"

मातादीन की यात्रा का दिन आ गया। एक यान अंतरिक्ष अड्डे पर उतरा। मातादीन सबसे विदा लेकर यान की तरफ बढ़े। वे धीरे-धीरे कहते जा रहे थे, "प्रविसि नगर कीजै सब काजा, हृदय राखि कौसलपुर राजा।"

यान के पास पहुंचकर मातादीन ने मुंशी अब्दुल गफूर को पुकारा, "मुंशी!"

गफूर ने एड़ी मिलाकर सेल्यूट फटकारा। बोला, "जी, पेक्टसा!"

"एफ.आई.आर. रख दी है?"

"जी, पेक्टसा!"

"और रोजानामचे का नमूना?"

"जी, पेक्टसा!"

वे यान में बैठने लगे। हवलदार बलभद्दर को बुलाकर कहा, "हमारे घर में जचकी के बखत अपने खटला (पत्नी) को मदद के लिए भेज देना।"

बलभद्दर ने कहा, "जी, पेक्टसा!"

गफूर ने कहा, "आप बेफिक्र रहें, पेक्टसा! मैं अपने मकान (पत्नी) को भी भेज दूंगा खिदमत के लिए।"

मातादीन ने यान के चालक से पूछा, "ड्राइविंग लाइसेंस है?"

"जी है, साहब!"

"और गाड़ी में बत्ती ठीक है?"

"जी, ठीक है।"

मातादीन ने कहा, "सब ठीक-ठाक होना चाहिए वरना हरामजादे को बीच अंतरिक्ष में चलान कर दूंगा।"

चंद्रमा से आए चालक ने कहा, "हमारे यहां आदमी से इस तरह नहीं बोलते।"

मातादीन ने कहा, "जानता हूं, ये! तुम्हारी पुलिस कमजोर है। अभी मैं उसे ठीक करता हूं।"

मातादीन यान में कदम रख ही रहे थे कि हवलदार रामसंजीवन भागता हुआ आया। बोला, "पेक्टसा, एस.पी. साहब के घर में से कहे हैं कि चांद से एड़ी चमकाने का पत्थर लेते आना।"

मातादीन खुश हुए। बोले, "कह देना बाई सा'ब से, जरूर लेता आऊंगा।"

वे यान में बैठे और यान उड़ चला। पृथ्वी के वायुमंडल से यान बाहर निकला ही था कि मातादीन ने कहा, "अबे, हार्न क्यों नहीं बजाता?"

चालक ने जवाब दिया, "आसपास लाखों मील में कुछ नहीं है।"

मातादीन ने डांटा, "मगर रूल इज रूल। हार्न बजाता चल।"

चालक अंतरिक्ष में हार्न बजाता हुआ यान को चांद पर उतार लाया। अंतरिक्ष अड्डे पर पुलिस अधिकारी मातादीन के स्वागत के लिए खड़े थे। मातादीन रोब से उतरे और उन अफसरों के कंधों पर नजर डाली। वहां किसी के स्टार नहीं थे। फीते भी किसी के नहीं लगे थे। लिहाजा मातादीन ने एड़ी मिलाना और हाथ उठाना जरूरी नहीं समझा। फिर उन्होंने सोचा, मैं यहां इंस्पेक्टर की हैसियत से नहीं, सलाहकार की हैसियत से आया हूं।

मातादीन को वे लोग लाइन में ले गए और एक अच्छे बंगले में उन्हें टिका दिया।

एक दिन आराम करने के बाद मातादीन ने काम शुरू कर दिया। पहले उन्होंने पुलिस लाइन का मुलाहजा किया।

शाम को उन्होंने आई.जी. से कहा, "आपके यहां पुलिस लाइन में हनुमान जी का मंदिर नहीं है। हमारे रामराज में हर पुलिस लाइन में हनुमान जी हैं।"

आई.जी. ने कहा, "हनुमान कौन थे? हम नहीं जानते।"

मातादीन ने कहा, "हनुमान का दर्शन हर कर्त्तव्य-परायण पुलिस वाले के लिए जरूरी है। हनुमान सुग्रीव के यहां स्पेशल ब्रांच में थे। उन्होंने सीता माता का पता लगाया था। एब्डक्शन का मामला था, दफा 362। हनुमान जी ने रावण को सजा वहीं दे दी। उसकी प्रापर्टी में आग लगा दी। पुलिस को यह अधिकार होना चाहिए कि अपराधी को पकड़ा और वहीं सजा दे दी। अदालत में जाने का झंझट नहीं, मगर यह सिस्टम अभी हमारे रामराज में भी चालू नहीं हुआ। हनुमान जी के काम से भगवान रामचन्द्र बहुत खुश हुए। वे उन्हें अयोध्या ले आए और टौन ड्यूटी में तैनात कर दिया। वही हनुमान हमारे आराध्य देव हैं। मैं उनकी फोटो लेता आया हूं। उससे मूर्तियां बनवाइए और हर पुलिस लाइन में स्थापित करवाइए।"

थोड़े ही दिनों में चांद की हर पुलिस लाइन में हनुमान जी स्थापित हो गए।

मातादीन जी उन कारणों का अध्ययन कर रहे थे जिनसे पुलिस लापरवाह और अलाल हो गई है। वह अपराधों पर ध्यान नहीं देती। कोई कारण नहीं मिल रहा था। एकाएक उनकी बुद्धि में एक चमक आई। उन्होंने मुंशी से कहा, "जरा तनखा का रजिस्टर बताओ।"

तनखा का रजिस्टर देखा, तो सब समझ गए। कारण पकड़ में आ गया।

शाम को उन्होंने पुलिस-मंत्री से कहा, "मैं समझ गया कि आपकी पुलिस मुस्तैद क्यों नहीं है। आप इतनी बड़ी तनख्वाहें देते हैं, इसलिए सिपाही को पांच सौ, हवलदार को सात सौ, थानेदार को हजार – यह क्या मजाक है! आखिर पुलिस अपराधी को क्यों पकड़े? हमारे यहां सिपाही को सौ और इंस्पेक्टर को दो सौ देते हैं तो वे चौबीस घंटे जुर्म की तलाश करते हैं। आप तनख्वाहें फौरन घटाइए।"

पुलिस-मंत्री ने कहा, "मगर यह तो अन्याय होगा। अच्छा वेतन नहीं मिलेगा तो वे काम ही क्यों करेंगे?"

मातादीन ने कहा, "इसमें कोई अन्याय नहीं है। आप देखेंगे कि पहली घटी हुई तनखा मिलते ही आपकी पुलिस की मनोवृत्ति में क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाएगा।"

पुलिस-मंत्री ने तनख्वाहें घटा दीं और दो-तीन महीनों में सचमुच बहुत फर्क आ गया। पुलिस एकदम मुस्तैद हो गई। सोते से एकदम जाग गई। चारों तरफ नजर रखने लगी। अपराधियों की दुनिया में घबराहट छा गई। पुलिस-मंत्री ने तमाम थानों के रिकार्ड बुलवाकर देखे। पहले से कई गुने अधिक केस रजिस्टर हुए थे। उन्होंने मातादीन से कहा, "मैं आपकी सूझ की तारीफ करता हूं। आपने क्रांति कर दी। पर यह हुआ किस तरह?"

मातादीन ने समझाया, "बात बहुत मामूली है। कम तनखा दोगे, तो मुलाजिम की गुजर नहीं होगी। सौ रुपयों में सिपाही बच्चों को नहीं पाल सकता। दो सौ में इंस्पेक्टर ठाठ-बाट मेनटेन कर सकता है? उसे ऊपरी आमदनी करनी ही पड़ेगी। और ऊपरी आमदनी तभी होगी जब वह अपराधी को पकड़ेगा। गरज कि वह अपराधों पर नजर रखेगा। सचेत, कर्त्तव्यपरायण और मुस्तैद हो जाएगा। हमारे रामराज के स्वच्छ और सक्षम प्रशासन का यही रहस्य है।"

चन्द्रलोक में इस चमत्कार की खबर फैल गई। लोग मातादीन को देखने आने लगे कि वह आदमी कैसा है जो तनखा कम करके सक्षमता ला देता है। पुलिस के लोग भी खुश थे। वे कहते, "गुरु आप इधर न पधारते तो हम सभी कोरी तनखा से ही गुजर करते रहते।" सरकार भी खुश थी कि मुनाफे का बजट बनने वाला था।

आधी समस्या हल हो गई। पुलिस अपराधी पकड़ने लगी थी। अब मामले की जांच विधि में सुधार करना रह गया था। अपराधी को पकड़ने के बाद उसे सजा कैसे दिलाई जाए। मातादीन इंतजार कर रहे थे कि कोई बड़ा केस हो जाए तो नमूने के तौर पर उसका इनवेस्टिगेशन कर बताएं।

एक दिन आपसी मारपीट में एक आदमी मर गया। मातादीन कोतवाली में आकर बैठ गए और बोले, "नमूने के लिए इस केस का 'इनवेस्टिगेशन' मैं करता हूं। आप लोग सीखिए। यह कत्ल का केस है। कत्ल के केस में 'एविडेंस' बहुत पक्की होनी चाहिए।"

कोतवाल ने कहा, "पहले कातिल का पता लगाया जाएगा, तभी तो 'एविडेंस' इकट्ठा किया जाएगा।"

मातादीन ने कहा, "नहीं, उलटे मत चलो। पहले एविडेंस देखो। क्या कहीं खून मिला? किसी के कपड़ों पर या और कहीं?"

एक इंस्पेक्टर ने कहा, "हां, मारने वाले तो भाग गए थे। मृतक सड़क पर बेहोश पड़ा था। एक भला आदमी वहां रहता है। उसने उठाकर अस्पताल भेजा। उस भले आदमी

के कपड़ों पर खून के दाग लग गए हैं।"

मातादीन ने कहा, "उसे फौरन गिरफ्तार करो।"

कोतवाल ने कहा, "मगर उसने तो मरते हुए आदमी की मदद की थी।"

मातादीन ने कहा, "वह सब ठीक है। पर तुम खून के दाग ढूंढने और कहां जाओगे? जो एविडेंस मिल रहा है, उसे तो कब्जे में करो।"

वह भला आदमी पकड़कर बुलवा लिया गया। उसने कहा, "मैंने तो मरते आदमी को अस्पताल भिजवाया था। मेरा क्या कसूर है?"

चांद की पुलिस उसकी बात से एकदम प्रभावित हुई। मातादीन प्रभावित नहीं हुए। सारा पुलिस महकमा उत्सुक था कि अब मातादीन क्या तर्क निकालते हैं।

मातादीन ने उससे कहा, "पर तुम झगड़े की जगह गए क्यों?"

उसने जवाब दिया, "मैं झगड़े की जगह नहीं गया। मेरा वहां मकान है। झगड़ा मेरे मकान के सामने हुआ।"

अब फिर मातादीन की प्रतिभा की परीक्षा थी। सारा महकमा उत्सुक देख रहा था।

मातादीन ने कहा, "मकान है, तो ठीक है। पर मैं पूछता हूं झगड़े की जगह जाना ही क्यों?"

इस तर्क का कोई जवाब नहीं था। वह बार-बार कहता, "मैं झगड़े की जगह नहीं गया। मेरा वहीं मकान है।"

मातादीन उसे जवाब देते, "सो ठीक है, पर झगड़े की जगह जाना ही क्यों?" इस तर्क-प्रणाली से पुलिस के लोग बहुत प्रभावित हुए।

अब मातादीन जी ने इनवेस्टिगेशन का सिद्धांत समझाया—

"देखो आदमी मारा गया है, तो यह पक्का है कि किसी ने उसे जरूर मारा। कोई कातिल है। किसी को सजा होनी है। सवाल है—किसको सजा होनी है? पुलिस के लिए यह सवाल इतना महत्व नहीं रखता जितना यह सवाल कि जुर्म किस पर साबित हो सकता है या किस पर साबित होना चाहिए। कत्ल हुआ है, तो किसी मनुष्य को सजा होगी ही। मारने वाले को होती है, या बेकसूर को यह अपने सोचने की बात नहीं है। मनुष्य मनुष्य सब बराबर है। सबमें उसी परमात्मा का अंश है। हम भेदभाव नहीं करते। यह पुलिस का मानवतावाद है।

"दूसरा सवाल है, किस पर जुर्म साबित होना चाहिए। इसका निर्णय इन बातों से होगा—(1) क्या वह आदमी पुलिस के रास्ते में आता है? (2) क्या उसे सजा दिलाने से ऊपर के लोग खुश होंगे?"

मातादीन को बताया गया कि वह आदमी भला है, पर पुलिस अन्याय करे तो विरोध करता है। जहां तक ऊपर के लोगों का सवाल है—वह वर्तमान सरकार की विरोधी राजनीति

वाला है।

मातादीन ने टेबिल ठोंककर कहा, "फर्स्ट क्लास केस! एविडेंस। और ऊपर का सपोर्ट।"

एक इंस्पेक्टर ने कहा, "पर हमारे गले यह बात नहीं उतरती कि एक निरपराध भले आदमी को सजा दिलाई जाए।"

मातादीन ने समझाया, "देखो, मैं समझा चुका हूं कि सबमें उसी ईश्वर का अंश है। सजा इसे हो या कातिल को, फांसी पर तो ईश्वर ही चढ़ेगा न! फिर तुम्हें कपड़ों पर खून मिल रहा है। इसे छोड़कर तुम कहां खून ढूंढते फिरोगे? तुम तो भरो एफ.आई.आर.।"

मातादीन ने एफ.आई.आर. भरवा दी। 'बखत जरूरत के लिए' जगह खाली छुड़वा दी।

दूसरे दिन पुलिस कोतवाल ने कहा, "गुरुदेव, हमारी तो बड़ी आफत है। तमाम भले आदमी आते हैं और कहते हैं, उस बेचारे बेकसूर को क्यों फंसा रहे हो? ऐसा तो चन्द्रलोक में कभी नहीं हुआ। बताइए, हम क्या जवाब दें। हम तो बहुत शर्मिंदा हैं।"

मातादीन ने कोतवाल से कहा, "घबराओ मत। शुरू-शुरू में इस काम में आदमी को शर्म आती है। आगे तुम्हें बेकसूर को छोड़ने में शर्म आएगी। हर चीज का जवाब है। अब आपके पास जो आए, उससे कह दो—हम जानते हैं कि वह निर्दोष है। पर हम क्या करें? यह सब ऊपर से हो रहा है।"

कोतवाल ने कहा, "तब वे एस.पी. के पास जाएंगे।"

मातादीन ने कहा, "एस.पी. भी कह दें कि ऊपर से हो रहा है।"

"तब वे आई.जी. के पास शिकायत करेंगे।"

"आई.जी भी कहें कि सब ऊपर से हो रहा है।"

"तब वे लोग पुलिस-मंत्री के पास पहुंचेंगे।"

"पुलिस-मंत्री भी कहेंगे, 'भैया, मैं क्या करूं? यह ऊपर से हो रहा है।"

"तो वे प्रधानमंत्री के पास जाएंगे।"

"प्रधानमंत्री भी कहें कि मैं जानता हूं, वह निर्दोष है। पर यह ऊपर से हो रहा है।"

कोतवाल ने कहा, "तब वे . . ."

मातादीन ने कहा, "तब क्या? तब वे किसके पास जाएंगे? भगवान के पास न? मगर भगवान से पूछकर कौन लौट सका है?"

कोतवाल चुप रह गया। वह इस महान प्रतिभा से चमत्कृत था।

मातादीन ने कहा, "एक मुहावरा—ऊपर से हो रहा है, हमारे देश में पचीस सालों से सरकारों को बचा रहा है। तुम इसे सीख लो।"

केस की तैयारी होने लगी। मातादीन ने कहा, "अब चार-छः चश्मदीद गवाह लाओ।"

कोतवाल ने कहा, "चश्मदीद गवाह कोई कैसे मिलेंगे? जब किसी ने उसे मारते देखा

ही नहीं, तो चश्मदीद गवाह कोई कैसे होगा?"

मातादीन ने सिर ठोंक लिया, "किन बेवकूफों के बीच फंसा दिया गवर्नमेंट ने। इन्हें तो ए.बी.सी.डी. भी नहीं आती।"

झल्लाकर कहा, "चश्मदीद गवाह किसे कहते हैं, जानते हो? चश्मदीद वह नहीं है, जो देखे—बल्कि वह है जो कहे कि मैंने देखा।"

कोतवाल ने कहा, "ऐसा कोई क्यों कहेगा?"

मातादीन ने कहा, "कहेगा। समझ में नहीं आता कैसे डिपार्टमेंट चलाते हो! अरे, चश्मदीद गवाहों की लिस्ट पुलिस के पास पहले से रहती है। जहां जरूरत हुई उन्हें चश्मदीद बना दिया। हमारे यहां ऐसे आदमी हैं जो साल में तीन-चार सौ वारदातों के चश्मदीद गवाह होते हैं। हमारी अदालतें भी मान लेती हैं कि इस आदमी में कोई दैवी शक्ति है, जिससे वह जान लेता है कि अमुक जगह वारदात होने वाली है और वहां पहले से पहुंच जाता है। मैं तुम्हें चश्मदीद गवाह बनाकर देता हूं। आठ-दस उठाईगीरों को बुलाओ जो चोरी, मारपीट, गुंडागर्दी करते हों। जुआ खिलाते हों या शराब उतारते हों।"

दूसरे दिन शहर के आठ-दस नर-रत्न कोतवाली में हाजिर थे। उन्हें देखकर मातादीन गदगद हो गए। बहुत दिन हो गए थे, ऐसे लोगों को देखे, बड़ा सूना-सूना लग रहा था।

मातादीन का प्रेम उमड़ पड़ा। उसने कहा, "तुम लोगों ने उस आदमी को लाठी मारते देखा था न?"

वे बोले, "नहीं देखा साब! हम वहां थे ही नहीं।"

मातादीन जानते थे, यह पहला मौका है। फिर उन्होंने कहा, "वहां नहीं थे, यह मैंने माना। पर लाठी मारते देखा तो था।"

उन लोगों को लगा कि यह पागल आदमी है। तभी ऐसी ऊटपटांग बात करता है। वे हंसने लगे।

मातादीन ने कहा, "हंसो मत, जवाब दो।"

वे बोले, "जब थे ही नहीं, तो कैसे देखा?"

मातादीन ने गुर्राकर देखा। कहा, "कैसे देखा, तो बताता हूं तुम लोग जो काम करते हो, सब इधर दर्ज है। हर एक को कम-से-कम दस साल जेल में डाला जा सकता है। तुम ये काम आगे भी करना चाहते हो या जेल जाना चाहते हो?"

वे घबराकर बोले, "साब, हम जेल नहीं जाना चाहते।"

मातादीन ने कहा, "ठीक। तो तुमने उस आदमी को लाठी मारते देखा। देखा न!"

वे बोले, "देखो साब। वह आदमी घर से निकला और जो लाठी मारना शुरू किया, तो वह बेचारा बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़ा।"

मातादीन ने कहा, "ठीक है, आगे भी ऐसी वारदातें देखोगे?"

वे बोले, "साब, जो आप कहेंगे, सो देखेंगे।"

कोतवाल इस चमत्कार से थोड़ी देर तो बेहोश हो गया। होश आया तो मातादीन के चरणों पर गिर पड़ा।

मातादीन ने कहा, "हटो। काम करने दो।"

कोतवाल पांवों से लिपट गया। कहने लगा, "मैं जीवनभर इन श्रीचरणों में पड़ा रहना चाहता हूं।"

मातादीन ने आगे की सारी कार्य प्रणाली तय कर दी। एफ.आई.आर. बदलना, बीच में पन्ने डालना, रोजनामचा बदलना, गवाहों को तोड़ना सब सिखा दिया।

उस आदमी को बीस साल की सजा हो गई।

चांद की पुलिस शिक्षित हो चुकी थी। धड़ाधड़ केस बनने लगे और सजा होने लगी। चांद की सरकार बहुत खुश थी। पुलिस की ऐसी मुस्तैदी भारत सरकार के सहयोग का नतीजा थी। चांद की संसद ने एक धन्यवाद का प्रस्ताव पास किया।

एक दिन मातादीन जी का सार्वजनिक अभिनंदन किया गया। वे फूलों से लदी खुली जीप पर बैठे थे। आसपास जय-जयकार करते हजारों लोग। वे हाथ जोड़कर अपने गृहमंत्री की स्टाइल में जवाब दे रहे थे।

जिंदगी में पहली बार ऐसा कर रहे थे, इसलिए थोड़ा अटपटा लग रहा था। छब्बीस साल पहले पुलिस में भरती होते वक्त किसने सोचा था कि एक दिन दूसरे लोक में उनका ऐसा अभिनंदन होगा। वे पछताए—अच्छा होता कि इस मौके के लिए कुरता, टोपी और धोती ले आते।

भारत के पुलिस-मंत्री टेलीविजन पर बैठे यह दृश्य देख रहे थे और सोच रहे थे, मेरी सद्भावना-यात्रा के लिए वातावरण बन गया।

एक दिन चांद की संसद का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। बहुत तूफान खड़ा हुआ। गुप्त अधिवेशन था, इसलिए रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई, पर संसद की दीवारों से टकराकर कुछ शब्द बाहर आए।

सदस्य गुस्से से चिल्ला रहे थे।

"कोई बीमार बाप का इलाज नहीं करता।"

"डूबते बच्चों को कोई नहीं बचाता।"

"जलते मकान की आग कोई नहीं बुझाता।"

"आदमी जानवर से बदतर हो गया। सरकार फौरन इस्तीफा दे।"

दूसरे दिन चांद के प्रधानमंत्री ने मातादीन को बुलाया। मातादीन ने देखा—वे एकदम बूढ़े हो गए थे। लगा, वे कई रात से सोए नहीं हैं।

रुआंसे होकर प्रधानमंत्री ने कहा, "मातादीन जी, हम आपके और भारत सरकार के बहुत आभारी हैं। अब आप कल देश वापस लौट जाइए।"

मातादीन ने कहा, "मैं तो 'टर्म' खत्म करके ही जाऊंगा।"

प्रधानमंत्री ने कहा, "आप बाकी 'टर्म' का वेतन ले जाइए-डबल ले जाइए, ट्रिपल ले जाइए।"

मातदीन ने कहा, '' हमारा सिद्वांत है। हमें पैसा नहीं काम प्यारा है।''

आखिर चांद के प्रधानमंत्री ने भारत के प्रधानमंत्री को एक गुप्त पत्र लिखा। चौथे दिन मातादीनजी को वापस लौटने के लिए अपने आई.जी का आर्डर मिल गया। उन्होंने एस.पी. साहब के घर के लिए एड़ी चमकाने का पत्थर यान में रखा और और चांद से विदा हो गए। उन्हें जाते देख पुलिसवाले रो पड़े।

बहुत अरसे तक यह रहस्य बना रहा कि आखिर चांद में ऐसा क्या हो गया कि मातादीन को इस तरह एकदम लौटना पड़ा। चांद के प्रधानमंत्री ने भारत के प्रधानमंत्री को क्या लिखा था?

एक दिन वह पत्र खुल ही गया उसमें लिखा था—

इंस्पेक्टर मातादीन की सेवाएं हमें प्रदान करने के लिए अनेक धन्यवाद। पर अब आप उन्हें फौरन बुला लें। हम भारत को मित्र देश समझते थे, पर आपने हमारे साथ शत्रुवत व्यवहार किया है। हम भोले लागों से विश्वासघात किया है।

आपके मातादीन जी ने हमारी पुलिस को जैसा कर दिया है है, उसके नतीजे ये हुए हैं—

कोई आदमी किसी मरते हुए आदमी के पास नहीं जाता, इस डर से कि वह कत्ल के मामले में फंसा दिया जाएगा। बेटा बीमार बाप की सेवा नहीं करता। वह डरता है, बाप मर गया तो उस पर कहीं हत्या का आरोप नहीं लगा दिया जाए। घर जलते रहते हैं और कोई बुझाने नहीं जाता —डरता है कि कहीं उस पर आग लगाने का जुर्म कायम न कर दिया जाए। बच्चे नदी में डूबते रहते हैं और कोई उन्हें नहीं बचाता। इस डर से कि उस पर बच्चे को डुबाने का आरोप न लग जाए। सारे मानवीय संबंध समाप्त हो रहे हैं। मातादीनजी ने हमारी आधी संस्कृति नष्ट कर दी है। अगर वे यहां रहे तो पूरी संस्कृति नष्ट कर देंगे। उन्हें फौरन रामराज में बुला लिया जाए।

कुत्ते और कुत्ते

श्रीलाल शुक्ल

बाजार में आजकल हिंदुस्तानी अंग्रेजी में लिखी हुई बहुत-सी किताबें आ गई हैं जो कुत्तों के—असली कुत्तों के बारे में हैं। 'डॉग केयर, बाई ए डॉग-लवर', 'शेफर्ड डॉग्स आफ जर्मनी, बाई ए डॉग-लवर', 'आफ डॉग्स ऐंड बिचेज, बाई ए डॉग-लवर' आदि।

डॉग-लवर का असली नाम जी. प्रसाद है, जिसका असली रूप घिर्राऊप्रसाद है। वे सीधे-सादे, भोले-भाले आदमी हैं। "वक्त से जगे और वक्त से सोए, वक्त से हंसे और वक्त से रोए।" कभी गोश्त नहीं खाया, कभी शराब नहीं पी। रोज दो घंटे पूजा करते हैं। एक ज्योतिषी स्थायी तौर पर पाले हुए हैं। साल में दो-चार महीने के लिए एक बाबा भी पाल लेते हैं। आधुनिकता के नाम पर उन्हें अंग्रेजी बोलने वाली बीवी, एक अच्छे दर्जी का संपर्क, मोटे शीशे का चश्मा और बवासीर-भर मिली है।

वे, पता नहीं क्यों और कैसे, इनकमटैक्स के महकमे के ऊंचे अफसर हैं। इस सबके साथ, और इस सबके पहले (या इतिहास की दृष्टि से इस सबके बाद) वे कुत्तों के विशेषज्ञ हैं।

उनके पुराने साथी जानते हैं कि आज से दस साल पहले वे सिर्फ अपने दफ्तर की बात करते थे, या अपने ससुर की, जो रेलवे में ऊंचे ओहदे पर हैं और जिनका वक्त ज्यादातर लोगों को झाड़ने में खर्च होता है। ("डैडी को आप जानते नहीं, रेलवे बोर्ड वालों को वहीं खड़े-खड़े झाड़ दिया।") पर उसके बाद वे अचानक कुत्तों की बात करने लगे और 'डॉग-लवर' बन बैठे।

बात कुछ इस तरह से शुरू हुई :

उनके बंगले में कुछ दिनों से एक पड़ोसी का कुत्ता आने लगा था। प्रारंभिक अवस्था में बहुत प्यारा लगता था। पता नहीं क्यों, पड़ोसी ने उसे अपनी दासता से छूट दे दी थी। इसीलिए ताजे-ताजे स्वतंत्र हुए बहुत-से देशों की तरह उसकी हालत बिगड़ रही थी। बिगड़ती हालत के सबूत में वह एक पैर से लंगड़ाने लगा था। बाद में, तसवीर मुकम्मल करने के लिए, उसके जिस्म पर एकाध ऐसे धब्बे प्रकट होने लगे—शायद कुसंग से या भुखमरी से—जिन्हें यदि वह कोई विकासशील देश होता तो अंतर्राष्ट्रीय जगत में दिखाकर बाहर

से गेहूं जरूर मांग सकता था। पर सिर्फ कूं-कूं करके कोई कुत्ता एक देश नहीं बन सकता, जैसे कि कोई देश दिन-रात निकम्मेपन और कूं-कूं करने का अभ्यास करके भी कुत्ता नहीं हो सकता। अतः यह कुत्ता, पड़ोसी के घर से श्री जी. प्रसाद के बंगले में आकर नियमित रूप से कूं-कूं करने और उनकी लान पर प्लेग के चूहे की तरह कई गोल-गोल चक्कर लगाने के बावजूद, उनके यहां से रोटी का एक टुकड़ा तक नहीं खींच सका। कुत्ते और मि. प्रसाद के बीच अपरिचय का विंध्याचल खड़ा रहा, उपेक्षा का ब्रह्म-पुत्र लहराता रहा। ऐसी उपेक्षा किसी विकसित और विकासशील देशों के बीच होती तो एक अंतर्राष्ट्रीय तनाव का कारण बन सकती थी।

धीरे-धीरे उसके धब्बों में इजाफा होने लगा, बाल झड़ने लगे, लंगड़ापन बढ़ने लगा। फिर भी उसकी ओर श्री जी. प्रसाद मुखातिब नहीं हुए। तभी अचानक एक दिन एक नौजवान व्यापारी ने उनके अपरिचय के विंध्याचल में सुरंग लगा दी।

यह नौजवान व्यापारी अपने बाप की तरह गद्दा-मसनद श्री लक्ष्मी जी सदा सहाय', पेंचदार पगड़ी, गौ-ब्राह्मण की सेवा और भंग-ठंडाई के वातावरण की उपज तो जरूर था, पर 'माडरैन' हो जाने की वजह से उसके घर पर कुत्तों को छूकर नहाने की मजबूरी न थी। उसके दफ्तर में मेज-कुर्सियां, शीशे की दीवारें, इंटर-काम आदि का प्रवेश हो चुका था और उसे मालूम था कि अफसरों के यहां फूल-पौधों, पिछली रात क्लब में सुनी गई कव्वालियों, बाबा-बेबी की अंग्रेजी कविताओं, कब्जियत की दवाओं, पपलू और फ्लश के दांव-पेंचों, फौज से कम कीमत पर उड़ाई गई स्काच व्हिस्की की बोतलों, "जमाना बड़ा खराब लगा है" और "ईमानदार की मौत है" की तोतारटंत आवृत्तियों और बंगले की पालतू बिल्लियों और कुत्तों की बात करने से उसे घर का आदमी शुमार किया जाएगा। अतः श्री प्रसाद इस नौजवान व्यापारी से मिलने के लिए जब बंगले से निकलकर लान की तरफ आए तो उन्होंने उसे इस कुत्ते को पुचकारते हुए पाया। उसके बाद जब पारस्परिक अभिवादन और "जमाना बड़ा खराब लगा है" और "ईमानदार की मौत है" का आदान-प्रदान हो चुका और दोनों लान में पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गए, तो नौजवान व्यापारी ने अपनी बात रोक कर कुत्ते को फिर पुचकारा और कहा कि यह पेडिग्री वाला कुत्ता है। श्री प्रसाद ने कुत्ते को पहली बार गौर से देखा और उनका जी घिना गया, जवाब में उन्होंने बताया कि डैडी —यानी ससुर के यहां बहुत बड़े-बड़े कुत्ते पले हैं और उनके बंगले पर तख्ती लगी है कि कुत्तों से होशियार रहो। नौजवान व्यापारी चुटकियां बजा-बजाकर कुत्ते को रिझाता रहा। पर वह इस प्रोत्साहन से लाभान्वित होने से इंकार करता रहा। आखिर में नौजवान व्यापारी ने कहा कि यह बीमार मालूम होता है, इसे अस्पताल ले जाना पड़ेगा, और आपको एतराज न हो तो मैं खुद मोटर पर ले जाकर इसे डा. हाफिज को दिखा दूं, क्योंकि शहर में इस वक्त वही कुत्ते की बीमारी के एक्सपर्ट हैं और मि. टण्डन, हजेला, शुक्ला, मिश्रा, बेदी,

द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी के और मेरे कुत्तों का वही इलाज करते हैं।

जवाब में मि. प्रसाद ने भूमिका के तौर पर कहा कि डैडी के कुत्ते बड़े तगड़े हैं और कभी बीमार नहीं पड़ते। इसके बाद उन पर सचाई का दौरा पड़ गया। उन्होंने फूहड़पन से कहा, "आप इस कुत्ते को जितना चाहें प्यार करें, पर यह कुत्ता मेरा नहीं है।"

सट्टेबाजी चेहरे की मांसपेशियों को काबू में रखने की आदत डलवा देती है। व्यापारी के मन को धक्का लगा पर उसने पहले की तरह उत्साह से कहा कि यह आपके बंगले में रहता है तो चाहे आपका हो या किसी और का, इसे बंगले की हैसियत से ही रहना पड़ेगा।

इसके बाद कुत्ते का कायदे से इलाज शुरू हो गया। देखते-देखते वह विकासशील देशों की तरह पनपने लगा। बाहरी लोग आ-आकर उसे सेहत के सर्टिफिकेट देने लगे। यहां तक कि मि. प्रसाद ने कुछ दिन बाद कुत्ते को अपना लिया, बच्चों ने उससे खेलना शुरू किया और व्यापारियों के गुट में कुत्ता एक ऐसे मजमून के रूप में शुमार कर लिया गया जिस पर उनसे "जमाना खराब लगा है" और "ईमानदार की मौत है" के बाद, अगर डैडी का जिक्र न आ गया तो, बात की जा सकती थी।

पर एक दिन वह कुत्ता मि. प्रसाद के बंगले के सामने ही एक व्यापारी की मोटर से कुचलकर मर गया। उस व्यापारी का व्यापार तो पुराना था, पर अमीरी नई थी। इसलिए वह खराब तसवीरें और गलत गानों के रिकार्ड खरीदता, जरूरत से ज्यादा शानदार कपड़े पहनता, बिना किसी घनिष्ठता के ऊंचे अफसरों और नेताओं को शुरू के नाम से पुकारता। ठीक से चलाना न जानते हुए भी अपनी मोटर चलाता। इसलिए जिस वक्त वह अपनी मोटर पीछे की ओर चलाते हुए श्री जी. प्रसाद के बंगले से निकला, उसी वक्त यह कुत्ता गाड़ी की चपेट में आ गया और आते ही 'हैपी हंटिंग ग्राउंड्स' में पहुंच गया।

मि. प्रसाद को स्वाभाविक था कि दुःख हो। वही व्यापारी के लिए भी स्वाभाविक था। यह भी स्वाभाविक था कि व्यापारी किसी भी नुकसान को पूरा न होने वाला नुकसान न माने। इसलिए उसने एक वैसा ही, बल्कि उससे भी उम्दा कुत्ता खरीदा और उसे मि. प्रसाद के सामने क्षमा-याचना के साथ, मुआवजे के तौर पर पेश किया। उन्होंने उसे भले आदमी की तरह स्वीकार किया।

इधर शहर के व्यापारियों में इस दुर्घटना की खबर फैल गई थी। इसलिए दूसरे एक व्यापारी ने आकर उन्हें बताया कि मेरी कुतिया ने अमुक वंश के पिल्लों को जन्म दिया है और उनमें से एक पिल्ला आपका है। दूसरे व्यापारी की कुतिया ने चमुक वंश के पिल्लों को जन्म दिया था। तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे और सातवें व्यापारी की कुतिया ने क्रमशः तमुक, दमुक, वमुक, लमुक और हमुक वंश के पिल्ले पैदा किए थे। अतः उन सभी व्यापारियों ने उन्हें एक या दो या तीन पिल्ले पेश किए और वे उन्हें अपनी स्वाभाविक उदारता से

स्वीकार करते गए।

दान लेने से दान देने का जोश बढ़ा। जब उनके पास दर्जनों कुत्ते हो गए तो वे उन्हें अपने दोस्तों में—खास तौर से दूसरे शहरों के दोस्तों में—बांटने लगे। दूर-दूर ट्रंक-कॉल करके वे अपने दोस्तों को बताने लगे कि भाई साहब मेरे पास एक अमुक पिडिग्री का कुत्ता आया है और जरूरत हो तो आपके पास भेज दूं। इस तरह इस शहर में श्री जी. प्रसाद की मार्फत कुत्ता निर्यात का काम शुरू हुआ और यह शोहरत होने लगी कि वे 'डॉग-लवर' हैं। कभी-कभी यह भी होने लगा कि श्री प्रसाद के दोस्त से उसके किसी अपने दोस्त ने कहा कि भई, बच्चे पीछे पड़े हैं, मुझे एक पेकिनीज चाहिए और मि. प्रसाद के दोस्त ने कहा कि आज ही मैं उसको ट्रंक-कॉल करूंगा और फिर मि. प्रसाद ने उस व्यापारी से, जिसकी कुतिया अब हर दूसरे महीने पिल्ले पैदा करने लगी थी, दो पिल्ले मंगाकर उसके घर उसके दोस्त के पास भेजने के लिए भेज दिए।

धीरे-धीरे कुत्तों के बारे में समझने-बूझने का शौक भी पैदा हुआ और एक दिन शहर का एक मशहूर बुकसेलर आया और कुत्तों के साहित्य से संबंधित दस-बारह किताबें उन्हें पकड़ा गया। दूसरे बुकसेलर को मि. प्रसाद की किताबों के सेट में कुछ कमी खटकी और उसने उसमें बीच-पच्चीस किताबें और जोड़ दीं। तीसरे ने कुत्तों के बारे में तीन-चार विलायती पत्रिकाएं मंगाने का इंतजाम कर दिया। फिर फोटोग्राफी के सामान के दुकानदार ने उन्हें कई किस्म के कुत्तों के कई फोटो दिए, अंत में एक पब्लिशर ने इन सब प्रयासों का समन्वय और सामंजस्य, यानी 'कोआर्डिनेशन और डब-टेलिंग' की। पब्लिशर इनकमटैक्स के मामलों में उलझकर उसी अनुपात से देश में कुत्ता-साहित्य की कमी का अनुभव कर रहा था। उसने निवेदन किया कि मि. प्रसाद, आप कुत्तों पर दो-एक किताबें लिखकर मुझे दीजिए। इससे देश की एक भारी कमी पूरी हो जाएगी।

उन्होंने एतराज किया। बोले कि मैं सरकारी काम, पूजा-पाठ, गिरिस्ती, ज्योतिष और स्वामी सत्यानन्द में फंसा रहता हूं। डैडी भी लंबी छुट्टी लेकर आने वाले हैं। पर पब्लिशर ने जिद पकड़ ली। कहने लगा कि अंग्रेज अफसरों ने यहां की चिड़ियों और पेड़-पौधों पर हजारों किताबें लिखी हैं। उसने आश्वासन दिया कि आपकी अंग्रेजी बहुत उम्दा है और आपको सिर्फ किसी स्टेनोग्राफर को बोलते चले जाना है और मिस लिली, जो दो साल पहले मिस मसूरी चुनी गई थीं, हमारे यहां स्टेनोग्राफर हैं और मैं उन्हें इस काम के लिए छोड़ दूंगा। पर वे यही कहते रहे कि हमें फुरसत नहीं है। तब उसने कहा कि स्टेनोग्राफर के अलावा मैं फलां डिग्री कालिज के फलां लेक्चरर को भी आपकी खिदमत में लगा दूंगा और वे जैसे 'एक ग्रेजुएट' के नाम से कुंजियां लिखते हैं, वैसे ही 'डॉग-लवर' के नाम से वे आपकी किताबें भी लिख देंगे। इस तरह मजबूर किए जाने पर वे मजबूर हो गए और देखते-देखते 'आफ डॉग्स ऐंड विचेज, बाई ए डॉग-लवर' छपकर बाजार में आ गई।

मि. प्रसाद का कुत्ता-कैरियर यहां से सुगठित हुआ। एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी, चौथी, पांचवीं किताब छपती चली गई और वे नौकरी-पेशे के बाहर भी कुत्ता-विशेषज्ञ मान लिए गए। उन्हें सभा-सोसायटियों में व्याख्यान देने को बुलाया जाने लगा।

पर उन्हें भाषण देने में हिचक होती थी। वास्तव में अभी तक उन्होंने कोई गैर-सरकारी भाषण दिया ही न था। इसके लिए मिस लिली और एक ग्रेजुएट से काम नहीं चलता था। पर अचानक—इसी को भाग्य कहते हैं—एक दिन वे बोलने लगे। हुआ यह था कि उनके पड़ोसी ने उनका अपमान कर दिया। पड़ोसी रेलवे का एक बड़ा अफसर था और डैडी के रिश्ते से इनके यहां उसका काफी आना-जाना था। वह कई बार कुत्तों का मजाक उड़ा चुका था। एक दिन क्लब में, जब मि. प्रसाद कोकाकोला पी रहे थे और वह व्हिस्की पी रहा था, बात कुत्तों और बिल्लियों पर चल निकली। उसने मि. प्रसाद पर सीधे हमला किया और कहा कि कुत्ते पालने वाले खुद कुत्ते हो जाते हैं और कोई प्यारी चीज होती है तो बिल्ली होती है।

मि. प्रसाद को अब तक कुत्तों से सचमुच का प्रेम हो गया था। वे गुस्से में कुर्सी से उठ खड़े हुए। वे अपने पड़ोसी के बारे में उसी तरह जानते थे जैसे कि हर समझदार को अपने पड़ोसी के बारे में जानना चाहिए। उस जानकारी का पूरा उपयोग करके और पड़ोसी को अपने ससुर का हम-उम्र होने के कारण आदर के साथ संबोधित करते हुए उन्होंने कहा, "जनाब, बहस कुत्तों और बिल्लियों की नहीं, सिद्धांत की है। पहले सैद्धांतिक स्तर पर देख लिया जाए कि हमारी रुचियां यानी हाबीज के पीछे कौन-सी प्रेरक शक्तियां काम कर रही हैं। प्रायः होता यह है कि हमें जो चीज यूं ही मिल जाती है और मिलती रहती है उसी में हमारी रुचि पैदा हो जाती है। रुचियों के विकास का इस दृष्टि से भी अध्ययन होना चाहिए। विकासशील देशों में आपने देखा होगा, जरूरी चीजों को छोड़कर इसी तरह गैरजरूरी चीजें बनने लगती हैं। हमारे यहां कैमरों, ट्रांजिस्टरों, टेप-रिकार्डरों, रेफ्रिजरेटरों की भरमार क्यों है? इसलिए कि शुरू-शुरू में यहां के लोग यूरोप-अमेरिका या जापान गए और ये चीजें फोकट में या कम दाम पर ले आए। बाद में इन्हीं चीजों के इर्द-गिर्द हमारी रुचियों का विकास हुआ।"

अचानक उन्हें लगा कि लोग चुप होकर सुन रहे हैं और वे व्याख्यान दे रहे हैं। वे हिचके, पर एक बार फिर हिम्मत करके कहने लगे,"... यही थ्योरी कुत्तों और बिल्लियों पर भी लागू होती है। यह एक संयोग की बात थी कि शुरू-शुरू में मेरे यहां एक कुत्ता आ गया था और विलायत जाने के पहले मि. हार्टन ने अपनी बिल्लियां आपको दे दी थीं पर यह न भूलिए कि वे बिल्लियां मेरे यहां भी आ सकती थीं और यह कुत्ता आपके यहां जा सकता था। इसीलिए हमें कुत्तों और बिल्लियों के बारे में प्रतिबद्ध होकर बात न करनी चाहिए। असल बात हाबीज के, रुचियों के विकास की थ्योरी को लेकर चली थी, जिसके

बारे में . . .।"

पड़ोसी ने तो यही समझा कि कोकाकोला पीकर भी उन्हें नशा हो गया है, पर उसी के दूसरे दिन वे रोटरी क्लब में 'डॉग-केयर' पर भाषण देने के लिए बुलाए गए। कुत्ता-विशेषज्ञ की हैसियत से अब उन्हें काफी बड़े पैमाने पर स्वीकार कर लिया गया। उनको कुत्ता-प्रदर्शनियों के उद्घाटन के लिए और उनकी बीवी को पुरस्कार-वितरण के लिए बुलाया जाने लगा। वे जहां-जहां तबादले पर गए वहां-वहां उनकी अध्यक्षता में कुत्ता-कल्याण-समितियां बनाई गईं। सफलता की इन मंजिलों को पार करके आखिर में उन्हें यह आध्यात्मिक अनुभव हुआ कि उनके भी जीवन का एक अर्थ है और उस अर्थ का नाम कुत्ता है।

पांचवीं शक्ति

शंकर पुणताम्बेकर

दुनिया को चलाने, चाटने, चबाने वाली चार शक्तियां—नेता, पूंजीपति, धर्मगुरु और ब्यूरोक्रेट (अफसरशाह) सबको ज्ञात हैं, किंतु इनके अलावा इस कोटि की एक शक्ति और है यह बहुत कम लोग जानते है। यह शक्ति है दफ्तर बाबू की।

दफ्तर बाबू छोटा हो, निरीह-सा लगने वाला प्राणी, किंतु दुनिया को चलाने, चाटने, चबाने में उसकी भूमिका किसी कदम छोटी नहीं है।

इस प्रक्रिया में इसका काम धीमा और मौन होता है, घुन की भांति या अंदर-ही-अंदर कुतरकर किसी नींव या दीवार को पोला कर देने वाली चींटियों की भांति।

नींव या दीवार कानून के अतिरिक्त मूल्यों की, आस्थाओं की, रिश्तों की।

बाबू सीधे-सीधे जनता होकर भी अपनी सीट में जनता नहीं रह जाता।

यह सरकार की डोली ढोने वाला कहार है। इसलिए जनता-तो-जनता इसकी मुट्ठी में सरकार भी होती है।

सरकार कहती है, चलो उठो काफी देर हो गई है, डोली उठाओ और कदम बढ़ाओ।

कहार की अपनी सामूहिक शक्ति है घुन या चींटियों-सी सो वह कहता है, नहीं उठाता। मैं अभी मूड में नहीं हूं। मैं अभी जंभाई ले रहा हूं, चाय पी रहा हूं, तंबाकू बना रहा हूं, गप शप कर रहा हूं।

चलो उठो भाई, अब तो उठो। तुम जंभाई ले चुके, चाय पी चुके, गप शप कर चुके, अब तो कदम बढ़ाओ।

कहार कदम बढ़ाता है, और कुछ आगे बढ़ने के बाद यह समूह फिर रुक जाता है।

क्या हो गया भाई, क्या हो गया? तुम फिर रुक गए? सरकार कहती है।

बाहर बहुत तेज धूप है। कहार कहते हैं।

अच्छा धूप उतर गई, अब तो चलो। कुछ देर बाद सरकार कहती है।

अब तो हमारा छुट्टी का समय हो गया। कहार बताते हैं।

तेज धूप है तो बाबू रुक जाते हैं, कड़ी शीत है तो रुक जाते हैं, धुआंधार वर्षा है

तो रुक जाते हैं। और धूप तेज है, शीत कड़ी है, वर्षा धुआंधार है इसका निर्णय उनके हाथ में है।

चलो भाई चलो। इस समय न धूप है, न शीत है, न वर्षा है। तुम रुक क्यों गए? डोली में बैठी सरकार अंदर से कहती है।

कई बार तो सरकार अंदर सोई रहती है, उसे पता ही नहीं चलता कि डोली रुकी हुई है।

खैर, सरकार को बाबू बताते हैं कि हम इसलिए रुक गए हैं कि तुम हमारा भत्ता नहीं बढ़ा रही हो।

हमने तुम्हारा भत्ता कल-परसों ही तो बढ़ाया है, भाई!

वह तो 'ब्लैक एंड व्हाइट' भत्ता था, हमें 'कलर' भत्ता चाहिए।

ठीक है, ठीक है। तुम थोड़ा आंदोलन करो, मोर्चा निकालो, हड़ताल पर बैठो, हम तुम्हें कलर भत्ता भी मंजूर कर देंगे।

कलर भत्ता मिल गया। अब क्यों रुके हुए हो? अब तो आगे बढ़ो।

हमें साबुन भत्ता दो। हमारे कपड़े डोली ढोते हुए मैले हो जाते हैं।

सरकार साबुन भत्ता मंजूर कर देती है।

सरकार की नाड़ी बाबुओं के हाथ में सो उन्हें हजामत भत्ता, जूता भत्ता, कमरपट्टा भत्ता, पान-सिगरेट भत्ता, कैंटिन भत्ता आदि मंजूर हो जाता है।

हमारा वेतन बढ़ाओ। बाबू कहते हैं।

देखो, मैं वेतन नहीं बढ़ाऊंगी। मुझे शिकायत मिली है कि तुम लोग रिश्वत लेते हो।

लेते हैं तो क्या बुरा करते हैं! क्या ब्यूरोक्रेट रिश्वत नहीं लेता, तुम खुद रिश्वत नहीं लेती। खबरदार आगे कभी हमारी रिश्वत की बात मुंह से निकाली तो।

ठीक है। मैं वेतन बढ़ा देती हूं।

अब क्यों रुक गए भाई! वेतन तुम्हारा बढ़ा दिया। नाना भत्ते तुम पा रहे हो!

देखो, हममें से कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें रिश्वत पाने की कोई गुंजाइश नहीं है। यह तो अन्याय है कि सरकार लाइसेंस, कंट्रोल, परमिट, सर्टिफिकेट आदि के द्वारा कुछ लोगों के लिए रिश्वत के अवसर पैदा करे और कुछ लोग ऐसे किसी पारस के अभाव में रिश्वत से वंचित रह जाएं।

सोचना होगा कि जिन्हें रिश्वत नहीं मिल पाती है उन्हें वह कैसे मिले। इसके लिए कहो तो कोई कमीशन नियुक्त कर दूं।

नहीं, कमीशन नहीं। एक तो वह अपनी रिपोर्ट में सालों लगा देगा, दूसरे वह खुद रिश्वत खाएगा। अब जिन्हें रिश्वत नहीं मिलती है वे रिश्वत के लिए कमीशन को कैसे रिश्वत दे पाएंगे।

तो तुम्हीं लोग निकालो कोई रास्ता। सरकार कहती है।

रास्ता यही है कि जिन लोगों को रिश्वत खाने की गुंजाइश नहीं है उन्हें सिटी अलाउंस की तरह रिश्वत अलाउंस दिया जाए!

भाई, यह तो तुमने बड़ा अच्छा दिमाग चलाया। चलो मंजूर करते हैं हम रिश्वत अलाउंस।

हमने समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार किया है। बाबू कहते हैं, इस सूरत में यह अन्याय की बात थी कि हममें से कुछ को रिश्वत की गुंजाइश हो और कुछ को यह अवसर प्राप्त हो न हो। रिश्वत अलाउंस को मंजूर करके तुमने इस अन्याय को दूर कर दिया है।

अब क्या शिकायत है भाई, फिर क्यों रुक गए?

हमारे मूलभूत अधिकारों का हनन किया जा रहा है।

मूलभूत अधिकारों का हनन? किन मूलभूत अधिकारों का हनन? और कौन कर रहा है?

हनन कर रहा है डोली की छत पर बैठा हमें हांकने वाला ब्यूरोक्रेट! वह कहता है काम के समय काम करो और खाओ मत। केले मत खाओ, समय मत खाओ। यह तो गलत बात है। खाना हमारा मूलभूत अधिकार है।

देखो भाई लोगो, डोली के अंदर से सरकार कहती है, तुम लोग रिश्वत-विश्वत तो काम के समय खा सकते हो, पर ये केले-वेले खाना अच्छी बात नहीं है।

ब्यूरोक्रेट हमारे और भी मूलभूत अधिकारों पर आघात करता है।

मसलन?

मसलन, वह कहता है, काम के समय नींद मत लो। अब तुम ही देखो। नींद हमारा मूलभूत अधिकार नहीं है? क्या तुम भी काम के समय नींद में नहीं लुढ़क जाती? डोली के बाहर तुम्हारे नाम से चिल्लाते रहते हैं, पर तुम्हारे कानों जू नहीं रेंगती।

बस बस चुप करो।

हमसे ब्यूरोक्रेट कहता है काम के समय उपन्यास मत पढ़ो, क्रिकेट की कमेंटरी मत सुनो। अब ये भी क्या हमारे मूलभूत अधिकार नहीं हैं?

पढ़ना मैं समझती हूं मौलिक अधिकार में नहीं आता। सो उपन्यास-कहानी पढ़ना बंद। हां क्रिकेट जरूर मौलिक अधिकार की बात है। तभी तो हम क्रिकेट को आकाशवाणी पर सुनाते हैं, दूरदर्शन पर दिखाते हैं। सो काम के समय तुम लोग कमेंटरी सुन सकते हो, देख सकते हो।

अरे, अब क्या हो गया? अब क्यों रुक गए भाई!

बाबुओं ने कहा, जंभाई ले रहे हैं, भत्तों का—रिश्वत का आस्वाद ले रहे हैं, क्रिकेट कमेंटरी सुन रहे हैं।

डाकखाना मेघूदत—शहर दिल्ली

धर्मवीर भारती

रीतिकाल में एक महाकवि देव हो गए हैं। उन्होंने अपने मन को ललकारकर कहा था कि "अगर तेरी इन हरकतों का जरा-सा अंदाज मुझे होता तो तेरे हाथ-पांव तोड़ डालता!" एक मेरा मन है। दस बार हाथ पांव तोड़कर डाल दिया गया, पर अपनी हरकतों से बाज नहीं आता। अभी उस दिन की बात है कि कागज-कलम लेकर बैठा कि आस्था-अनास्था, दायित्व, स्वातंत्र्य, लौकिक-अलौकिक, नवीन-प्राचीन, किसी विषय पर कोई महत्वपूर्ण विचारोत्तेजक बात कह सकूं। पर देखा गया कि हफ्तों की कड़ी धूप के बाद गहरे जामुनी रंग के परत-के-परत बादल उड़ते चले आ रहे हैं। दूर कहीं बारिश हो चुकी है, क्योंकि फुहारोंभरी पुरवाई मचलती चल रही है। बस, बहक गया मन। हटाओ यार, क्या रखा है विचारोत्तेजन में—एक प्याली चाय, और कुर्सी पर पड़े-पड़े उड़ते बादलों के साथ बहते जाना।

सुबह का अखबार आया। एक उचटती'निगाह डाली। उठाकर अलग रख दिया। उंह, होगा। पर यह क्या है? पहले ही पृष्ठ पर एक तसवीर। बड़े-बड़े अक्षरों में अंदर लिखा है 'मेघदूत'। मन खिंचा। पता नहीं पतरे के लिहाज से कौन-सा दिन है आज, पर मौसम के लिहाज से तो निस्संदेह आषाढ़ का पहला दिन है—और लीजिए अखबार में मेघदूत भी आ गया। गौर से देखा, चित्र का परिचय पढ़ा। मालूम हुआ मेघदूत एक बहुत बड़ी डाकखाने की लारी का नाम है जिसमें दिल्ली-वासियों के लिए एक चलता-फिरता डाकखाना खोला गया है। वह चौराहे-चौराहे जाएगा। पोस्टकार्ड, लिफाफे, टिकट बेचा करेगा। पत्र, पैकेट, रजिस्ट्री, संदेश जमा करेगा।

सूझ देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। आनंदाश्रु झलक आए। कहां है भारत ऐसा देश जहां का डाक विभाग भी साहित्य, संस्कृति और सौंदर्य-बोध में गले तक डूबा हुआ है! कहां है दिल्ली ऐसी राजधानी जहां गली-गली, चौराहे-चौराहे संस्कृति के देवदूत भोंपू बजाते हुए घूमते रहते हैं! पेरिस, रोम, मास्को, बर्लिन, पेकिंग वाले अपने कला-प्रेम का बड़ा डंका पीटते हैं। आएं जरा हमारी दिल्ली भी देखें!

पर नहीं, फिर भी हिंदुस्तानियों को समझाना साहब बड़ी टेढ़ी खीर है। ऐसे कितने ही लोग हैं जिनको लाख समझाइए पर यह बात उनके गले ही नहीं उतरती है कि दिल्ली

राजनीतिक ही नहीं सांस्कृतिक राजधानी भी बन गई है। पिछले दिनों तो इस किस्म के निंदनीय उद्‌गार खुद दिल्ली के अखबारों में ही देखने में आए कि "दिल्ली में साहित्यिक वातावरण नहीं, यहां नेताओं, मिनिस्टरों, राजदूतों के पीछे-पीछे लेखक घूमते रहते हैं, यहां साहित्य पर भी सरकारी दफ्तरों की छाप है, 'सीनियारिटी' के ही लिहाज से मान्यता मिलती है, साहित्य में सिफारिश, मस्केबाजी, रिश्तेदारी, प्रांतीय अनुपात से प्रतिनिधित्व का दौर-दौरा है—आदि-आदि।"

अब आप यह बताइए कि यह सब है भी तो क्या? आप साहित्यिक राजधानी कायम करने जा रहे हैं कि कोई साहित्यिक खेत-खलिहान जहां कलम के मजदूर फावड़ा लिए नई फसल उगाने में जुटे हों। अब, राजधानी में राजमार्गों पर राजकवि गले में कीमती दुपट्टे डालकर राजपुरुषों के साथ न घूमें तो क्या निराला की तरह कड़ी धूप में, खुले बदन, नंगे पांव, लुंगी लगाए हमारे-आपके साथ घूमें। अरे भाई, दिल्ली में आए दिन चार बाहर के लोग भी आते-जाते रहते हैं। उनके सामने आप एक अच्छे व्यक्ति को तथा शुभ्र वेशधारी, लंबे-तड़ंगे कद्दावर सीनियर कवि को न पेश करेंगे तो क्या अपनी बदनामी कराएंगे। सीनियारिटी के आधार पर साहित्य में मान्यता न दी जाए! क्यों न दी जाए साहब? ये जो कल के छोकरे हैं, जिनकी दूध की दंतुलियां भी अभी नहीं टूटी हैं—और नई कविता, नया साहित्य, नया मूल्य चिल्लाते घूमते हैं, आसमान सर पर उठा रखा है—इनको मान्यता दी जाए? पर ये राजधानी में हैं किस काम के? दरबार का अलकाब-आदाब जानते नहीं, जुहार कैसी करनी चाहिए, सर कहां झुकाना चाहिए, कैसे वजीरों की लगो-से-लगो बात पर वाह! वाह! से आसमान गुंजा देना चाहिए, कैसे बैंगन को अच्छा भी कहना चाहिए, बुरा भी यह सब कभी सीखा भी है? सीखने के नाम पर तो दुम दबाकर भागते हैं। किसी की बात मानेंगे नहीं, अपनी हांकते चले जाएंगे। जबान पर कोई लगाम नहीं—किसी बाहर वाले के सामने ऐसी-वैसी बात कह बैठे, चलिए सब बना बनाया खेल खत्म। राजधानी में तो ऐसे लोगों को घुसने नहीं देना चाहिए। अगर घुस भी आए तो उन्हें दबाकर कड़ी निगरानी में रखना चाहिए, और जिन शहरों में ऐसे खतरनाक सरकश लोग खुले आम घूमते-फिरते हों उनमें तो साहित्यिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक किसी किस्म की राजधानी बनाने का ख्याल तक स्वप्न में भी न लाना चाहिए।

मैं, भइया, ऐसे लोगों के सख्त खिलाफ हूं। हां गलती से कभी-कभी नई कविता, नई पीढ़ी, नए मूल्य इस प्रकार के बुरे-बुरे शब्द मेरे मुंह से जरूर निकल गए हैं—पर विश्वास कीजिए महज जोश में—कुसंग का फल, नादानी और क्या! पर इस समय चाय का एक गर्मा-गर्म प्याला सामने है, कुर्सी पर आंख मूंदे लेटा हूं, बादल बहते चले जा रहे हैं—प्रगति, प्रयोग, नई कविता आदि की ऐसी-तैसी—इस समय तो बिलकुल आंख मूंदकर 'बाबावाक्यम् प्रमाणम्' के मूड में हूं और मेरे बाबा ने 'मलका बिकटूरिया' के जमाने में एक मकान बनवाया

था जिसमें सबके ऊपर लिखवाया था—'ओम् सत्यमेव जयते नानृतम्' और उसके नीचे लिखवाया था— "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।' पहला वाला तो आंधी-पानी, धूप-बरसात में मिट गया, दूसरा वाला रह गया। वह बाप-दादों की परंपरा में मिला है—क्यों छोड़ूं? कुछ दिनों तक अधकचरी उम्र में सुभाष बोस का भी आराधक रहा हूं। अब पके हुए दिमाग ने उनके उपदेशों की गर्मागर्म वामपक्षीयता, जन-प्रेम, सर्वस्वत्याग वगैरह-वगैरह बेकार की चीजें तो भुला दीं; सिर्फ सार याद रह गया है —चलो दिल्ली! चलो दिल्ली!!

सो मैं तो दिल्ली जाऊंगा! चलते समय हितैषी, शुभचिंतक, दोस्त अहबाब समझाएंगे—"लौट चल, घर लौट चल पागल प्रवासी।" मैं कहूंगा, चुप रहो! मैं तो जाऊंगा। गाकर कहूंगा—"कैसे रुकूं मैं आज तट पर आज लहरों में निमंत्रण।'' जाऊंगा; और नहीं तो कम-से-कम राजधानी के टेढ़े-मेढे रास्तों पर 'चौमुख दियना बार'-खड़े-खड़े अपलक प्रतीक्षा करने के लिए दिल्ली वाले मेघदूत की! सबसे पहले भोर का तारा जैसा एक सुंदर सुकुमार उद्घोषक आएगा जिसके हाथ में एक महाकवि की रेडियो रिकार्डिंग होगी। (रिकार्डिंग इसलिए कि महाकवि विदेश गया है।) रिकार्डिंग बजते ही ज्ञात होगा कि महाकवि युग को ललकारकर कह रहा है, "ओ जनता! सड़क खाली करो कि सिंहासन आता है। ओ मूर्ख, भीड़ वाली अशिक्षित जनता!" जनता घबड़ाकर किनारे हो जाएगी। फिर खाली सड़क पर सुंदर रबर वाले टायरों पर मृदु-मृदु संचरण करते हुए नया मेघदूत आएगा। उस युग-संदेशवाही मेघदूत का तौर, तरीका, रंग, डिजाइन, कट सब कुछ अनोखा होगा। साधारण डाकखानों में चित्रमय पोस्ट लगे रहते हैं कि कैसे ठीक पता लिखना चाहिए, कैसे खत छोड़ना चाहिए। इसमें एक कोने पर, बजाय पोस्टर के एक पूरी साइज का असली सुंदर विरही मोम का बना हुआ होगा जिसके हाथ में एक प्रणय-पत्रिका लेटरबक्स में डाल देगा। फिर बटन दबाते ही वह मुड़कर जनता की ओर देखकर पलक झपकाएगा, मोम की आंख मटकाएगा, मुस्कराकर, मुंह बिचकाएगा। जनता हर्षध्वनि करेगी, औरतें हंसते-हंसते लोटपोट हो जाएंगी। बच्चे खुशी से नाचने लगेंगे, चारों तरफ से कैमरे की 'क्लिक' होगी, फलैश चमकेंगे, तसवीरें उतर आएंगी, विदेश भेजी जाएगी। भारत की जनता कितनी खुशहाल है! दिल्ली में सांस्कृतिक आयोजन कितनी धूम-धाम से होते हैं! "सांस्कृतिक, साहित्यिक डाकखाने मेघदूत का जनता द्वारा अभूतपूर्व स्वागत!" —"लाखों की भीड़ उमड़ पड़ी!" भारत समाचार! एक आना! एक आना! भारत समाचार!

सो मेघदूत तो यह!

और कालिदास?

मालूम हुआ कि अंदर जो इसके इंचार्ज पोस्टमास्टर हैं वही तो हैं कालिदास! मैं अत्यंत उत्सुक होकर अंदर जाता हूं। चेहरा कुछ पहचाना हुआ-सा लगता है। अरे! ये तो वही हैं। पहले गांधीवादी, फिर आतंकवादी फिर मार्क्सवादी—फिर सब कुछ छोड़कर

प्रगति-प्रयोगवादी कविताएं लिखने लगे थे। ये तो खासे विद्रोही थे—"पुराणमित्येव न साधु सर्वम् न चापि सर्वम् नवमित्यवद्यम्" का प्रचार करते थे। ये यहां कैसे घुस पाए?

कालिदास भी पहचान जाते हैं। खुश होकर बिठाते हैं। घुल-घुलकर बातें होती हैं। बताते हैं कि पिछले रिकार्ड की वजह से दिक्कत थी। सरकार कम्यूनिस्ट समझती थी। फिर एक तरकीब सूझी। 'अभिनव मेघदूत उर्फ एक अफसर का रोजनामचा' नामक एक नई पुस्तक लिखी। उस पर अपने प्रांत के एक एम.पी. से भूमिका लिखवाई कि वास्तव में यह मेघदूत की नई राष्ट्र-निर्माणपरक व्याख्या है। किस तरह यक्ष की ग्रेड में काम करने वाला एक सरकारी कर्मचारी अपनी लापरवाही से मालिक को नाराज कर देता है—उसका तबादला रामगिरि नामक दूर एक निर्जन पहाड़ी तहसील में कर दिया जाता है, बीवी को दिल्ली में ही रोक लिया जाता है। कुनमुनाकर रह जाते हैं मियां। रोते कलपते दिन बिताते हैं, सूख के कांटा हो जाते हैं, छट्ठी का दूध याद आ जाता है। सर झुका के नाम रगड़ते हैं, हा हा खाते हैं, हुजूर अबकी गलती हुई सो हुई, अबकी हो तो सस्पेंड कर दें। तब जाकर मिनिस्टर माफ करता है। कितना दयालु है। जनता का है न?

छपने पर एक मित्र आलोचक ने रिव्यू कर दी कि इसमें नए भारत के नए मानमूल्य हैं। यह तो राष्ट्रीय काव्य होने लायक है। इस भूमिका और रिव्यू के साथ किताब भेज दी—सरकार ने पुस्तक प्रौढ़ शिक्षा के लिए खरीदवा ली, लेखक को डाकखाने में नौकरी दे दी।

कथा सुनकर चित गद्‌गद हो जाता है। ऐसे प्रतिभाशाली लेखक और ऐसी लेखक-परवर सरकार मिलेंगे कहां सिवा दिल्ली के? फिर भी कुतर्की लोग रट लगाए हैं कि दिल्ली साहित्यिक राजधानी नहीं हो सकती। क्यों नहीं हो सकती साहब? कोई वजह भी है या महज आपकी जिद?

मैं विस्मय-हत इस नए मेघदूत को देख रहा हूं। बाहर से, अंदर से—अपूर्व, अद्‌भुत, अद्वितीय, अकल्पनीय। अकस्मात मेघदूत स्टार्ट होता है, भोंपू बजाता है— हटो बच्चो, ए बच्चे, ए बुढ़ऊ! अरे भइया अपने बाएं चलो वरना कुचल जाओगे - नए भारत का नया सरकारी मेघदूत आ रहा है! हट जा बच्चे वालिये, हट जा पुत्तां प्यारिये! हटो बाछा! जान देनी है क्या?

हिप्पी पंथ

विद्यानिवास मिश्र

संपादकजी,

जय फूलवाद, जय हिप्पी पंथ।

आपने समझा होगा कि भ्रमरानन्द उर्फ मेरी गो-राउंड अंग्रेजी की भक्ति-वाणी में डूब गए, पर यकीन मानिए, भ्रमरानन्द इस धरती पर हैं। देश ने बिराना भले किया हो, भ्रमरानन्द ने देश को बिराना नहीं किया और यह चिट्ठी बकलम खुद भ्रमरानन्द लिख रहे हैं। अंग्रेजी का मामला हिंदुस्तान में तो जमता है, बाहर आकर नहीं जमता। इसलिए जब तक देश के बाहर हैं, तब तक अंग्रेजी से बस मुलाकातभर रखेंगे, ज्यादा घनिष्ठता बढ़ाने से बड़ा प्रपंच होता है। फिर जीभ ही मरोड़ने तक बात नहीं समाप्त होती। आंख-भौं, हाथ सब नचाना पड़ता है, नहीं तो पूरी अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। एक ओर तो आप अर्थहीन विशेषणों की पंक्ति जोड़ते चले जाते हैं, दूसरी ओर संज्ञा शब्दों का ऐसा संक्षेप करते चलते हैं कि बस संक्षेप-ही-संक्षेप रह जाता है, ब्रेकफास्ट और लंच मिलकर ब्रंच बन जाता है, सबेरे का नाश्ता और दोपहर का भोजन एक साथ हो जाता है, मोटर और होटल मिलकर मोटल। पूरा नाम तो लेना ही गुनाह है और फिर क्रियाएं तो हाल के हाल बनती चली जाती हैं। इस भाषा से पार पाना बड़ा मुश्किल है। और फिर जब "गोविन्द जय-जय गोपाल जय-जय" की धुन सरेआम सड़क पर गाई जा रही हो, "रघुपति राघव राजाराम" का रिकार्ड जोर-जोर से रेस्तरां में बजाया जा रहा हो तो फिर अंग्रेजी वैसे ही बेकार हो जाती है। इसलिए आप अब भ्रमरानन्द से नाराज न होंगे। अब वे शुद्ध भारतीय योगी हो गए हैं। योगा और योगा-ड्रग की बड़ी महिमा है। पहले विश्वास नहीं होता था कि हमारे धर्म से योगा-ड्रग (देशी भाषा में विजया या बूटी, बिलायती भाषा में मरहुआना ग्रास = घास, पॉट = चिलम, बो, डोप, टी, स्टफ, मेरीजेन जाने क्या-क्या) का इतना गहरा रिश्ता है। जय हो हिप्पी संप्रदाय की, जिसने यह नया आत्म-साक्षात्कार कराया।

भ्रमरानन्द पहले जब श्वेत द्वीप में आए थे, तो हिप्पी शब्द का अर्थ कुछ दूसरा था, और तब इस देश की परिभाषा करते समय लिबर्टी, इक्वलिटी ऐंड हैपीनेस (स्वाधीनता, समता और सुखवाद) की त्रयी में हैपीनेस के स्थान पर हिप्पीनेस (पृथुल नितम्बिता) जोड़ा

जाता था। इस परिष्कार के बाद लक्षण ठीक उतरता था। पर दूसरी बार आने पर हिप्पी का अर्थ बदल गया। उस समय बीटनिक लोग फैशन में थे, अब वे जाने कहां बिला गए। अब हर बड़ी यूनिवर्सिटी के घास के मैदान सुनहले शैवाल सरीखी लंबी जटाओं के पिंगल प्रकाश से अलोकित हैं। सड़कों के मोड़ फूलदस्ता लिए हिप्पीपंथी विद्याधर-विद्याधरियों से मुखरित हैं और हर अखबार उनकी चर्चा करके ही अपटूडेट (अधुनातन) रह पाता है। बीटनिक बेचारे हारे लोग थे, जिंदगी को एकदम असाध्य रोग मानकर अपने को एकदम वर्जना के कुंड में डुबाने वाले लोग थे, वे अपनी मांदों में रहते थे, पर हिप्पी ज्यादा मुखर है, ज्यादा साहसी है। अब वह खुलेआम चुनौती दे रहा है धर्म, राजनीति और शिक्षा में व्याप्त ढोंग को, और उसका प्रभाव यूनिवर्सिटी के छात्रों पर जादू की तरह और अपने पुराने अध्यापकों पर बिजली के धक्के की तरह पड़ रहा है। अंग्रेजी में एक शब्द है हैपेनिंग (घटना या होना), कुछ हो रहा है और जो इस होने की प्रक्रिया में है, वे हिप्पी कहे जाते हैं (बवजन खोल से खुल, तोल से तुल, घोल से घुल, हैपेन से हिप)। और इस पंथ का एक पूरा महान् तंत्र विकसित हो चुका है। इसी संध्या-भाषा के कुछ पारिभाषिक शब्द ये हैं—ट्रिप या यात्रा वह दिव्य मादन दशा है, जब आदमी अपने मायारूपी बाहरी घेरे से बाहर जाकर किसी न किसी लौ के सहारे (चाहे वह गांजा की हो या एल.एस.डी. =लिसेर्जिक एसिड की हो या चाहे हेरोइन की हो) अपने अंतर्जगत् में रमने लगता है। इस यात्रा का एक उत्कर्ष-बिंदु होता है, जब बाह्य जगत् का ठीक उलटा प्रतिभासित होने लगा है। इस अवस्था में पहुंचने पर आदमी ऊंचे उठ जाता है, और हिप्पी-बच्चा से सिद्ध हिप्पी हो जाता है।

चिक (या चिरई, दूसरा मौजूं शब्द मिला नहीं यह बनारस का खास पारिभाषिक शब्द है) वह अवधूत संगिनी हैं जो इस दशा को और ऊपर पहुंचाने में सहायक बनती है। इस स्थिति को झूलना (स्विंग) कहते हैं।

स्टोन्ड (प्रस्तरीभूत या पथराई अवस्था) चरम अवस्था है, जब एकदम बाहरी दुनिया का आवरण चीरकर फेंक दिया जाता है। सीन (दृश्य) हिप्पी लीलाभूमि का नाम है।

स्क्वायर (सुधा) वह अज्ञानी है, जिसे इस लीला के प्रादुर्भाव की जानकारी नहीं है।

अनुकूल (अनसिराया, गुनगुना) वह व्यक्ति है जो अच्छी तरह लीला में उतरा नहीं, और यह हिप्पी साधक के लिए लज्जास्पद स्थिति है।

कुछ और शब्द हैं, और उनकी परिभाषाएं हैं पर वे बहुत गोपनीय रहस्य हैं, साधारण अज्ञानी पाठक पर प्रकट नहीं किए जा सकते। बिना डूबे उनकी थाह नहीं लगती। हिप्पी साधना का मूलमंत्र सहज प्रेमभाव है। वे इसीलिए लोगों को फूल बांटते फिरते हैं और फूल बांटने का नशा जब चढ़ता है तो बाग के बाग उजाड़ हो जाते हैं वह किसी भी प्रकार के प्रसाधन के खिलाफ है, इसीलिए यह शुद्ध अवधूत है। सभ्यता के जहर के असर को ही खत्म करने के लिए वह गांजा का सेवन करता है और गांजा पर प्रतिबंध उठाने की

मांग करता है। रविशंकर का सितार उसको पागल बना देता है। हिंदुस्तान का योगी उसके लिए बड़ी प्रेरणा है। वह वियतनाम-युद्ध के खिलाफ है, अश्वेतों के ऊपर किए गए अन्याय के खिलाफ है, मसीहाई मजहब के खिलाफ है। और वह गीता का प्रेमी है, महर्षि महेश योगी का मुरीद है। वह भैरवीचक्र का स्नातक है, उसे किसी दूसरे स्नान की आवश्यकता नहीं।

भ्रमरानंद यह लीला देख-देखकर स्तब्ध हैं। हे लीलामय! यह क्या हो रहा है? हिंदुस्तान हाथ पसारकर भीख मांग रहा है : हमें अपना सत्त-निकाला गेहूं दो, रसायनों के बल पर बीस-बीस साल साबुत रखा मक्का दो, अपना यंत्र-कौशल दो, अपनी लाल-पीली-हरी रोशनी की यंत्रबद्ध भाषा दो। और इस पूंजीवादी देश का तरुण हाथ पसारकर उस भिखमंगे से मांग रहा है—अपने मसान की भस्म दो, अपनी दरिद्रता दो, यह ऐश्वर्य, यह जीवन नहीं सहा जा रहा है। हमारा प्यारा हिंदुस्तान खुले हाथ लुटा रहा है—यह ले जाओ ओड़िसा कल्चर की चांदी की क्लिप, यह लो कश्मीर की नवनीतकामिनी के हाथ का शाल, यह ले जाओ शांतिनिकेतन की करमुद्रा, यह ले जाओ बनारसी कांस्य घंटी, यह ले जाओ मणिपुरी नृत्य की रंगीन चोली, यह लो कथकलि का दशाननी मुखौटा, यह लो हीर-रांझा का बिगुल, यह लो सुर्ख लहूसी मद्रासी चद्दर। हमारी संस्कृति का हर तामझाम बिकाऊ है। अपने देश में इतने संग्रहालय नहीं। आओ परदेसी पाहुन, तुम्हारे लिए शराब की छूट है, तुम्हारे लिए सांस्कृतिक आयोजन हैं, डीलक्स वातानुकूलित बसे हैं, हमारा मसालेदार कबाब चखो, हमारी वहशी कुंआरी प्रकृति की शोभा निहारो, हमारा सारा देश सुरक्षित वन है, हम देखने के लिए नहीं, दिखाने के लिए हैं। आओ पाहुन, हमारा ही एक ऐसा देश है जहां असली अंग्रेजी बोली जाती है, जहां अब भी मलका विक्टोरिया के जमाने की तहजीब है, जहां कैम्ब्रिज आक्सफोर्ड और हारवर्ड अब भी तीर्थ है। दूसरी ओर, महाजन मुल्क का नौनिहाल खुद संग्रहालय बन रहा है, मनोविश्लेषण करने वाले घेर रहे हैं, समाजशास्त्रीय मीमांसा करने के लिए शोधकर्त्ताओं की भीड़ जुटी है, राजनीतिक नेता, कानून के विशेषज्ञ और शिक्षाविद कारणों के निदान में लगे हैं। आखिर यह क्या हो रहा है? हमारे जैसे भरे-पूरे, संपन्न देश में कहां से यह आंधी आई अकिंचनता की? कुछ लोग हिंदुस्तान के ऊपर दोष मढ़ते हैं कि हिंदू धर्म बड़ा ही निनैतिक धर्म है, इसलिए उसका बड़ा जहरीला असर पड़ रहा है। इसाइयत के लिए सबसे बड़ा खतरा अगर कोई है तो साम्यवाद नहीं, हिंदू धर्म है। यहां का विचारक सोचता है—"हिंदुस्तान के बुद्धिजीवी को हमने अपने में एकदम आत्मसात कर लिया, पर अपने ही छात्रों पर हमारा काबू नहीं है। हिंदुस्तान का पढ़ा-लिखा आदमी दीनभाव से हमारा मुंह जोहे और हमारे ही अपने बच्चे हमको इस तरह दुतकारें? यह जरूर हिंदुस्तान का कसूर है। अपने पुराने रेड-इंडियन, कहां से आ गए? जरूर हिंदुस्तान से आई चीजों में कुछ कीटाणु थे, कुछ जहर था, जो फैल रहा है।" सो हिंदुस्तान गरीब है, इसलिए

बदनाम है। हिंदुस्तान का नए लोग इस तरह नाम ले रहे हैं, इसलिए बदनाम हो रहा है।

भ्रमरानन्द को स्वामी समझकर दो-एक हिप्पियों ने जुहार की, "हम हिन्दू धर्म को जानना चाहते हैं।" मैंने कहा, "भाई! तुम्हारे वाले हिंदू-धर्म के लिए जिस साधना की जरूरत है, वह मैंने की नहीं, पर मेरा एक हलवाहा है, लपट, उसको कभी-कभी अंजोर (उजाला) हुआ है। हमारा वाला हिंदूधर्म तो जीवंत धर्म नहीं है न उसमें मसान बोलता है, न कौड़ी चिपटती है, न नाम नाचता है, न नाक के आगे लपट उठती है, और न उस लपट में से अमृत रूरता है। और फिर बड़ा प्रपंच है। दिन में पचीस बार हाथ धोओ, मुंह धोओ, कुल्ला करो, खाते समय दूसरे वस्त्र पहनो, बर्तन बार-बार धोओ। एक तरह से हम लोग भीतर की अशुचिता से बहुत ही आक्रांत हैं, और तुम लोगों का चोला है सहज निर्मल। तुम्हारे यहां के समाज शास्त्री विद्वान बार-बार यही पुकारते हैं कि असली जीता-जागता हिंदू धर्म, जादू-मंतर, भूत-प्रेत वाला हिंदू धर्म है, रामनाम और गंगा-जल वाला हिंदू धर्म तो स्वार्थी ब्राह्मणों का चलाया हुआ धंधा है।" पर दिलदार हिप्पी क्यों मानने लगा कि धोती पहने हुए कोई हिंदुस्तानी मूर्ति देखे और वह 'योगा' की एक झलक न दिखा सके, यह कैसे संभव है? लाचार भ्रमरानन्द ने कहा, "सोचकर बताएंगे।" रात में सोचते-सोचते सो गया और सपने में देखा कि हिप्पी लोगों का हिंदुस्तान में राज हो गया है, और हिप्पी लोगों ने हिंदुस्तान के तमाम बाबाजी लोगों को हिप्पी-पंथ के प्रचार के लिए अमरीका भेज दिया है। बहुत-से किसान छोकरे और मजदूर बाबा बनकर देश छोड़-छोड़ अमरीका में बसते चले जा रहे हैं। सभी अफसर हिप्पी हैं, सभी मंत्री हिप्पी हैं और सभी अध्यापक हिप्पी हैं। गैरहिप्पी लोग सड़क कूटने, मशीन चलाने और ईंट पाथने में लगे हुए हैं। लपट के साथ-साथ दो हलवाहे बाबाजी बनकर गांव छोड़ चुके। खैर यही है कि जमीन बिना जोते ही सुनहली फसल दे रही है, जिया और भैरवी (गांजा) के जंगल उपजे तो फिर ऐसे उपजे कि जितना काटें उतना बढ़ते हैं और इनका निर्यात मूल्य इतना बढ़ गया है कि खेती से चौगुनी आमदनी घर बैठे हो रही है। बस, काटने और ढोने की तवालत है, नहीं तो खेती की कोई तवालत ही नहीं रही "न हल चले न कुदाली चले अमृत भोजने करें मुरारी।" समूचा वातावरण परम शैव हो उठा है। बस, गुलाबी नशे में चारों ओर गुलाब, हां, बस गला कांटा हो गया है, कुछ तो खरे नशे से और कुछ बेसुरे कीर्तन से, तर करें तो कैसे? गायें-भैंसें तो जंगल चली गईं। गांव में भांग का जंगल है और आदमी हैं। भांग का पेड़ ताड़ के बराबर दिखाई दे रहा है, और देखता हूं अपना समूचा मकान भांगमय हो उठा है, उसी की धरन, उसी की कड़ी, उसी की छाजन, उसी की दीवालें (टाटी) और उसी की चटाई, यहां तक कि सिल-लोढ़ा भी भांग के (शिलीकृत रूप) फॉसिल के हैं। तबीयत मस्ती में झूम उठी और मन हुआ चिल्लाएं बम-बम महादेव! इतने में नींद खुल गई और देखा खिड़की से मटमैली सियेटली धुंध झांक रही है, सुबह का एहसास मुझे यहां रोशनी से नहीं,

धुंध से होता है, क्योंकि सारी रात बाहर की बिजली की रोशनी झांकती रहती है, सुबह होते ही वह धुंधली पड़ती जाती है और हिप्पी वाली समस्या जहां की-तहां है।

क्या यह सपना सच होने जा रहा है? क्या हम भोगवादी हो जाएंगे और भोगवादी फक्कड़ हो जाएगा ? क्या हिंदू धर्म संजोने का बस यही उपाय रह गया है ? क्या पश्चिममुखी देशी देवता का हिप्पीसारूप्य वास्तविकता होकर ही रहेगा? ये सारे प्रश्न एक-एक कर बोल उठे, पर उत्तर कोई नहीं। शायद भूगोल की यह महिमा है। हम जिसकी ओर दौड़ लगा रहे हैं, वह पीछे की ओर से हमारी ही तरफ दौड़कर आ रहा है।

अंत में सोचा कि बस एक उपाय है, पान का आस्वादन कराऊं। सो, मैंने पूरी रहस्यमयता के साथ साधक हिप्पी को तांबूल दीक्षा दी। उन्हें बतलाया कि पान साक्षात शक्ति है, सुपारी चक्र साधना है और कत्था-चूना महामिलन के पर्याय हैं, इसमें खोंसी हुई लौंग वसंत की श्री है और इसके साथ रंचमात्र ज़ाफ़रानी मिला लो, यही परम विज्ञान है। इसे धीरे धीरे मुंह में घुलाओ। और पान की दीक्षा बड़ी कारगर हुई। यह है कि सुपारी इन्हें कच्ची चाहिए, एक तो नरम होती है, दूसरे वह नशीली भी होती है और पत्ती काली चाहिए, ज़ाफ़रानी ऊंचाई तक चढ़ नहीं पाती। कहिए, भ्रमरानन्द की निर्यात-बुद्धि जोरदार है न?

आप भी क्या कहेंगे कि भ्रमरानन्द को हवाई जहाज से पान का मसाला भेजा था। भ्रमरानन्द भी इस मसालेदार चिट्ठी में इस्फहानी ज़ाफ़रान की पुड़िया रखकर भेज रहे हैं। ज़रा मेरी ओर से बूटी के साथ इसे मिलाकर छान लें।

विजया की श्रीवृद्धि की कामना के साथ।

आपका ही विनीत
भ्रमरानन्द

कथा सेवा यात्रा की

शान्ति मेहरोत्रा

अभियान के लिए प्रस्थान

आज दिनभर बड़ी दौड़भाग रही। फालसाई रंग का स्कार्फ-ढूंढने में इतनी मुश्किल होगी, यह जानती तो साड़ी किसी दूसरे रंग की खरीद ली होती। चालीस का स्कार्फ और एक सौ अस्सी की साड़ी। हिसाब सुनकर मां कितनी नाराज हुई। तभी तो हमारे देश में तरक्की नहीं हो पाती। कहां मातृभूमि के लिए लोग हंसते-हंसते सर्वस्व न्यौछावर कर देते हैं, कहां हमारे घर में दो सौ बीस रुपयों को लेकर बवंडर खड़ा हो जाता है। मैंने साफ कह दिया कि तन, मन, धन से जिस जननी-जन्मभूमि की सेवा का व्रत लिया है, उससे बढ़कर मेरे लिए और कुछ नहीं है।

पाउडर के लिए भी तो कितना भटकना पड़ा। नैचुरल-शेड जैसे बाजार से एकदम उड़ गया। दुनियाभर के शेड भरे पड़े थे, सिर्फ वही नहीं था जो मुझे चाहिए था। भाग्य से वंदिता के पास मिल गया वरना लाख चाहने पर भी क्या मैं गांव जा पाती?

सचमुच का गांव देखने की मेरे मन में बड़ी साध है। वैसे तो फिल्मों में इतने सारे गांव देखे हैं कि उनके बारे में कुछ भी अनजाना नहीं लगता; फिर भी खुद वहां जाकर उस सुख को जीने की बात ही दूसरी है। वे लोग जीवन को कितने रोमैंटिक ढंग से जीते हैं! गांव को लेकर मेरा एक निजी सपना है जो बरसों से पल रहा है—जब मेरी शादी होगी तो हनीमून के लिए हम बस्ती से बहुत दूर, किसी प्यारे से, छोटे-से गांव में जाएंगे।—खैर! वह सब तो जब होगा, तब होगा; फिलहाल हम लोग बहुत एक्साइटेड हैं और मिस सक्सेना के मन में भी बड़ा उत्साह है। वहां जाकर हम लोग क्या करेंगे, यह अभी तय नहीं हो पाया है। ग्रामवासियों की मदद के लिए शायद हम लोग कोई 'फेट' करें या फिर कोई चैरिटी शो। मिस सक्सेना कहती हैं कि हमें इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारा देश एक कृषि-प्रधान देश है और उसकी आत्मा गांव में बसती है।

(जाने के बारे में संजय ने पता नहीं क्या तय किया।)

निराशा—और निराशा

मेरा ख्याल है कि हम लोगों को यहां लाकर मिस सक्सेना मन-ही-मन पछता रही हैं। खाने-पीने

का इतना इंतजाम करके न चले होते तो भूखे मर जाते। शहरों में तो सुधार की बात समझ में आती है, लेकिन यहां बियाबान में क्या खाक सुधार होगा। एक समस्या हो तो सुलझाने की कोशिश करें मगर जहां न बिजली, न पानी, न रहने लायक मकान, न पहनने लायक कपड़े, न कालेज, न अस्पताल, न होटल, न जलपानगृह वहां अपना ही रहना दूभर है, दूसरों को रास्ता क्या दिखाएं। समझ में नहीं आता कि लोग हड़बड़ाकर चाहे जहां रहना क्यों शुरू कर देते हैं। बसने के लिए जगह ऐसी चुनी जिसके पचासों मील दूर तक दिल बहलाने के लिए कोई नदी नहीं, झील नहीं, पहाड़ नहीं, समुद्र नहीं, यहां तक कि कोई बड़ा शहर तक नहीं। जब ऐसी बेहूदी जगह बसे हैं तो फिर कष्ट भी झेलेंगे ही। हम क्या करें।

लू के थपेड़े बेरोकटोक भीतर आ रहे हैं और खिड़कियों में जड़े टूटे हुए दफ्ती के टुकड़े कांप रहे हैं। छत में भी जगह-जगह खपड़े गायब हैं। दरअसल हमने ही गलती की। हर काम को करने का एक सही समय होता है। इतनी गर्मी में यहां आने की जरूरत क्या थी? आना ही था जो जाड़े में आ सकते थे। काम भी करते और मजे से घास पर पड़े-पड़े धूप सेंकते, मूंगफलियां खाते, गप्पें लड़ाते, गाते-बजाते; हंसते-खेलते दस दिन बीत जाते। गर्मी का मौसम सेवा-कार्य के लिए बेकार है। आप काम करना भी चाहें तो करेंगे कब? मान लिया कि सुबह जल्दी उठ गए और आठ-नौ बजे तक नाश्ता करके तैयार भी हो गए लेकिन उस समय गांव वाले अपने-अपने काम-धंधे में फंसे रहते हैं। दोपहर को बाहर निकलना खतरे से खाली नहीं है; जरा-सी धूप में कहीं लू लग जाए तो लेने के देने पड़ जाए। शाम को जब तक कुछ ठंडक होती है तब तक अंधेरा हो जाता है और दिये की लौ में कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

वैसे भी चलते समय मन में जो उत्साह था वह सब यहां आकर ठंडा पड़ गया है। मिस सक्सेना और डाक्टर जिन्दल के ऊपर हम लोगों को बेहद गुस्सा आ रहा है। यहां क्या औरतों को झाड़ू लगाना या कपड़े धोना सिखाने आए थे? हम सब पढ़े-लिखे लोग हैं, एक साथ बैठकर विचार करते तब किसी निश्चय पर पहुंचकर उसी के अनुसार काम करते। अब एक तीर घाट तो दूसरा मीर घाट। लड़कों को ठहराया है मीलभर दूर। इस तरह टुकड़ों में बंटकर कहीं काम हो सकता है? सामाजिक क्रांति तभी हो सकती है जब स्त्री-पुरुष मिलकर काम करे। स्त्रियां और पुरुष प्रगति रथ के दो पहिये हैं लेकिन मिस सक्सेना और डाक्टर जिंदल शायद पहियों को दूर-दूर रखकर हाथ से ठेलने के पक्ष में हैं, गाड़ी चाहे आगे बढ़े, चाहे वहीं पड़ी रहे। मिस सक्सेना कहती हैं कि आग और फूस को पास-पास रखना जोखिम का काम है। अब उन्हें कौन समझाए कि बिना जोखिम उठाए कुछ नहीं किया जा सकता! नो रिस्क, नो गेन।

अगर संजय साथ होते तो क्या अब तक यहां बैठी इस सड़ियल जगह के बारे में लिखती होती? हम लोग कब बाहर निकल गए होते! —हाय, तब तो सचमुच पिकनिक का-सा मजा आता। यह गंदा गांव भी सपनों से जगमगा उठता। हम लोग किसी दुकान

से पॉपकार्न भी खरीदकर खाते। (पॉपकार्न को यहां लोग जाने क्या कहते हैं—ज्वार या बाजरा या शायद मकई—एनी वे!) उसमें भी काजू का आनंद आता। हे ईश्वर! मिस सक्सेना की विशाल काया में एक नन्हा सा धड़कता हुआ दिल फिट करना क्यों भूल गए तुम।

आंखों में काटी गई रात

रात जैसे अंगारों पर कटी। किसी करवट चैन नहीं। कभी उठकर बैठती थी, कभी टहलने लगती थी, कभी फिर लेटकर सोने की कोशिश करती थी। सारे शरीर में जलन और खुजली। मच्छर इतना काट रहे थे कि एक मिनट के लिए भी आंखें नहीं लग पा रही थी। धीरे धीरे रीना, तृप्ति, कल्पना, व्यंजना, सुधा सब उठकर बैठ गईं। मिस सक्सेना की नींद का झोंका राजी-खुशी फैलते देखकर मन में क्रोध और ईर्ष्या के भाव कसमसाने लगे। जी चाहता था कि झकझोर कर उन्हें जगा दूं और कहूं—उठिए, हम सब मिलकर मच्छर मारें।

मेरी कामना बिना किसी प्रयास के पूरी हो गई और मिस सक्सेना हड़बड़ाकर उठ बैठी। उन्होंने भी बाहें खुरचते हुए कहा, "हे भगवान! लगता है यहां खटमल भी है। जरा टार्च तो लाना।" टार्च जलाने पर देखा तो चादरों पर खटमल, तकियों पर खटमल, कपड़ों पर खटमल। हारे सिपाहियों की तरह हम लोगों ने खाटें खाली कर दीं और जमीन पर चादरें झाड़कर बिछा लीं।

चटख चांदनी में सिर के ऊपर झूमता पीपल का पेड़। मुझे भीतर से जाने कैसा-कैसा लगने लगा। बहुत दिन पहले पढ़े 'ड्रकुला' के अंश बार-बार साकार होने लगे। लगा, ऊंघती हुई लड़कियों के रूप में अनेक वैम्पायर मुझे घेरे हैं। मैं मिस सक्सेना से सटकर बैठ गई।

कल्पना और रीना ने समय काटने के लिए कालेज का एक दिलचस्प किस्सा छेड़ा लेकिन लड़कियों के चेहरों पर मुस्कान की रेखा तक नहीं खिंची। उन्हें आराम से नींद में झूमते देखकर सहसा मुझे उन पर बेहद खीझ आई और मैं रीना के माध्यम से उन सब पर बरस पड़ी, "तुम लोग क्या कभी गंभीरता से कोई काम नहीं कर सकतीं? इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर हम यहां आए हैं और तुम्हें हंसी-ठट्ठा सूझ रहा है।"

दोनों खिसियाकर चुप हो गईं। फिर किसी की तरफ से बातचीत शुरू करने को कोशिश नहीं हुई। लड़कियां धीरे-धीरे जमीन पर ही लुढ़कने लगीं। मिस सक्सेना की नाक बजने लगी। सन्नाटे में मेरा दम घुट रहा था। पीपल के पत्ते बार-बार मुझे चौंका रहे थे।

एक और मोर्चा

लड़कों को खबर भिजवा दी गई। पता नहीं बेचारे चाय भी पी पाए या नहीं। सुबह से खटमलों को निर्मूल करने में लगे रहे। गांववालों ने जो कुछ बताया, सब डालकर देखा। लाल मिर्च कूटकर चारपाइयों की दरारों में भरीं, मिट्टी का तेल छिड़का, पानी खौलाकर डाला।

मुझे संजय पर गर्व है। उन सारे नौजवानों पर गर्व है जो संकट के समय कमर कसकर जूझने के लिए कर्मक्षेत्र में उतर आते हैं।

भोजन के समय तक सब बेहद थक चुके थे। मिस सक्सेना को चाहिए था कि सज्जनता के नाते लड़कों से यहीं भोजन करने का आग्रह करतीं लेकिन उन्होंने कोरी शाबाशी देकर सबको टरका दिया। हमने दबी जुबान से संकेत किया भी, लेकिन अविवाहित भद्र महिलाओं को साधारण शिष्टाचार में भी प्रेम की गंध आने लगती है। उन्होंने चौकीदार सुलभ-सतर्कता बरतते हुए आंखों -ही-आंखों में हम लोगों को आग्रह करने से रोक दिया।

चौथा दिन और अनिर्णय की स्थिति

आज दिनभर हमलोग इस गंभीर समस्या पर विचार करते रहे कि काम किधर से शुरू किया जाए। (तीन दिन बाद ही सही, सुमति आई तो।)

डाक्टर जिन्दल ने इस सेवा-यात्रा के लिए हम लोगों की सराहना करते हुए कहा, "इस बीच कड़वे-मीठे जो भी अनुभव होंगे, वे आपके ही नहीं औरों के भी काम आएंगे। यहां करने के लिए काम बहुत हैं लेकिन समय हमारे पास बहुत कम है; इसलिए किधर से शुरू किया जाए, इस बारे में आपकी भी राय जानना चाहूंगा।"

सबसे पहले बोली कल्पना मेहता, "सर! मेरे ख्याल से हम लोग घर-घर जाकर लोगों को किचन-गार्डन की उपयोगिता समझाएं जिससे अपने मतलबभर की तरकारी ये लोग घर ही में उगा सकें।''

कल्पना का बागवानी में उत्साह अभी नया ही है। उसकी मां ने इस साल अपने मकान के पिछवाड़े की बित्ताभर जमीन में जो गोभी उगाई थीं उन पर किसी भी नागरिक को गर्व हो सकता है। गोभी भी एक-दो नहीं, पूरी एक दर्जन। इस रसोई-उद्यान पर उन्होंने खर्चा भी जी खोलकर किया था और मेहनत भी। कंटीले तार लगवाने, खाद डलवाने और पौंधे खरीदने में ही दो-ढाई सौ रुपए गला डाले थे।

दूसरा सुझाव दिया विनय तिवारी ने। वह विद्यार्थियों का नेता है, इस बात को वह सपने में भी नहीं भूलता। घमंड के साथ बोला, "यह मैं आपको बता दूं कि यहां का सबसे अहम मसला है पानी का। सिंचाई तो दूर रही, लोगों को चाय पीने तक के लिए पानी की तंगी है। मैं इन लोगों से संपादकों के नाम पत्र भिजवाऊंगा, नारे लगवाऊंगा, हड़ताल करवाऊंगा और धीरे-धीरे इस गंभीर समस्या को देशव्यापी आंदोलन का रूप दे दूंगा।"

तिवारी का बस चलता तो आंदोलन की पूरी रूपरेखा उसी समय बना डालता लेकिन व्यंजना ने उसकी पतंग बीच में ही काट दी। बोली, "आंदोलन की बात छोड़िए तिवारी जी। जो कुछ है उसी में ये घर स्वर्ग बन सकते हैं। क्यों न हम सब मिलकर उस अंधेरे को चीर दें जो इन बेचारों को जकड़े हुए है। हममें से कोई उन्हें संतुलित आहार के बारे

में समझाए, कोई रोगों की रोकथाम के बारे में, कोई बड़े पैमाने पर खेती करने के बारे में..."

वीरेन्द्र व्यंजना की हर बात भक्तिभाव से ग्रहण करता है–"वैरी गुड आइडिया! इस तरह हम उन्हें बड़े काम की बातें बता सकते हैं–छोटी-से-छोटी भी और बड़ी-से-बड़ी भी। बच्चे पालने से लेकर मच्छर मारने तक और मेक-अप से लेकर साक्षरता तक।"

अंत में बोले संजय, "ग्रामवासियों के लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी समस्याएं सुलझाने के लिए दूसरों का मुंह ताकना छोड़ दें और अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करें। वैसे, फिलहाल व्यंजना जी की योजना भी बुरी नहीं है।"

औरों ने भी व्यंजना के सुझाव को पसंद किया। किसी निष्कर्ष पर पहुंचते ही लगता है जैसे आधा काम हो गया। हम सब बहुत हल्का महसूस करने लगे। वीरेन्द्र ने रिकार्ड-प्लेयर पर बढ़िया-बढ़िया धुनें छांटकर लगा दीं। चाय और पकौड़ियों का दौर चलने लगा। मिस सक्सेना और डाक्टर जिन्दल हमारी आंखों में फिर खटकने लगे।

लक्ष्य की प्राप्ति और एक पुनीत संकल्प

एक सफल अभियान के बाद मन में कितना संतोष होता है। अगर हर साल हमारी टोलियां इसी तरह नई-नई जगह जाकर जागरण का मंत्र फूंकें तो पूरे देश में नई चेतना की लहर फैलते देर नहीं लगेगी। दिक्कत बस यही है कि गांव वाले अभी इस नई चेतना से घबराते हैं। सुधार कोई होम्योपैथिक दवा तो है नहीं कि एक लाख पोटैंसी की पुड़िया हाथ में पकड़ा दी। कुछ हम करें, कुछ वे करें, तब तो बात बन सकती है, लेकिन अगर वे लोग एक सुझाव के आगे दस सवाल करते रहेंगे तो काम आगे बढ़ेगा कैसे? कहा कि खुले हवादार, पक्के मकान बनाने चाहिए, तो बोले,"जी, बनाने के लिए सामान कहां से आएगा?" जैसे यह भी बताने की जरूरत है कि बाजार से आएगा। कहा कि बच्चा फिसलकर कीचड़ में गिर गया है। इसे कीटाणुनाशक साबुन से नहला दो, तो बोले, ''जी, ऐसा साबुन तो बहुत महंगा मिलता होगा। हमने कभी नहीं लगाया'' अरे कभी नहीं लगाया तो अब लगाओ न बाबा! दिक्कत क्या है?

मैंने लोगों को बहुत फटकारा। साफ कह दिया कि जो अपनी मदद आप नहीं कर सकता उसकी मदद भगवान भी नहीं कर सकते। मुझे आशा नहीं थी कि इतना अच्छा भाषण दे डालूंगी। वास्तव में जब मन में देश-प्रेम की ज्वाला धधकती है तो शब्द अपने-आप वाक्य बनने लगते हैं। हम इन लपटों को ठंडी नहीं होने देंगे। अगली गर्मी में हम लोग किसी पहाड़ पर या समुद्र के किनारे बसे किसी सुंदर से गांव में जागृति का मंत्र फूंकने जाएंगे।

संजय! मेरे देवदास!! देश के लिए जीना, मारीजुआना के नशे में जीने की तरह है।

बापू की विरासत

नामवर सिंह

उत्तराधिकार के लिए सबसे बड़ा युद्ध भारतीय इतिहास में मुगल बादशाह शाहजहां के बेटों में बताया जाता है। पूरा बयान तो नहीं मिलता लेकिन इतना पता जरूर चलता है कि शाहजहां अपने बड़े और विद्वान पुत्र दारा को ही राजगद्दी देना चाहता था। लेकिन उससे बड़ा युद्ध आज दिखाई पड़ता है! बापू अचानक दिवंगत हो गए—'राम' को छोड़कर अंतिम समय और कुछ नहीं कह गए। जिन्हें राजगद्दी लेनी थी उन्होंने तो ले ली लेकिन उनके दूसरे सपूत भी इस बीच गले के जोर से सिद्ध करते रहे कि बापू के सच्चे उत्तराधिकारी हमीं हैं। शायद ही कोई राजनीतिक दल इस उत्तराधिकार से बचा हो। अब तक तो

'राम नाम की लूट है, लूट सकै सो लूट'

वाली हालत थी। अंत काल तक पछताने के लिए कोई नहीं रहा। लेकिन आज के अखबार में जब यह खबर मैंने देखी तो दंग रह गया—"सरकार चुनाव बिल पास करके आगामी चुनाव में गांधी जी के नाम का उपयोग अनैतिक घोषित करने जा रही है।"

अब यह तो वही जाने जो झूठे अपनी दाढ़ी टटोल रहे हैं लेकिन बात रह-रहकर मेरे मन में उठ रही है बापू की वसीयत की। नेहरू जी ने बापू के स्वर्गारोहण के समय अपने भाषण में शायद कहा था कि 'अब वह ज्योति हम कोटि-कोटि भारतीयों में बिखर गई है।' उस दिन इसका अर्थ समझ में नहीं आया लेकिन आज वह कुछ खुल रहा है। यह बात बापू की आत्मा के विषय में नहीं, उनकी वसीयत के बंटवारे के विषय में कही गई थी। उस बंटवारे का पता मुझे विश्वस्त सूत्र से लगा है। यहां मुख्य-मुख्य बातों की सूचना दी जा रही है।

गांधी जी के गुरु

गुरु के विषय में चेले अक्सर लड़ते ही हैं लेकिन गुरु के गुरु के विषय में भी कभी-कभी काफी छीना-झपटी होत्ती है। मशहूर है कि गांधी जी के गुरु तीन बंदर थे। परंतु तीनों को कोई एक आदमी न लूट सका। सुनते हैं कि दो बंदरों को तो सरकार उठा ले गई—एक तो वह जिसने दोनों हाथों से कान बंद कर लिए हैं और दूसरा वह जिसने आंखें बंद कर

ली हैं। ठीक भी है! आखिर जो अंधेर हो रहा है उसे देखने के लिए ये आंखें थोड़े बनी हैं! उससे तो यही अच्छा है कि कुछ न देखें। फिर प्रजा की शिकायतें भी रोज पहुंची ही रहती हैं। इतना सुनते-सुनते तो कान बहरे हो जाएंगे। इसलिए सबसे अच्छा यही है कि कान ही बंद कर लें।

अब रह गया एक बंदर जिसने अपने मुंह पर हाथ रखा है। इसे कोई उठाने का नाम ही न ले। अगर सरकार इसे उठाती है तो बिना बोले उसका पेट फूल जाएगा और बिना खाए शरीर सूख जाएगा। इसलिए सरकार ने जबरदस्ती उसे उठाकर प्रजा के घर रखवा दिया ताकि न तो वह शोर करे और न भोजन। इससे एक तो देश में शांति रहेगी दूसरे भोजन की समस्या भी हल्की हो जाएगी।

गांधी जी की धाय

गांधी जी की बकरी भी कम बेशकीमती नहीं! पहले तो सुनते हैं पड़ोस की कुछ हरिजन माताएं ही उसके लिए दौड़ीं परंतु सरकार ने रोक लगा दी कि इतनी बेशकीमती चीज केवल कुछ बच्चों को दूध पिलाने के लिए नहीं दी जा सकती। दूसरे, अभी स्वराज का शिशु बहुत छोटा था। उसकी मां भी सात समुंदर पार चली गई। ऐसी हालत में उसके लिए बापू की बकरी से बढ़कर स्वस्थ दूध किसी का नहीं हो सकता था। बकरी स्वराज के पैंताने बांध दी गई। लोग समझ नहीं पाते हैं कि आखिर यह स्वराज का बच्चा है या 'राकस' जन्मा है जो अभी इसी उमर में लोगों को बेकाज ही नोच-खसोट लेता है। मुरौवतन लोग बोलते नहीं और वह पंजे चला देता है!

गांधी जी का चश्मा

कमानी-वमानी को देखते हुए तो चश्मा मामूली ही मालूम पड़ता था इसलिए उसकी ओर बड़े-बड़े लोगों की निगाह ही नहीं गई। बेचारे देहातियों की आंखें यों ही बहुत खुली खुली रहती हैं इसलिए वे इस 'अन्हवट' को आंखों पर छोपना नहीं चाहते थे। वे भी उससे उदासीन रहे। सत्य को देखने वाली इस दिव्य दृष्टि का महत्व समझा तो नेहरू जी ने! उन्होंने उसे उबारा ताकि उसके जरिए तमाम दुनिया को राह की बातें दिखाई पड़ें। लेकिन सुनते हैं वह उनकी आंखों पर ठीक तरह से बैठ ही नहीं रहा है, इसलिए वे उसे केंद्रीय मंत्रालय को दे देना चाहते हैं।

गांधी जी की घड़ी

नेताओं में तो घड़ी सबके पास है और वह भी बेशकीमती! इसलिए बापू की घड़ी के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ का सवाल उठा ही नहीं। पार्लियामेंट के स्पीकर ने कहा कि इसे मैं पार्लियामेंट

भवन में रखना चाहता हूं। घड़ी ठहरी काल की टुकड़ी! इसी की वजह से जमाना गांधी जी की टेंट में था। अब उसी के कारण जमाना हमारी सरकार की टेंट में होगा। पता नहीं क्या बात है कि वह घड़ी उल्टी चल रही है और उसी को देखकर सरकार का नारा है कि हम पुराने युग में लौट चलें। उसी के प्रमाण पर सरकार अक्सर दिन को रात कह बैठती है और सबको अपनी घड़ी उसी से मिलानी पड़ती है। बड़ी अच्छी चीज है!

गांधी जी की लाठी

अहिंसा तो लाठी में ही मूर्तिमान हो उठी थी—यही लोगों का कहना है। अंग्रेजी जमाने में सिपाहियों को बंदूकें दी गई थीं जिससे अक्सर खून-खराबा हो जाता था। इसलिए सरकार ने गांधी जी की लाठी पुलिस में बंटवा दी ताकि देश में शांति स्थापित करने के लिए वक्तन फक्तन उससे काम लिया जा सके। घोषित किया गया है कि गांधी जी की यही इच्छा थी।

गांधी जी का चरखा

चरखा तो गांधी जी का सुदर्शन चक्र ही ठहरा। औरतें उसे लेने के लिए मार करने लगीं तो बिरला जी ने कहा कि इसका सीधा संबंध मिलों से है। बापू की यही इच्छा थी कि अब मिलों की जगह चरखा ही चले। विदेशी कपड़ों का मुकाबला इसी के द्वारा संभव है। नेताओं ने भी सिर हिलाया और वह चक्र बिरला जी के हाथ पड़ा। सुनते हैं यह अब उचित हाथ में पड़कर इतना महीन कपड़ा बुनने लगा है कि पहनने पर मालूम ही नहीं पड़ता। बिरला जी का कहना है कि देश में सबके शरीर पर काफी कपड़ा हो गया है लेकिन वह इतना महीन है कि लोग नंगे दिखाई पड़ते हैं। करामात चरखे की! द्रौपदी की लाज वही बुनता है!

गांधी जी की चप्पल

चरण-पादुका लेकर ही तो भरत ने अयोध्या का राज्य किया था। इसलिए माननीय प्रधानमंत्री ने उस पर अपना अधिकार समझा और उसे सिंहासन पर रखकर राज-काज का दुर्वह भार संभाला। आखिर यह काम कर ही कौन सकता था! सबने नत-मस्तक होकर स्वीकार किया।

इस तरह गांधी जी की सारी वसीयत लोग बांट चले। वे तो ठहरे साधु संत, इन सब चीजों के सिवा उनकी अपनी कही जाने वाली चीज तो कुछ थी नहीं। आश्रम को भी उन्हीं का समझिए, लेकिन धर्म-निरपेक्ष राज्य ने उस पर दखल देना उचित न समझा। इसलिए उसके महंथ कुछ दूसरे जन हो गए।

लेकिन इन सबसे भी बड़ी—प्राणों से एकदम उनकी अपनी एक और चीज थी। उसकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया। वह थी भारत की कोटि-कोटि जनता। सौत के बेटे की तरह वह धूल में पड़ी थी और उत्तराधिकारियों में से किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया। सबकी आंखें सिंहासन की ओर लगी थीं।

जब बापू की सारी वसीयत लेकर लोग आगे चलने लगे तो धूल से भरी हुई धरती के धड़कते हुए दिल से बापू बोल उठे,"और यह धूल-धूसरित जनता! इसे कौन संभालेगा?" सरकार ने बिना मुंह फेरे जवाब दिया,"हमीं सब कुछ लें। हमने तो इतना लिया ही। अब कुछ दूसरे बेटे भी संभालें।"

देखता हूं तो आज वह वसीयत—सजीव वसीयत—धूल झाड़कर खड़ी हो गई है और कह रही है कि अब अपने को हमीं संभालेंगे।

नए वर्ष पर

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

नए साल पर सुबह-ही-सुबह कपड़ा धोने वाली आई। यह जानने के लिए कि वह नए साल के बारे में क्या सोचती है, उसके आते ही कहा–

"नया साल मुबारक हो कमला।"

"आपको भी साहब।" उसने अचकचाकर जवाब दिया।

"क्या किया कल?"

"कुछ नहीं साहब।" वह हैरत से देखने लगी।

"नया साल नहीं मनाया?"

"नहीं साहब। हमको तो पता ही नहीं था। अभी आपने बताया तो मालूम हुआ।"

"तेरे धोबी मोहल्ले में किसी ने नहीं मनाया?"

"नहीं साहब। हमारे लिए सब बरब्बर है।"

"तुझे पता नहीं नया साल आ गया है? सारी दुनिया मना रही है।"

"नहीं साहब, कल बंगाली मार्किट की दुकानें-ऊकानें सजी थीं, यह जरूर देखा था। पर साहब नया साल आया है यह नहीं मालूम था।"

"कनाट प्लेस में रात-भर धूमधाम थी। इतनी रौनक थी। कुछ नहीं मालूम तुझे?"

"नहीं साहब, हम कनाट प्लेस जाते ही कहां हैं!"

"तेरे मोहल्ले के एक भी धोबी ने कोई जश्न नहीं किया?"

"नहीं साहब!"

"रात में सोए कब?"

"वैसे ही जैसे रोज सोते हैं। कहा न साहब, आपने जब बताया तब मालूम हुआ नया साल है।"

वह शायद मेरे इतने सवालों से कुछ खीझ रही थी। और यह स्तंभकार था कि उसे हैरत हो रही थी कि राजधानी के बीचों बीच रहने वाली यह गरीब औरत और उसके वर्ग के लोगों को मालूम नहीं नया वर्ष क्या है, कब आया, कब गया! उन्हें इस नए वर्ष से कुछ लेना-देना नहीं। यह नया वर्ष तो ख़ाली मध्यवर्ग के लिए है। जिसके पास जितना

पैसा है उसके लिए उतना ही नया वर्ष है। बहुत ज्यादा पैसा है जिसके पास उसका नया वर्ष बड़े-बड़े पांच सितारा होटलों में आता है, उससे कुछ कम पैसा है जिसके पास उसका नया वर्ष कुछ सस्ते होटलों और रेस्त्रांओं में, और कम पैसा है और जवानी की मस्ती है तो शराब की बोतल के साथ सड़कों पर और हर तरह से ढीले मध्यवर्ग का रेडियो टेलीविजन पर।

"टेलीविजन में तो बड़ा धूम-धड़ाका था कल रात, वह भी नहीं देखा किसी के घर?"

"नहीं साहब। पता भी नहीं था। सर्दी में कहां जाते। इस साल तो बड़ी मुसीबत है साहब। पिछले साल सब कपड़े-बरतन चोरी हो गए तो अभी तक कुछ कपड़े भी नहीं बनवा पाए। बच्चों को शाम से ही घर में लेकर रहना पड़ता है। कहीं बाहर ठंड खा जाएं। कपड़े ऐसे हैं नहीं उनके पास।"

नया वर्ष मनाने के लिए, आधी रात सड़कों पर घूमने के लिए भी गर्म कपड़ा चाहिए। गरीब के पास उतनी सहूलियत नहीं। दूसरों को नया वर्ष मनाते हुए टेलीविजन पर ही देख लें इतना सहज साधन नहीं। वह बेचारा यह कैसे समझे कि नए वर्ष के स्वागत के लिए चुटकुले, फिल्मी अभिनेताओं के गाने, नेताओं, मंत्रियों और बड़े लोगों का बहुरुपियापन, अंग्रेजी गाने, नाच, ओसाबिसा—यह सब जरूरी है! टेलीविजन के सामने बैठकर यह सब जिस वर्ग को समझने में आसानी होती है, उतनी आसानी उसे कहां? कम-से-कम अंग्रेजी, अफ्रीकी नाच-गानों का, उसके झांय-बांय संगीत का मजा लूटने का भी हिसाब वह नहीं बना पाता फोकट का मजा भी उसके नसीब में नहीं।

कभी-कभी ख्याल आता है कि यह नया वर्ष जब इस देश की 80 प्रतिशत जनता के लिए—कोई साढ़े तीन लाख गांवों के लिए—नहीं है तो फिर क्या मतलब है इसका? यदि इसका रिश्ता केवल कुछ बड़े शहरों, कुछ पढ़े-लिखे लोगों के लिए ही है तो फिर यह हमारा नया वर्ष कैसे हुआ? नए वर्ष की उस सुबह जब कपड़ा धोने वाली बिना यह कहे हुए कि साहब आप अपने वर्ष की बख्शीश दो, मुंह मीठा कराओ, चली गई तो लगा कितनी उदासीनता है उसके मन में हमारे इस नए वर्ष के लिए! गली में सन्नाटा था। होली-दीवाली इतना सन्नाटा नहीं रहता। सुबह से ही गली में चहल-पहल, सरगर्मी शुरू हो जाती है। सड़क के मेहतर, घरों में काम करने वाले तमाम गरीब लोग दरवाजों पर दस्तक देने लगते हैं—होली मुबारक हो साहब . . . तब लगता है उनका नए वर्ष से कुछ मतलब है। हम उत्साह में होते हैं तो उनमें भी उमंग होती है। यह नया वर्ष कैसा जिसे कि हम किसी ओढ़े हुए उत्साह से मनाते हैं और बाकी समाज कुछ जानता ही नहीं, उसको इससे कुछ मतलब ही नहीं।

जाहिर है यह हमारा नया वर्ष नहीं है। हमारा नया वर्ष तो होली है। यह दूसरों का नया वर्ष है यानी अंग्रेजों का। गुलामी के दिनों में हमने उनसे यह मानना सीखा है। डेढ़

सौ साल से शायद ज्यादा नहीं हुआ होगा। उसके पहले हजारों-हजार साल की अपनी संस्कृति में हम इस नए वर्ष को नहीं जानते थे। माना कि नए वर्ष को उन्नीस सौ इक्यासी साल हो गए पर हम तो इसे डेढ़ सौ साल से ही पहचानते हैं। जब से अंग्रेज बहादुर की हुकूमत शुरू हुई, उसकी खुशी को अपनी खुशी मानने की हमारी आदत पड़ी। वह आदत आज भी पड़ी है। वही औपनिवेशिक दिमाग आज भी बना हुआ है हमारा। यह नया वर्ष हमें गुलामी की विरासत में मिला है।

हमारे देश के तमाम लोगों से जो इस देश की धुरी हैं, इसका कोई सरोकार नहीं। यह जरूर है और यह विडंबना ही है, बहुत बड़ा मजाक कि दफ्तर में काम करने वाला एक गरीब चपरासी भी एक शाम सब्जी का रुपया-डेढ़ रुपया बचाकर नए साल का एक ग्रीटिंग कार्ड खरीद लाता है और बड़े साहब की मेज पर अपनी 'मुबारकबाद' लिखकर रख आता है जिससे वह बता सके कि वह भी उनके नए वर्ष में शरीक है उसका, ख्याल रखा जाए! बाकी तो उसके लिए भी 'सब बरब्बर' है।

रही नए वर्ष पर शुभकामना की, तो उसमें 'अशुभ' की आहट तो हमेशा बनी रहती है, तभी शुभ की बात उठती है न! सो पाठकगण! जिस तरह आप पिछले साल की महंगाई, रेल, बस, सड़क की तमाम यात्रा कर बिना लुटे-पिटे, सही सलामत हैं, सारे जोखम उठाकर भी बचे हुए हैं, उसी तरह नए वर्ष में भी बचे रहें यही 'शुभ' हम मनाते हैं और पता नहीं यही आगे कब तक मनाते रहेंगे।

रास्ता इधर से है

रघुवीर सहाय

वह एक वाहियात दिन था। सब कुछ शांत था : यहां इस कमरे में जहां किसी के चलने की भी आवाज नहीं सुनाई पड़ सकती थी : इतने मोटे गलीचे बिछे थे : दीवारें जहां चिकनी, संगमरमर की-सी शांतिमय, तापमान जहां स्थिर, शरीर के अनुकूल था और सबसे बड़ी बात, धूल जहां नहीं थी : आप चाहते तो मेज पर आस्तीन रख सकते थे : वहां नीचे के कमरों की मेजों की तरह नहीं कि उन पर लोग खाने की जूठन पोंछकर रजिस्टर खोल लेते हैं, पर उस कमरे के बावजूद वह दिन एक वाहियात दिन था।

एक-एक करके चालीस आदमी उस कमरे में आए। चालीस : अलीबाबा : खुल सम सम : हां, एक दरवाजा भी उस कमरे में था, आने के लिए और वही जाने के लिए भी। एक और दरवाजा था, उसको खोलने से कोई कहीं जा नहीं सकता था : जो जाता उसे छोटी या बड़ी हाजत रफा करके वापस आना पड़ता। पर उस पर कहीं लिखा न था कि यह कहां का दरवाजा है। हर बार जब कोई आदमी वापस जाने लगता तो गलती से यही दरवाजा खोलने लगता और हम पांच आदमी जो इस कमरे में बैठे थे, असली दरवाजे की ओर ऊंगली उठाकर एक साथ चिल्लाते–'रास्ता इधर से है।'

दोनों दरवाजे बिलकुल एक-से थे। अगर हम पांच आदमी दिनभर भी उस कमरे में बैठे रहते और सचमुच एक-न-एक हाजत रफा करने उठते रहते तो भी दिनभर में मिलाकर चालीस बार वह दरवाजा न खोलते। मगर उस दिन वह चालीस बार खुला और एक भी आदमी उसके भीतर नहीं गया। उसका आधा खुलना होता कि हम पांचों वे ही शब्द चिल्ला पड़ते जो ऊपर कहे गए हैं। चमचमाता हुआ एक कमोड जरा देर को दिखाई देता फिर चूं करके दरवाजा बंद हो जाता और उसको खोलने वाला सिर झुकाए असली दरवाजे की ओर बढ़ जाता।

कोई बात थी कि जब हम पांचों आदमी अपने-अपने सवाल पूछ चुके होते तो जवाब देने वाला कमरे से छूटकर जाने की इतनी जल्दी में होता कि वह सबसे पहले सामने पड़ने वाले दरवाजे से निकलना चाहता। पर वह तो वही दरवाजा था जिसमें कमोड दिखाई देता था।

जब कई बार ऐसा हो चुका तो हम पांचों हंसने लगे। एक ने कहा, "क्या कंपनी ने यह दरवाजा इम्तहान लेने के लिए ही लगवाया है?" वह शायद सोचता था कि यह भी व्यक्तित्व की परीक्षा का एक अच्छा उपाय है। आदमी अगर नौकरी चाहता है तो कहीं इतना बदहवास तो नहीं है कि कमरे में आने के बाद भूल जाए कि किस दरवाजे से आया था। दूसरे ने कहा, "हा, हा, हा, हा।" तीसरे ने कहा, "नहीं, लगवाया तो इसलिए नहीं गया था। परंतु मैं आपका मतलब समझ गया; आगे से हम इस पर भी पांच नंबर रख सकते हैं।" चौथे ने कहा, "मगर नंबर किसे मिलेंगे? उसी को न जो सही दरवाजे से जाएगा?" इस पर मैंने कहा, "नहीं, उसे जो पेशाबघर का दरवाजा खोलेगा और जब हम लोग कहेंगे—नहीं, नहीं, रास्ता इधर से है—तो वह कहेगा—मुझे मालूम है। मैं पेशाब करने जा रहा हूं।"

यह बात किसी को पसंद नहीं आई। उस कमरे में सिर्फ प्रधान प्रबंधक पेशाब कर सकते थे। यह भी विवादास्पद था कि अगर प्रधानप्रबंधक, सहायक प्रधान प्रबंधक और प्रमुख उपसहायक प्रधान प्रबंधक विचारविमर्श करने बैठे होते और प्रमुख उपसहायक प्रधान प्रबंधक को पेशाब लगती तो वह उठकर बाहर जाते या उसी पेशाबखाने में जाते जो प्रधान प्रबंधक के लिए निश्चित था। सहायक प्रधान प्रबंधक शायद इजाजत लेकर चले भी जाते लेकिन प्रमुख उपसहायक प्रबंधक शायद नहीं जाते। वह बाहर जाते : उतनी दूर जाना उनके नाम जितना ही लंबा रास्ता तय करने से बराबर होता पर वह जाते अपने कमरे में, उससे जुड़े हुए अपने पेशाबघर में।

मेरी बात किसी को पसंद नहीं आई थी। मैं मन-ही-मन निराश हुआ। कोई यह विचार पसंद करता तो आगे मैं यह शर्त रखता कि पूरे नंबर उसे नहीं मिलेंगे जो सिर्फ कहेगा कि मैं पेशाब करने जा रहा हूं बल्कि उसे मिलेंगे जो वहां जाकर वाकई पेशाब करेगा।

मैं ऐसा कह पाता तो बाकी चारों इसमें संशोधन कर सकते थे। मसलन, एक नंबर यह बात बताते कि उसकी पेशाब की आवाज सुनाई पड़ी या नहीं और एक इसका कि उसने बटन भीतर ही बंद किए या बाहर आकर—और पैजामा चढ़ाकर पेशाब करने पर सब नंबर काट लेना तय हो सकता था।

इसके बजाय वे बहस इस बात पर करने लगे कि यदि अभी तक हमने यह चीज इम्तहान में नहीं रखी तो बाकी लोगों को इसके नंबर देकर हम अन्याय करेंगे। इसके पहले सभी को अंग्रेजी बोलने पर नंबर दिए गए थे। अंग्रेजी बोलने और पेशाबघर का दरवाजा पहचानने में कोई समतुल्यता नहीं है, इतना न्याय तो हम पंच जानते ही थे।

उस इमारत में हम पांच बड़े अफसर थे। हम सबके कमरे अलग-अलग थे। सबके लिए दोपहर में अलग खाना परसा जाता था। वह कैंटीन के खाने से कहीं ज्यादा उम्दा होता था। मगर इससे यह निष्कर्ष न जाने किस तरह निकल आया था कि हम सबके

लिए पेशाब और पाखाने के कमरे भी अलहदा होने चाहिए जबकि वहां हम जो कुछ करते वह उम्दा खाने के बावजूद वही होता जो कैंटीन में मोटा खाने वाले करते। मुझे सूझा कि अगर कभी कोई आंदोलन इस इमारत में समता के लिए हो तो वह सबको एक-सा खाना देने की मांग पूरी हो जाने पर भी सफल न होगा। ऐसे सभी आंदोलन क्यों बेकार हो जाते हैं इस पर सोचते-सोचते मैं इस नतीजे पर आया कि इसलिए कि वे सबके लिए एक पेशाबघर की मांग नहीं करते।

हम लोग अपनी फाउंटेनपेन बनाने की कंपनी में सेलमैनों की नियुक्ति के लिए आदमी छांट रहे थे। उस वक्त हमारे सामने एक लड़का बैठा हुआ था जिससे पूछा जा रहा था कि वह यह नौकरी क्यों करना चाहता है। बाकी सवाल जो सबसे पूछे जाते वे पूछे जा चुके थे—जैसे तुम्हारे शौक क्या हैं? हर सवाल पर उम्मीदवार इस तरह अपना व्यक्तित्व निचोड़ कर रख देता जैसे इसी के ठीक उत्तर पर उसे नौकरी मिल जाएगी। ऐसा कुछ था नहीं। नौकरी मिलना जिस बात पर निर्भर था उसे कोई नहीं जानता था। लिखित इम्तहान में पचास से कम नंबर जो लोग लाए थे उनके लिए तो एक यही सवाल काफी था—'तुम यह नौकरी क्यों करना चाहते हो?' इसके जवाब में जिसने कोई ऊंचा कारण बताया वह गया। मसलन, 'मैं कलम बेचकर ज्ञान का प्रसार करना चाहता हूं।' जिसने यह कहा कि इसलिए कि मुझे नौकरी की जरूरत है, उससे अगला सवाल यह होता था कि तो फिर यही क्यों? और उसके पास इसका कोई साधारण जवाब होता ही नहीं था। वह हमेशा कोई बड़ा कारण बताना चाहता था। और हम जानते थे कि इसी से वह मारा जाएगा। हम यह भी जानते थे कि किसी की हिम्मत यह कहने की न पड़ेगी कि वह यह नौकरी इसलिए चाहता है कि वह खाली है (वह भी और नौकरी भी) जबकि असलियत एकदम यही थी और इससे बढ़िया कोई कारण किसी के पास नौकरी के लिए साक्षात्कार देने का हो ही नहीं सकता था।

लड़के ने जवाब में कहा कि वह असल में तो वकालत करना चाहता था पर वकालत उससे चलेगी नहीं। यह कह कर उसने अपने को फंसा लिया। उससे फौरन पूछा गया कि जब वह मुवक्किल की पैरवी नहीं कर सकता तो कलम की कैसे करेगा? इस पर वह घबराहट के मारे कांपने लगा और उसने कहा, "किसी तरह कर लूंगा?" मैंने एक क्षण को कल्पना की कि लड़का मजमे में खड़ा कह रहा है—'भारत कंपनी का फाउंटेनपेन खरीदिए—यह हमेशा सत्य लिखता है . . .'

इसके बाद एक और लड़का आया। इसके खानदान में दुकानदारी थी। इसने कुर्सी पर बैठकर ऐसे देखा जैसे आज सेलमैन हो ले, कल तो वह इस कंपनी को ही खरीद लेगा।

प्रधान प्रबंधक अपने लिए इतना बड़ा खतरा देखकर भी उसी लड़के से सबसे ज्यादा खुश हुए। उन्होंने उससे उसके पिता का हालचाल पूछा और उसे चाय पिलाई। मुझे तो शक हुआ कि शायद वह उसे अपने पेशाबघर के इस्तेमाल का भी न्योता देने वाले हैं। पर नहीं दिया।

एक-एक करके कई लोग और आए। सभी विश्वविद्यालय में साहित्य, विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास या कानून—इनमें से कुछ-न-कुछ पढ़ चुके थे। नौकरी की शर्त ही यही थी। कुछ शायद अपने सबसे बढ़िया कपड़े पहनकर आए थे, पर कपड़े नहीं जनाब, मैं बाकी चारों निर्णायकों से कहना चाहता था, जूते देखिए जूते। उन्हीं से आदमी के असली चरित्र का पता चलता है। एक के जूते बताते थे कि वह बहुत गरीब घर का है, हालांकि उन पर पालिश थी। एक के जूते बताते थे कि उसके पास कई जोड़ी जूते और भी हैं—और कपड़े वह बिलकुल मामूली पहने था : देखिए न जितने खानदानी पैसे वाले होते हैं अक्सर मामूली कपड़े पहनना चाहते हैं . . . मगर उनके जूते!

दो-एक ने नौकरी क्यों करना चाहते हैं, इसका कारण बताया कि उन्हें अपने बूढ़े बाप का हाथ बंटाना है। तीन लड़कों ने कहा कि सीधी बात यह है कि हमें भी तो कोई रोजी चाहिए नहीं तो भाई के मत्थे कब तक खाते रहेंगे। ये सब कारण काफी नहीं थे। इनसे यह सिद्ध नहीं होता था कि ये लोग कलम बेचने में क्या कमाल दिखाएंगे।

एक ने तो कोई कारण नहीं बताया। वह उठकर खड़ा हो गया और कहने लगा, "सर मुझे नौकरी दे दीजिए, आपकी बड़ी मेहरबानी होगी, सर।"

सबसे विशेष बात जो हमारे प्रधान प्रबंधक ने बाद में बताई यह थी कि कोई भी उम्मीदवार यह नहीं बता सका कि पश्चिम जर्मनी में जो टेलीविजन टावर है वह कितना ऊंचा है। प्रधान प्रबंधक इसी वर्ष उस पर चढ़कर चारों तरफ देख आए थे और उसके ऊपर बने रेस्तरां की विचित्रताएं हम लोगों को बताया करते थे।

हम लोग शौक, जूते, कपड़े, अंग्रेजी इन सबकी जांच करते रहे और एक स्वर से 'रास्ता इधर से है' बताते रहे। शाम होने को आई। पास उम्मीदवारों की सूची बनाने का वक्त आ गया। प्रधान प्रबंधक के सचिव ने सबके नंबर सामने लाकर रख दिए।

सूची में नंबर जोड़ने पर मालूम हुआ कि हम लोग किसी को नहीं ले सकते। सत्तर से ऊपर नंबर लाने वाले को ही लेना तय था। इतने किसी के नहीं थे इसलिए हम लोगों ने फिर से विज्ञापन देने का फैसला किया। आज के अनुभव से सीख लेकर इस बार हम लोगों ने विज्ञापन में एक शर्त रख दी कि जो लोग कहीं नौकरी न कर रहे हों वे अर्जी न दें। इसके कई फायदे हुए। एक तो यही था कि हम लोगों को 'रास्ता इधर से है' नहीं कहना पड़ा : उम्मीदवार आते और आते ही अपने शऊर और सलीके से जता देते कि उन्हें यह बात मालूम है कि प्रधान प्रबंधक के कमरे से जुड़ा हुआ एक पेशाबघर है। हां, इससे सारा कार्यक्रम नीरस जरूर हो गया था। अंत में हम लोगों ने उस आदमी को चुना जिसने साक्षात्कार के बीच में एकाएक पूछा था, "सर मैं जरा बाहर पेशाब कर आऊं, सर।"

अगला स्टेशन

केशवचंद्र वर्मा

इस देश के तमाम लोगों की तरह मुझे भी यकीन हो रहा था कि इस देश के भविष्य का निर्माण करने का काम सिर्फ फिल्मों का है। जैसा संदेश लोगों में पहुंचाना हो, वैसी फिल्म बनाकर लोगों को दिखला दीजिए—बस, दुनिया अपने-आप बदलती चली जाएगी। इधर जैसे ही मुझे फिल्मों के जरिए यह संदेश मिला, कि 'समाज को बदल डालो', तैसे ही मैंने अपनी समाज-सेवा को अधिक गहरे स्तर पर करने का फैसला कर लिया, और मौके की तलाश करने लगा, ताकि मैं समाज को एक ही दांव में बदल दूं! इस तरह के मौके रोज-रोज आते नहीं, कि आपको समाज को बदल डालने का अधिकार सब लोग देते फिरें। लेकिन आदमी लगन का पक्का हो, तो समाज एक-न-एक दिन मौका देता ही है।

और इस विचार को कार्य में बदल डालने की शुरुआत मैंने रेलवे-स्टेशन से करने का शुभ संकल्प किया। ऐसा कुछ पहले से तै नहीं था, लेकिन जब अपने कुछ मेहमानों को एक पैसेंजर गाड़ी से छोड़ने के लिए स्टेशन गया, तो समाज ने मुझे अदबदाकर कुछ ऐसा मौका दे दिया, कि समाज-सेवा करने के लिए मेरी तबीयत मचलने लगी। जो लोग यात्रा का सुख आज की दुनिया में भी उठाने के लिए कृतसंकल्प हैं, उन्हें रेल-व्यवस्था की एक मामूली बात तो मालूम ही होगी, फिर भी उनके लाभ के लिए मैं दुहरा रहा हूं। रेलगाड़ियां कई तरह की होती हैं—डाकगाड़ी, एक्सप्रेस (तेज) गाड़ी, पैसेंजर गाड़ी, पार्सल गाड़ी, मालगाड़ी वगैरह-वगैरह। डाकगाड़ी डाक ले जाने के लिए बनी थी, पर मुसाफिर भी ले जाती है। पार्सल गाड़ी पार्सल ले जाने के लिए बनी थी, अब मुसाफिर भी ले जाती है। मालगाड़ी सिर्फ माल ले जाती है। एक 'पैसेंजर' गाड़ी यानी मुसाफिर गाड़ी थी, जो मुसाफिरों के लिए बनी थी, अब मुसाफिरनुमा माल ले जाती है। यानी पैसेंजर गाड़ी में जो भी मुसाफिर चलते हैं, उन्हें रैलवे सिर्फ माल की तरह ढोती है। जहां मन आए, तहां रोकती है, और धीरे धीरे चलाती है, रास्तेभर बिना पंखा और बिना बत्ती का सफर कराती है, पुराने डिब्बों का नया किराया लेती है, और चार-छः घंटे आगे-पीछे पहुंचाती है। इसकी सुनवाई कहीं नहीं। यह मान लिया गया है, कि पैसेंजर गाड़ी यानी मुसाफिर गाड़ी की वही नियति है। उसमें गांव-गांव में उतरने-चढ़ने वाला चलता है। उसके लिए न तो बैठने की जगह की जरूरत

है, न पंखे की, न बत्ती की। और वक्त तो उसके पास अनंत होता है। उनके यहां वक्त के नाम पर सिर्फ सुबह, दोपहर, शाम और रात होती है। तो पैसेंजर गाड़ी सिर्फ सुबह, दोपहर, शाम या रात के वक्तों से बंधी हुई चलती है। फिर किसी को क्या शिकायत हो सकती है?

उसी पैसेंजर गाड़ी पर मैं अपने कुछ मेहमानों को छोड़ने के लिए रेलवे-स्टेशन पहुंचा। शाम को चलकर सुबह पहुंचने का वादा करती हुई इस पैसेंजर गाड़ी के हर डिब्बे में पंखे लगे हुए थे, जो मुसाफिरों के क्रोध की तरह शांत थे। बत्तियां या तो थीं ही नहीं, या दीपक राग की प्रतीक्षा कर रही थीं। तीसरे दर्जे में ठुंसे हुए मुसाफिर दफ्तियां, रूमाल और हाथ-हिलाकर उस डिब्बे से गरमी को बाहर कर देना चाहते थे। अंधेरा हो रहा था, और हर मुसाफिर अपने से ज्यादा अपने संदूक की फिक्र करने में मशगूल था। ऐसा दृश्य देखकर मुझे सहसा यह याद आने लगा कि मैं समाज को बदल डालने का वादा कर चुका हूं, और मुसाफिरों के जन्मसिद्ध अधिकार के लिए लड़ने को मुझसे अच्छा कोई आदमी नहीं हो सकता। जो लोग सफर करने के लिए आए हुए थे, वे भीतर घुसकर बैठ गए थे, और निकलने की कोशिश करते ही अपनी जगह पर दूसरों को बैठा हुआ देखते। वैसे उसमें से निकल पाना अपने-आप में आदमी की मर्दानगी में चार चांद लगा देता! और निकलकर घुस पाना सिर्फ एक घुटी हुई चांद का तल्ख अनुभव दे सकता था। ऐसे में प्लेटफार्म पर खड़े हुए व्यक्तियों की ही यह नैतिक जिम्मेदारी हो जाती थी कि वे पैसेंजर के मालगाड़ी रूप से लोगों को परिचित कराएं और समाज-सेवा करें। वही मैंने किया।

निहायत बुजुर्ग दीखने वाले गार्ड साहब, पान खाए हुए, एक कुचैली लाल टाई (मैली कहना मैलेपन का अपमान होगा) लगाए, आधा कोट बांह पर डाले हुए, बांस के छोटे-छोटे डंडों में लाल, हरी झंडियां लपेटकर रख रहे थे। उनका बड़ा लोहे का बक्स प्लेटफार्म पर खुला हुआ था, और उनको तमाम कुली-कवाड़ी घेरे खड़े थे। एक ने उनको चाय लाकर दी, और वे चाय पीने लगे। मैंने समाज-सेवा के कुछ नियमों का ध्यान किया और भीड़ चीरता हुआ उनके पास पहुंचा। उनसे मैंने डिब्बों में बत्ती और पंखा न होने की शिकायत की। थोड़ी देर तक वह चुपचाप अपनी चाय पीते रहे, और कुलियों को कुछ सामान लादने की हिदायत देते रहे। मैंने अपनी बात दुहराई। उन्होंने एक बार मेरी तरफ देखा, और फिर कुलियों से बातें करने लगे। मैं जानता हूं कि बेहयाई का गुण एक समाजसेवी में बड़ा लाजिमी होता है। अतः मैंने फौरन अपनी बात को और भी तेजी से गार्ड साहब के सामने दुहराया। अबकी गार्ड साहब ने पहली बार जवाब दिया "कह तो दिया साहब, कि अभी सब ठीक हो जाएगा। प्लेटफार्म पर बिजली वाला होगा। उससे कह दीजिए। ठीक कर देगा।"

बहरहाल, मैं आश्वासन लेकर लौट पड़ा। अपना देश ही आश्वासनों पर चल रहा

है। अगर वह भी हटा लिया जाए, तो फिर रह ही क्या जाएगा? और फिर जब सभी लोग आश्वासनों को सही मानकर चुप बैठे रहते हैं, तो मुझे पहली ही बार आश्वासन को चुनौती देना ठीक नहीं लगा। डिब्बे के सामने पहुंचा, तो अपने मेहमानों ने भीतर से पूछा, "क्या हुआ?"

मैंने तड़ से अपनी कारगुजारी बयान कर दी, "अभी सब ठीक हुआ जाता है। पंखा भी ठीक, बिजली भी ठीक।"

एकाध इधर-उधर की बात हो सकती थी, लेकिन गाड़ी छूटने का वक्त निकट आ रहा था। और मुझे लग रहा था कि गाड़ी बिना बत्ती के ही चल देगी। मैं बिजलीवाले मिस्त्री की खोज में चला। आखिरकार वह मिला। एक तेज दुबला-पतला लड़का प्लेटफार्म की बिजली से तार लगाकर पहले दर्जे के डिब्बे में बिजली का पंखा ठीक कर रहा था। मैंने खद्दर का कुरता पहन रखा था। मुझे किसी से भी बात करने में डर नहीं लग रहा था। मैंने उससे उस डिब्बे की बिजली और पंखा ठीक करने को कहा। उसने पहली ही बार में उत्तर दिया, "पंखा-वंखा नहीं चलेगा। बिजली भी रामभरोसे है।"

मैंने कहा, "गार्ड साहब ने कहा है।"

"तो उन्हीं से ठीक करा लीजिए।"

मैं गार्ड साहब की तरफ लपका। अब तो कुछ आन का भी सवाल था। डिब्बे के सामने लौटकर जाता, तो क्या मुंह दिखाता? वे लोग फिर वही सवाल पूछते। गार्ड साहब ने अपनी हरी बत्ती भी ठीक-ठाक कर ली थी। पान खा रहे थे। भीड़ वैसी ही थी। मैंने फिर गार्ड साहब से अपनी मुसीबत दुहराई, और उस लड़के मिस्त्री की शिकायत की। गार्ड साहब ने अपनी आदत के मुताबिक तीसरी बार में मेरी शिकायत पर कान दिया। अबकी नए सिलसिले से बातचीत हुई।

"कहां जा रहे हैं आप?"

"मैं नहीं जा रहा हूं।"

"तो फिर आप गाड़ी के पंखे और बिजली को लेकर क्यों परेशान हैं? जिन्हें जाना है, वह तो आराम से चुप किए बैठे हैं। आप खाहमखाह के काजी बने हुए हैं।"

"जी नहीं। ख़ाहमखाह के नहीं। मेरे घरवाले इस गाड़ी से जा रहे हैं। उन्हें बड़ी परेशानी होगी।"

"रास्ते में बिजली ठीक हो जाएगी। अब तो गाड़ी छूटने का वक्त हो रहा है। देर हो जाएगी यहां पर। अगले स्टेशन पर ठीक करा देंगे।"

"अगला स्टेशन तो गांव है। वहां मिस्त्री कहां मिलेगा?"

"अजी साहब, गाड़ी मैं ले जा रहा हूं। मैं नहीं जानता, और आप सब कुछ जानते हैं।"

अब गार्ड साहब ने जैसे मुझे धमकाने के लिए मुंह में सीटी दबा ली, और हाथ में हरी बत्ती वाली लालटेन उठा ली। वैसे झंडी पहले ही से खुली हुई थी। मैं भी समाज-सेवा पर तुला बैठा था। बोला, "देखिए, गार्ड साहब, जब तक पंखा और बत्ती ठीक नहीं होगी, तब तक गाड़ी यहां से नहीं चल सकती। समझ लीजिए।"

"अरे साहब, ठीक हो जाएगा, सब ठीक हो जाएगा। आप चलिए बैठिए। मैं अभी आता हूं उस डिब्बे के पास।"

मेरे मेहमान खिड़की से सिर निकाले मुझे बुला रहे थे। गाड़ी छूट जाएगी, और चलते वक्त एक टा-टा नहीं कह पाएंगे। लेकिन "टा टा" को देखें, कि अब सरीहन अपनी बेइज्जती को देखें। गार्ड साहब टहलते हुए आगे बढ़े। उनके साथ पूरा जमघट। हमारे डिब्बे के सामने से वे निकले। हम भी उन्हीं के साथ-साथ चल रहे थे। मैंने मेहमानों को डिब्बे के सामने से निकलते हुए यों देखा, कि जैसे "देखो, मैं चाहूं तो पूरी दुनिया को हिलाकर रख दूं।" गार्ड साहब आगे बढ़कर किसी के पास रुक गए और बोले, "क्या बात है, भई! बत्ती-पंखा क्यों नहीं ठीक कर देते?"

मिस्त्री लड़का ताव में था। "मैं क्या खुद पंखा बन जाऊं, गार्ड साहब? जब उसमें पावर है ही नहीं, तो . . ."

गार्ड साहब ने निहायत नरमी से कहा, "अरे भाई, तेज पड़ने की क्या जरूरत है? बात क्या है?"

उसने कहा, "क्या करें, साहब? अभी पुराने चार्जर पर इन्कवायरी हो रही है। कहते हैं, कि जब आएगा, तब मिलेगा। तो हम क्या करें? जितना है, उतना फर्स्ट क्लास में किए दे रहे हैं। गाड़ी चलेगी, और कुछ चार्ज हो गया, तो बत्ती में करेंट चली आएगी। रोशनी तो होगी नहीं, सिर्फ लाल लकीर दिखाई देगी। पंखा-वंखा कुछ नहीं चलेगा। मेरी कोई सुनता नहीं। . . . सब साले . . . और मुसाफिर मेरे डंडा किए हुए हैं। . . .मैं कोई स्टेशन मास्टर की उसमें से लाकर लगा दूं . . . ?"

भीड़ ने मजा लेना शुरू कर दिया था। 'एंग्री यंगमैन' चिल्ला रहा था। सब मेरी तरह ही जान रहे थे कि अब गार्ड साहब की किरकिरी हो जाएगी। तब तक गार्ड साहब बोले, "कितने साल से नौकरी कर रहे हो, म्यां?

"तीन साल से।"

"तभी! तभी अभी इतनी तेजी है। अरे बाबू साहब, यह सब कोई नई बात तो नहीं। मैंने तो सोचा, कि न जाने क्या बावेला आपने मचा दिया। तीन साल से तुम इस गाड़ी को आते-जाते देख रहे हो। कभी तुमने इसमें पंखा चलते देखा, या कभी बत्ती जलती देखी? नहीं न? तो फिर आज इस चीज को लेकर इतना गरम होने की क्या जरूरत पड़ गई? मुसाफिरों से तो दो बोल मीठे-मीठे बोल ही सकते हो कह दो कि 'बत्ती आगे ठीक हो जाएगी।

पंखा अभी चलाए देते हैं।" तुम भी जानते हो, और हम भी जानते हैं कि न तो पंखा चलेगा, और न रास्ते भर बत्ती जलेगी। ये मुसाफिर भी यह जानते हैं। ये भी अंधेरे में बिना पंखे के चलने के आदी हैं। लेकिन अब इनका भी तो कुछ फर्ज है, कि डिब्बे में पंखा नहीं चल रहा है, तो आकर किसी से कहें। अब हमारा-तुम्हारा यह फर्ज है कि बिना पंखा-बत्ती चलाए हुए इन्हें खुश कर दें। इसमें गाली-गलौज करने से मुसाफिर बिगड़ता है, और बात कुछ बनती नहीं। अब चार्जर नहीं है, तो तुम क्या हमारे बाप भी डिब्बे में बिजली नहीं दे सकते। पर यह कहने में क्या लगता है, कि अगले स्टेशन पर ठीक हो जाएगी? औवल तो म्यां, वह 'अगला स्टेशन' पूरे सफर में कभी आता नहीं, और अगर किसी ने याद ही दिलाया, तो तुम तो यहीं छूट जाओगे। मैं निबट लूंगा। रोज इसी 'अगले स्टेशन' के भरोसे मैं गाड़ी यहां से लेकर चला जाता हूं। मुसाफिरों से तुम "अगले स्टेशन" का ख्वाब भी छीन लोगे, तो, बेटे, गाड़ी किसके भरोसे चलेगी?"

मिस्त्री के पास कोई जवाब न था। गार्ड साहब ने सीटी बजा दी और झंडी और रोशनी हिलाना शुरू कर दिया। मेरे पास शिकायत दुहराने का वक्त नहीं था। कुछ डिब्बों से निकले हुए मुसाफिर गाड़ी लेट होने की वजह मुझी को बताते हुए मुझे धिक्कार रहे थे और चुपचाप अपने डिब्बे में लौट जाने के लिए कह रहे थे।

मुन्नू की अम्मा, देश का भविष्य और भगवान की सृष्टि

विजय देव नारायण साही

अखबार के मामले में वीरेश्वर भाई निहायत खौफनाक आदमी हैं। यानी यह कि वीरेश्वर भाई अखबार मंगनी देने के कट्टर विरोधी हैं। न पूरा, न आधा। उनका अकीदा है कि जब तक दोनों मुट्ठियों में आठ पृष्ठों का गरम-गरम ताजा-ताजा पूरा गुद्‌गुदा अखबार न हो अखबार की एक पंक्ति भी पढ़ना गंवारपन की निशानी है। जिस समय वीरेश्वर भाई साइकिल के हैंडिल की तरह दोनों मुट्ठियों में अखबार ज़कड़ लेते हैं, उन्हें चारों पदार्थ प्राप्त होने का सुख मिलता है।

भोर की ट्रेन पर जिस समय वीरेश्वर भाई सवार हुए, उस समय उनका मूड बिलकुल ठीक था। रात का आधा पढ़ा हुआ जासूसी उपन्यास जेब में था अतः प्लेटफार्म पर पहली और अंतिम चीज जो उन्होंने खरीदी वह अखबार थी। उन्हें घुसते देख सामने की सीट पर बैठे महाशय ने दो बार खिसककर बगल में बैठने का निमंत्रण दिया। पहली बार दो अंगुल दाहिनी और दूसरी बार दो अंगुल बाईं ओर। वीरेश्वर भाई प्रसन्न हुए और उनके फैले हुए होल्डाल पर बैठ गए। बगल में अखबार रखकर जेब से अधूरा पड़ा जासूसी उपन्यास निकाला और पढ़ने लगे। भगवान की सृष्टि, देश के भविष्य और मुन्नू की अम्मा—इन तीनों के बारे में एक बार फिर उनकी भावना समर्थन की हो गई।

लेकिन भगवान की सृष्टि, देश के भविष्य और मुन्नू की अम्मा तीनों की उत्कृष्टता में सहसा एक जोर का धक्का तब लगा जब बगल के महाशय जी ने पास पड़े अखबार की ओर हाथ बढ़ाया। वीरेश्वर भाई की आंखें खिंच गईं लेकिन एक तो वीरेश्वर भाई का मूड न जाने क्यों अच्छा था, दूसरे महाशय दो अंगुल बाएं, दो अंगुल दाएं खिसककर अपने होल्डाल पर स्वागत कर चुके थे, अतः एक आश्चर्यजनक घटना घटी यह कि वीरेश्वर भाई चुप रह गए। इस घटना की आश्चर्यजनकता का पता महाशय जी को बिलकुल न चला। उन्होंने वीरेश्वर भाई को ताकते देखकर कहा, "हैं, हैं, आपका अखबार ले सकता हूं।"

यही वह घातक वाक्य था जिसके कारण भगवान की सृष्टि, देश के भविष्य और मुन्नू की अम्मा को कितनी बार मुंहकी खानी पड़ी थी। लेकिन वीरेश्वर भाई कुछ बोले नहीं। केवल आग्नेय नेत्रों से देखकर रह गए जिसका अर्थ महाशय जी ने उचित ही समझा

और अखबार उठाकर रजिस्टर की तरह खोलकर पढ़ने लगे। वीरेश्वर भाई ने तीव्रता के साथ उपन्यास खत्म करना शुरू किया। थोड़ी देर के बाद महाशय जी उठे और लैवोटेरी की ओर बढ़े। हाथ में अखबार, इसके पहले कि वीरेश्वर भाई कुछ बोल भी सके, महाशय जी अखबार समेत भीतर दाखिल हो गए। वीरेश्वर भाई का जी उचट गया। उपन्यास आगे पढ़ना कठिन हो गया। रह-रह कर याद आने लगा कि सुबह की चाय अच्छी नहीं थी। संदेह होने लगा कि मुन्नू की मां को चाय बनाना बिलकुल नहीं आता।

आधे घंटे के बाद महाशय जी निकले। जो अखबार फैला-फैला, लहराता हुआ भीतर गया था वह मरी हुई चिड़िया की तरह सिमटा हुआ बाहर आया। प्रसन्न और संतुष्ट मुद्रा में महाशय जी फिर आकर विराजमान हो गए। अखबार रख दिया। वीरेश्वर भाई ने झपट कर अखबार उठाया और गौतम बुद्ध के घायल हंस की भांति उसे सहलाते हुए बोले, "आप निहायत बेहूदा आदमी मालूम होते हैं।"

महाशय जी का चेहरा खिल गया। एक कान वीरेश्वर भाई की ओर बढ़ाकर हाथ से उस पर छांह करते हुए मुस्कराकर बोले, "जी, क्या कहा आपने?"

वीरेश्वर भाई बड़बड़ाए, "तो आप बहरे भी हैं।" फिर जोर से बोले, "आप मेरा अखबार यहां से उठाकर क्यों ले गए?"

महाशय जी का चेहरा गंभीर हो गया। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप उठे, वीरेश्वर भाई को होल्डाल पर से उठाया, होल्डाल गोल किया, नीचे रखा और वीरेश्वर भाई की ओर पीठ करके बैठ गए।

वीरेश्वर भाई का संदेह कि मुन्नू की मां को चाय बनाना नहीं आता, यकीन में बदल गया। उन्होंने अखबार तह करके दूसरी ओर रख दिया। उपन्यास के दो अध्याय बाकी थे। जल्दी-जल्दी पृष्ठ पलटने लगे। बगल में हाजी जी बैठे थे। अचानक वीरेश्वर भाई ने देखा कि हाजी जी, लोलुप दृष्टि से बैंच पर रखे हुए अखबार को बैठे-ही-बैठे पढ़ रहे हैं। वीरेश्वर भाई का मूड बिगड़ने लगा। मुन्नू की मां का पतन तो पहले ही हो गया था। अब रह- रहकर देश के भविष्य के बारे में भी संदेह सताने लगा। उपन्यास आगे पढ़ना असंभव देख वीरेश्वर भाई ने अखबार को घुमा दिया ताकि हाजी जी की ओर उलटा दिखाई पड़े। इससे मन को थोड़ा संतोष मिला। हाजी जी ने इनकी पलक झपकते ही अखबार को सीधा कर दिया। वीरेश्वर भाई बिगड़कर बोले, "आप मेरा अखबार मत पढ़िए।"

हाजी जी ने तमककर उत्तर दिया, "कौन मरदूद आपका अखबार पढ़ रहा है? बैंच पर पड़ा तो है, मैंने तो उठाया भी नहीं।"

वीरेश्वर भाई ने फिर अखबार घुमाकर रख दिया। हाजी जी थोड़ी देर बेचैनी के साथ खिड़की की ओर देखते रहे। फिर उठे, पूरे डिब्बे में चक्कर काटकर बेंच के पीछे जाकर खड़े हो गए और चुपचाप अखबार पढ़ने लगे। वीरेश्वर भाई ने किताब बंद कर दी। अब

उनको यकीन हो गया कि सन् सत्तावन में गदर होगा। देश का भविष्य अंधकारमय है। झल्लाकर बोले, "मैंने मना कर दिया न, आप मेरा अखबार मत पढ़िए।"

हाजी जी ने उतना ही झल्लाकर कहा, "मैं कब पढ़ रहा हूं?"

"आप पीछे क्यों खड़े हैं, अपनी जगह पर बैठिए।"

"आपसे मतलब, मैं खड़ा-खड़ा ही जाऊंगा।"

'वीरेश्वर भाई ने स्वगत कहा, "यह बेईमानी है।" लेकिन वश न चलता देख उन्होंने अखबार उठा लिया और निश्चय किया कि उपन्यास बाद में पढूंगा, पहले अखबार ही पढ़ लूं। उनके अखबार उठाते ही हाजी जी सरककर ठीक पीछे आ खड़े हुए। वीरेश्वर भाई ने अखबार के आठ पर्त किए और जेब में रख लिया। हाजी जी फौरन पीछे से हटे और सारा डिब्बा पारकर अपनी जगह पर आकर बैठ गए। जैसे कुछ हुआ ही न हो।

वीरेश्वर भाई का मूड बिलकुल चौपट हो चुका था। सन् सत्तावन में गदर की आवश्यकता बड़ी तेजी से महसूस हो रही थी। गाड़ी चली जा रही थी। अगले स्टेशन पर हाजी जी उतर गए तो वीरेश्वर भाई को सुख मिला। अखबार जेब से निकाला और चुपचाप पढ़ने लगे।

एक नूरानी चेहरे के बुजुर्गवार अगले स्टेशन पर चढ़े और बगल में आकर बैठ गए। उनके मुखमंडल से भव्यता और शांति टपक रही थी। वीरेश्वर भाई अखबार में डूबे हुए थे। सहसा कान के पास गूंजता हुआ शीतल स्वर सुनाई पड़ा, "क्या मैं बीच के ये दो पृष्ठ ले सकता हूं?"

वीरेश्वर भाई ने तपाक से अखबार बंद कर दिया। देखा अथाह शांति में डूबे हुए बुजुर्गवार उनकी ओर जिज्ञासा की दृष्टि से देख रहे हैं। वीरेश्वर भाई ने तिलमिला कर उत्तर दिया, "जी नहीं, खबरदार जो आपने छुआ भी तो।"

बुजुर्गवार ने वीरेश्वर भाई की ओर गौर से देखा। फिर दूसरी ओर बैठे हुए मुसाफिर से बोले, "आज के नौजवान निहायत बदतमीज हो गए हैं। तहजीब खाक में मिलती जा रही है।" होल्डाल के पास बैठे हुए महाशय जी वहीं से बोले, "जी हां, आप बिलकुल ठीक कहते हैं।"

वीरेश्वर भाई के मन में बिल्कुल आ रहा था कि वे लड़ पड़ें। अगर मुन्नू की मां साथ में होती तो वे निश्चय ही अब तक लड़ाई का श्रीगणेश कर चुके होते। लेकिन मन मसोसकर रह गए। अखबार बंद कर दिया और उदास होकर सोचने लगे। ख्याल आने लगा कि भगवान की सृष्टि में अवश्य कोई खराबी है। इस तरह मुन्नू की मां और देश के भविष्य के बाद भगवान की सृष्टि का पतन आरंभ हुआ।

उन्होंने अखबार को बिल्कुल समेटकर उपन्यास के नीचे दबाकर रख दिया। उपन्यास या अखबार, कुछ भी पढ़ना असंभव था। ट्रेन चलती चली जा रही थी। अगले स्टेशन पर

बुजुर्गवार और महाशय जी दोनों उतर गए। वीरेश्वर भाई उदास बैठे रहे।

सहसा एक मीठी आवाज आई, "क्या यह अखबार आपका है?" एक महिला मुस्कराती हुई, चूड़ियां खनकाती हाथ बढ़ा रही थी। वीरेश्वर भाई ने शांत स्वर में उत्तर दिया, "जी हां, एक बार पढ़ने का एक आना लेता हूं।" महिला सहमी। एक क्षण देखती रही। फिर घबड़ाकर तेजी से दौड़ी और कोने में बैठ गई। वहीं से डरी-डरी बड़ी देर तक वीरेश्वर भाई की ओर देखती रही। वीरेश्वर भाई का मन न लगा तो अखबार फिर उठा लिया और पढ़ने लगे। दो स्टेशनों तक कुछ नहीं हुआ। वीरेश्वर भाई ने इश्तहार से लेकर छापेखाने के नाम तक सब पढ़ डाला। इसी बीच में न जाने कब पग्गड़ बांधे, गांव के चौधरी बगल में आकर बैठ गए। थोड़ी देर वह सुस्ताते रहे। फिर बोले, "कहिए बाबू जी, क्या हालचाल है?"

वीरेश्वर भाई ने अखबार से आंख उठाई। चौधरी जान-पहचान के तो नहीं हैं? यह समझकर कि स्मरण-शक्ति धोखा न दे रही हो पहचानते से बोले, "राम-राम चौधरी, अच्छा ही हूं। आपके बाल-बच्चे तो मजे में हैं?"

चौधरी चौंके, फिर हंसकर बोले, "वाह बाबू जी, आप तो बड़े दिल्लगीबाज मालूम पड़ते हैं।"

वीरेश्वर भाई सहमे, "क्या मतलब?"

"अरे हमने पूछा अखबार में क्या लिखा है?"

वीरेश्वर भाई को जैसे बिजली छू गई। हताश होकर बोले, "खबर आई है कि आज शाम तक प्रलय हो जाएगी।"

और इस तरह मुन्नू की अम्मां, देश के भविष्य और भगवान की सृष्टि तीनों का पतन हुआ।

होना कुछ नहीं का

शरद जोशी

बोर्ड लगा है। खादी भंडार। आयताकार काउंटर, लंबे। पीछे आलमारियों में खादी के थान। हल्के रंगों में मोटे कपड़े। कोसा, साड़ियां, खादी, रेशम और कुछ रेडीमेड कपड़े। आलमारी पर यहां-वहां धूल, बाहर कभी-कभी अंधड़-सा चल जाता है। अभी सुबह के साढ़े नौ ही बज रहे हैं। काउंटर के पीछे एक आदमी सुस्त झुका हुआ है, सिर टिकाए बाहर सड़क की ओर देखता। खादी पहने है, कुर्त्ता-पाजामा। एक और व्यक्ति है। कुर्त्ता-पाजामा के साथ काली जाकेट भी पहने है। हिसाब लगा रहा है। अंदर कंबल के ढेर के सहारे एक और व्यक्ति लेटा हुआ है। टोपी से आंखें ढके हुए। काउंटर के एक कोने पर टेलीफोन रखा है। उस पर भी हल्की धूल चढ़ रही है। ऊपर नेताओं की तसवीरें हैं। आलमारियों पर खादी संबंधी आदर्श वाक्य लिखे हुए हैं। सभी गांधीजी के। खादी की महत्ता बताने वाले।

टेलीफोन की घंटी बजती है। काली जाकेट वाला टेलीफोन की ओर देखता है। "सुनिए, टेलीफोन है", वह दूसरे से कहता है, जो सुस्त बैठा सड़क की ओर देख रहा है। "अब आप ही उठाइए!" वह सिर टिकाए जवाब देता है, "उठाइए उठाइए, हम हिसाब कर रहे हैं।" काली जाकेट वाला जोड़ लगाने लगता है। "हिसाब बाद को कर लीजिएगा, कौन जल्दी है, अभी फोन तो सुन लीजिए।" उत्तर मिलता है, "आप तो कुछ कर नहीं रहे, फिर आप ही क्यों नहीं सुन लेते?"—काली जाकेट वाला कहता है। "आप जहां बैठे हैं उसके पास ही है, हाथ बढ़ाएंगे तो सुन लेंगे। हम यहां दूर बैठे हैं।" सुस्त व्यक्ति सड़क से बिना नजर हटाए बोलता रहता है। "सवाल दूर-पास का नहीं है, हम हिसाब कर रहे हैं, यहां से ध्यान नहीं तोड़ सकते। आप कुछ नहीं कर रहे। आप टेलीफोन पर जवाब दे सकते हैं।" काली जाकेट वाले ने उसे इस बार स्पष्ट समझाया। "प्रश्न यह नहीं है। हम उठ भी सकते हैं। पर सोचते हैं, कोई जरूरी फोन हो, तो आप ही उचित उत्तर दे सकेंगे।" "अब उठ भी जाइए, घंटी बज रही है, जवाब दे दीजिए।" इस पर दूसरे व्यक्ति ने सड़क से नजरें हटाकर उसकी ओर देखा और कहा, "क्या जवाब देना है?" "अब फोन सुनिएगा तभी न कहिएगा कि क्या जवाब होगा। अभी से कोई कैसे बता सकता है?" इस पर वह सुस्ती

से गंभीर चेहरा लिए फोन की तरफ बढ़ा और उसे उठाने के पहले काली जाकेट वाले से बोला, "हम समझे शायद आप जानते हों। हलो, हलो। हां हम बोल रहे हैं खादी भंडार से। खादी भंडार। हां-हां। क्या कहा कपड़ा चाहिए? तो यहां कपड़ा ही तो बिकता है और क्या, आइए और ले जाइए। जी, हां जी, कहां से बोल रहे हैं? थियेटर से?

"थियेटर का भी कपड़ा है, पड़दा-उड़दा लगाना है क्या? शौक से लगाइए। रंगीन कपड़ा है छापादार, जौन रंग का कपड़ा चाहिए, तौन रंग का कपड़ा ले लीजिए। या यों तो रंगवा लीजिए। थियेटर का कपड़ा तो बहुत है। क्या कहा? आपरेशन थियेटर से बोल रहे हैं? कहां लगा है यह आपका थियेटर? हां, हां, आपरेशन थियेटर। अरे हमहू देखेंगे। ऐसी क्या बात है साहेब। हैं! अस्पताल में! अस्पताल में थियेटर लगा है! वाह, आप अस्पताल से बोल रहे हैं! और क्या। थियेटर में फोन नहीं होगा ना! अरे साहेब, हम क्या गलत समझ रहे! आप जो बोल रहे सो ही समझ रहे। आपको थियेटर के लिए कपड़ा चाहिए सो है रंगीन। छापादार। ऐं, सफेद चाहिए, अस्पताल के लिए, थियेटर में अस्पताल का सीन बनाइएगा क्या? कोई डाक्टर-आक्टर का तमाशा है, नर्स-उर्स। नहीं, अरे, हम क्या गलत समझे, जो आप बोल रहे सो ही समझे। थियेटर में तो रंगीन कपड़ा चलता है। देखिए श्रीमान जी, आप यहां आ जाइए और जैसा चाहिए, ले जाइए। आपरेशन थियेटर या जौन भी थियेटर हो। नमस्कार, हां जी, नमस्कार!" उसने फोन रख दिया।

"क्या पूछ रहे थे?" काली जाकेट वाले ने पूछा।

"आप अपना हिसाब-किताब में लगे रहिए। आपको क्या करना, कोई क्या बोल रहा है। हमने फोन सुना और जो उचित जवाब था, सो दे दिया। पर इतना बता देते हैं कि अब से फोन आएगा तो आप उठिएगा।" और वह व्यक्ति फिर काउंटर से सिर टिका सड़क की तरफ देखने लगा।

कंबलों के सहारे लेटे व्यक्ति ने आंख पर से टोपी हटाकर पूछा, "क्या बात हुई?"

"कुछ नहीं। टेलीफोन सुना नन्दराम जी ने। हम पूछ रहे हैं कि काहे बात का फोन था, तो जवाब नहीं दे रहे हैं। कह रहे हैं आपको मतलब!"

"प्राइवेट फोन होगा?"

"अरे नहीं, दुकान का था।"

"भाई नन्दरामजी, आपको बताना चाहिए। जब मैनेजर साहब न हों, तो सदाशिव जी ही मैनेजर हैं। आपको बताना चाहिए। वे प्रधान हैं।"

"प्रधान हैं तो स्वयं जाकर टेलीफोन क्यों नहीं उठाते? जवाब हमको देने को क्यों कहते हैं।"—नन्दरामजी ने कहा।

"हम हिसाब कर रहे हैं।"

"तो आप हिसाब ही कीजिए। फिर यह क्यों जानना चाहते हैं कि हमारी फोन पर

क्या बातचीत हुई?"

"प्रश्न सिद्धांत का है।" कंबलों से टिककर लेटे व्यक्ति ने पुनः टोपी आंखों पर खिसका ली और सो गया।

"हां, सिद्धांत का ही है।" नन्दरामजी ने दुहराया, "जो टेलीफोन करेगा वह अपनी बात को अपने पास रखेगा। आप हिसाब करिए।"

"कोई गुप्त बात है क्या?"

"गुप्त हो, चाहे न हो।"

नन्दराम जी यह बात कह ही रहे थे कि एक लड़का, जो टेरेलीन का बुश्शर्ट और नैरो पैंट पहने हुए था, खादी भंडार में घुसा। उसने आते ही पूछा, "आपके यहां रेडीमेड कपड़े हैं?" लड़के ने नन्दराम जी को देखकर ही यह बात पूछी थी सो उत्तर नन्दराम जी को ही देना पड़ा। उन्होंने दिया, "हैं क्यों नहीं? तमाम रेडीमेड पड़ा है, आपको दिखाई नहीं देता!"

"मुझे क्या मालूम!" लड़का बोला।

"ईश्वर ने आपको आंखें दी हैं। आप स्वयं देख सकते हैं। सामने आलमारी में तमाम रेडीमेड पड़ा है। आपको क्या चाहिए, सो बताइए?"

"कुर्त्ता-पाजामा।"

"ऐसा कहिए ना। आप तो कह रहे हैं रेडीमेड है क्या? रेडीमेड तो बहुत कुछ होता है।"

"मुझे कुर्त्ता-पाजामा चाहिए।"

"किस नाप का? आपके ही लिए चाहिए या किसी दूसरे के लिए?"

"आपकी नाप का कुर्त्ता-पाजामा निकाल दीजिए।" नन्दराम जी ने काली जाकेट वाले सदाशिव से कहा।

"आप ही निकाल दीजिए, हम हिसाब कर रहे हैं।"

"हां भाई।" सदाशिव जी ने गंभीर होकर कहा, "हिसाब जरा बड़ा है।"

"सो तो हम नहीं जानते। हम तो यह देखते हैं कि जो कोई ग्राहक आए तो आप हिसाब कर रहे हैं और जो कोई फोन आए तो आप हिसाब कर रहे हैं।"—नन्दराम जी ने सदाशिव जी को घूरते हुए कहा।

"अब आप कुर्त्ता-पाजामा तो निकाल दीजिए आपको।"

"हां, सो तो दे ही रहे हैं। उसमें क्या बात है।" नन्दराम जी ने आलमारी से कुर्त्ता-पाजामा निकाल टेरेलीन की बुश्शर्ट पहने लड़के की ओर बढ़ाया और सिर खुजाने लगे। लड़के ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए उन कपड़ों को देखा और कहा, "मुझे लगता है यह बड़ा पड़ जाएगा।"

"सो तो अच्छी बात है।" नन्दराम जी बोले।

"ढीला होगा न।"

"शुरू में होगा। बाद में एक धुलाई हो जाने पर थोड़ा सिकुड़ेगा, सो फिट आ जाएगा।"

"मुझे अभी इंटरव्यू में जाना है। बिलकुल फिट चाहिए।"

"कहां जाना है?"

"इंटरव्यू में।"

"क्या होता है इंटरजू?"

"नौकरी के लिए होता है भाई। मुझे बिलकुल फिट चाहिए। आप इससे छोटा नंबर निकालिए।"

"एक बार की बात है। थोड़ा ढीला ही पहन लीजिए। बाद में ठीक हो जाएगा।"

"आप बाद की फिक्र न करें। मुझे इससे छोटा नंबर निकालकर दें।"

"सोच लीजिए, हम तो आपके ही लाभ के लिए कह रहे हैं।"

"धन्यवाद। आप दूसरा निकालिए।" लड़के ने कहा।

"अजीब बात है। आप धन्यवाद भी देते हैं और अपने ही फायदे की बात भी नहीं मानते।" नन्दराम जी दूसरे नंबर का कुर्ता-पाजामा निकालने लगे।

"ग्राहक जो कपड़ा चाहता है, वही देंगे न आप या अपनी मर्जी का देंगे?" सदाशिव जी बोले।

"आप अपना हिसाब-उसाब कीजिए।"

"मैं क्या यहां कपड़े पहनकर देख सकता हूं?" लड़के ने पूछा।

"जरूर पहन सकते हैं। अंदर लंगोट-उंगोट तो पहने होंगे ना? फिर क्या? शौक से पहन लीजिए। आप कोई महिला हैं! चाहे उधर से घूमकर अंदर चले जाइए, वहां पहन लीजिए।"

लड़का कुर्ता-पाजामा हाथ में ले काउंटर से घूमकर अंदर गया, जहां कंबलों के ढेर से टिककर एक व्यक्ति लेटा था। नन्दराम जी ने उस व्यक्ति को जरा संबोधित करते हुए कहा, "भाई जी, जरा बाबू साहब कपड़ा बदलने आ रहे हैं।"

"अरे तो आएं, सुसरे हम कौन उन्हें देख रहे हैं।" लेटे हुए व्यक्ति ने टोपी को और अधिक आंखों पर खिसकाते हुए कहा। तब तक लड़का अंदर पहुंच गया था।

तभी टेलीफोन की घंटी बजी।

"अब आप सुनिए।" नन्दरामजी ने सदाशिवजी से कहा। सदाशिव जी ने उत्तर नहीं दिया। वे हिसाब लगाते रहे।

"हम कह रहे हैं अब आप ही सुनिए। हम जरा ग्राहक में लगे हैं।" उन्होंने फिर दुहराया।

"ग्राहक तो अंदर कपड़ा बदल रहा है आप उसमें क्या लगे हैं?"

"हमने कपड़ा निकालकर दिया तभी न बदल रहा है, नहीं तो कैसे बदलता। हम कह रहे हैं हम ग्राहक में लगे हैं। आप स्वयं देख रहे हैं। वे सज्जन अभी कपड़े बदलकर आ सकते हैं। दूसरा कुछ मांग सकते हैं। आप देख रहे हैं। हम काम में हैं। आप खुद उठिए और टेलीफोन पर जवाब दीजिए।"

"हमें तो आप कोई काम करते दिखाई नहीं देते अभी। आप फोन सुन सकते हैं।"

"यों तो आप भी हमें कोई काम करते दिखाई नहीं देते।"

इसी समय दुकान के अंदर एक नेताजी घुसे, तो सदाशिव जी खड़े हो गए और नमस्कार करने लगे।

"आप फोन सुनिए, नमस्कार हम कर लेंगे।" नन्दरामजी ने उन्हें टोका और स्वयं नेताजी को नमस्कार करने लगे। नेताजी कुछ बोले नहीं। वे घूम-घूमकर कपड़ा देखने लगे। सदाशिव जी ने फोन उठाकर कहा, "खादी भंडार। रांग नंबर।" और फोन रखते हुए नंदराम जी से कहा, "रांग नंबर था।"

"होगा, हमें क्या। हम तो यह जानते हैं कि आप जब फोन उठाते हैं रांग नंबर होता है।"

सदाशिव जी फिर हिसाब करने बैठ गए। वह लड़का अंदर से निकाला, तो कुर्त्ता-पाजाभा पहने था। उसने नन्दराम जी से कहा, "मेरे ख्याल से यह बिलकुल फिट है।"

"हां, फिट तो है, पर हमारी सलाह मानते तो आप ढीला ही लेते, जो सिकुड़ कर ठीक हो जाता।"

"इंटरव्यू में जाना है यार, इसीलिए यह खादी पहननी पड़ती है। कोई नेताजी भी इंटरव्यू बोर्ड में मेंबर हैं, सो खादी पहननी पड़ेगी। ड्रामा करना पड़ेगा सारा।"

"कौन से विभाग में इंटरव्यू है?" नेताजी ने पूछा।

"हरिजन कल्याण में है।"

"अच्छा अच्छा" और नेताजी फिर कपड़े के थान देखने लगे।

"ड्रामे के लिए पहनना पड़ता है।" लड़के ने बड़बड़ाते हुए बटुआ निकाला और नन्दरामजी से पूछा, "कितना बिल हुआ?"

"बिल-उल तो सदाशिव जी आप ही बनाइए। हिसाब-किताब आप ही करते हैं।" नन्दरामजी ने सदाशिव जी से कहा।

सदाशिव जी कुछ बोले नहीं। उन्होंने बिल-बुक पास खींची और दाम लिखने लगे। लड़का दाम चुकाकर तेजी से चला गया।

"अजीब बात है। कुछ देर पहले कोई सज्जन फोन पर थियेटर के लिए खादी का कपड़ा मांग रहे थे और अब ये सज्जन कह रहे हैं ड्रामे के लिए खादी पहननी पड़ रही है।" नन्दराम जी सड़क की ओर देखते हुए बोले।

"हम सब जानते हैं, हमारे विभाग में नौकरी के लिए आया है। मैं तो खुद बैठूंगा इंटरव्यू बोर्ड में। मुझे ही कह रहा था कि एक नेताजी हैं, जिनके कारण खादी पहननी पड़ रही है। मुझे जानता नहीं। अब इंटरव्यू में जब मुझे बैठा देखेगा, तो चौंक जाएगा।" नेताजी ने हंसकर कहा।

"तो क्या आप उसे नौकरी में नहीं लेंगे?"

"नौकरी में क्यों नहीं लेंगे? सामने ही खादी पहनकर गया तो क्या हुआ? जो व्यक्ति परिस्थितियां देखकर अपने को बदल लेता है वह वाकई बहुत होशियार है। मनुष्य को चाहिए कि वह जैसा समय देखे वैसा करे, चाहे मन मारकर ही सही।" नेताजी ने कहा।

"सुंदर बात कही है आपने। सुना सदाशिव जी, परिस्थितियों में मनुष्य को बदलना ही चाहिए, चाहे मन मारकर ही सही। आप देखते हैं टेलीफोन की घंटी बज रही है, तो चाहे व्यस्त क्यों न हों उठकर सुनना ही चाहिए। हर बार कह देते हैं हम हिसाब कर रहे हैं।"

इतने में टेलीफोन फिर बजने लगा। नन्दराम जी ने सदाशिव जी की ओर देख मुंह फेर लिया और काउंटर से सिर टिका सड़क की ओर देखने लगे।

एक दीक्षांत भाषण

रवीन्द्रनाथ त्यागी

भूतपूर्व उपकुलपति जी तथा अभूतपूर्व छात्रो!

आज का दिन हम सभी के लिए गौरव का दिन है। आज मात्र आपकी दीक्षा ही समाप्त नहीं हो रही है वरन कल से यह शिक्षा संस्थान भी बंद होने जा रहा है। आज का समारोह सच्चे अर्थों में दीक्षांत समारोह है। वैसे भी पिछले दो वर्षों से इस संस्थान में छात्र कम और पुलिस बटैलियन ज्यादा उपस्थित रही हैं जो कि एक संतोष का विषय है। आप लोगों के सामूहिक प्रयत्नों के फलस्वरूप इस संस्थान का फर्नीचर, रसायनशाला, पुस्तकालय व दफ्तर पूरी तरह जला दिए गए हैं जिसके लिए आप बधाई के पात्र हैं। जहां तक दफ्तर जलाने का प्रश्न है, संभव है कि वह कदम संस्थान के अधिकारियों के भी हित में ही हो। कागजात रहते तो पता नहीं लाखों रुपए का घोटाला कब पकड़ा जाता। स्काटलैंड की रानी मेरी को कुछ कागजात के आधार पर ही फांसी की सजा दी गई थी। आपने बांस भी तोड़ दिया और बांसुरी भी। आपने जो कुछ किया वह ठीक ही किया। समय के साथ चलना इसी को कहते हैं। मुझे खेद है कि विश्वविद्यालय की इस शानदार इमारत को आप लोग पूरी तरह ध्वस्त नहीं कर पाए मगर इसके लिए ज्यादा दुखी होना उचित नहीं। नीतिग्रंथों के अनुसार मतिमान लोग सर्वनाश के समय आधे को छोड़ देते हैं। इस कारण आपने जो कुछ किया वह नितांत शास्त्रसम्मत ही है।

आज आपको उपाधियां वितरित की जाएंगी। यद्यपि आप में से बहुत से लड़के और लड़कियां पिछले कई वर्षों की अवधि में कक्षा में नहीं पधारे और न आपने परीक्षा में ही भाग लिया, पर डिग्रियां सबको दी जा रही हैं। इसी को कहते हैं सच्चा समाजवाद। सबको श्रेणी भी एक ही दी जा रही है जो साम्यवाद के सर्वथा अनुकूल है। प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी और तृतीय श्रेणी में छात्रों को उत्तीर्ण करना पूंजीवादी पद्धति की देन थी जिसे आप लोगों ने समाप्त कर दिया। मैं आपको इस शुभ कार्य के लिए एक बार फिर से बधाई देता हूं। लार्ड मैकाले की आत्मा जहां कहीं भी होगी, आपको बधाई ही दे रही होगी। वैसे यह भी संभव है कि वह आत्मा संभवतः इस समय मेरी ही देह में छिपी है और यही कारण है कि प्रथम वर्षा के अवसर पर मेंढकों की तरह मैं आज इतना प्रसन्न हूं। खैर, बात कुछ

भी हो, यह जरूर मानना पड़ेगा कि लार्ड मैकाले था एक बहुत बड़ा भविष्य-द्रष्टा। वह जानता था कि एक दिन ऐसा आएगा जबकि इस देश के छात्र पुलिस से निकट संबंध स्थापित करेंगे और इसी कारण उसने एक ओर तो नई शिक्षा की पद्धति निश्चित की और दूसरी ओर ताजीराते हिंद का मसौदा भी तैयार किया।

आज से आपका नया जीवन प्रारंभ होता है। जहां तक लड़कियों का प्रश्न है, उनका भविष्य भी निश्चित-सा है। नियत समय पर वे मातृत्व को प्राप्त हों—यही उनकी नियति है। कुछ तो इस स्थिति को किसी सीमा तक प्राप्त भी कर चुकी हैं जिससे आपके पारस्परिक सहयोग पर प्रकाश पड़ता है। जो युवतियां माताएं नहीं बनेंगी वे भी शायद पत्नियां तो बनेंगी ही। पत्नी बनने से उनके मातृत्व प्राप्त करने के मौलिक अधिकार पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। स्थिति तो दरअसल यह होगी कि जैसे ही वह किसी एक नवयुवक की पत्नी बनेंगी वैसे ही देश के बाकी सारे नवयुवकों की वे स्वतः ही माता हो जाएंगी! मनु के अनुसार दूसरे की भार्या अपनी माता के समान होती है। मेरी पत्नी आपकी माता है और आपकी पत्नी मेरी माता। दूसरे शब्दों में मैं आपका बाप हूं और आप मेरे। ध्यान से सोचिए तो महसूस होगा कि यह बराबरी भी समाजवाद का ही एक चरण है।

जहां तक लड़कों का प्रश्न है, मेरी सलाह है कि वे कुछ रचनात्मक कार्य करें। रेल की पटरी उखाड़ना, सरकारी बसें जलाना, डाकखाने लूटना, पुलिस के साथ हाथापाई करना—यह सभी कुछ रचनात्मक कार्यों की परिधि में ही आता है। बड़ी बात यह है कि इन क्षेत्रों में अभी इतना काम होने को पड़ा है कि आपके बेकार रहने का प्रश्न ही नहीं उठता। रेल की पटरी हमारे देश में इतनी लंबी है कि आपकी पूरी पीढ़ी भी शायद उसे पूरी तरह न उखाड़ सके। खाली बैठने से ऐसे काम करना कहीं बेहतर है। खाली दिमाग तो शैतान की दुकान होता है। आप लोग कुछ टोलियां बना लें और कार्यक्रम प्रारंभ कर दें। पटरी उखाड़ने या बैंक लूटने से पहले यदि आप उसका विधिवत उद्घाटन करवाना चाहें तो स्थानीय नेता को पकड़ लीजिए और उसे तब तक न छोड़िए जब तक वह कम-से-कम एक गज पटरी खुद न उखाड़कर दिखा दे। यदि आप प्रेस रिपोर्टर और फोटोग्राफर का उचित प्रबंध कर सकें तो शायद कोई राष्ट्रीय स्तर का नेता भी इस कार्य के लिए तैयार हो जाए। पटरी तोड़ना, डाकखाने लूटना, बसें जलाना वगैरह कार्यों के करने में आप निरर्थक भय सा संकोच महसूस न करें। संहार सदा से उत्पत्ति का मूल कारण रहा है। आप पुरानी पटरी उखाड़ेंगे, तो नई पटरी बिछाई जाएगी जिससे न जाने कितने और लोगों को काम मिलेगा। महाकवि पन्त के शब्दों में "वृक्षों के जीर्ण-शीर्ण पात मात्र इस कारण गिरते हैं ताकि वनों में फिर से वसंत आ सके।" लड़कियों से छेड़खानियां करना कभी न छोड़िए। देश के लड़के ही अगर यहां की लड़कियों से कतराएंगे तो देश की लड़कियां इस आवश्यकता के लिए क्या विदेश जाएंगी? विदेशी मुद्रा के संकट को ध्यान में रखते हुए ये सारे रचनात्मक

कार्य हमीं को करने होंगे।

इस संदर्भ में मैं आपको यह भी बताना उचित समझूंगा कि ऊपर बताए गए कार्यों को संपन्न करने के लिए आप सरकार का मुंह कभी न ताकिए। सरकार बहुत सतर्क होती जा रही है और स्थिति यह है कि वह शायद ही आपको ऐसा कोई अवसर दे कि आप दंगा करने पर मजबूर हों। ये शुभ कार्य तो आपको निःस्वार्थ भाव से स्वतः ही करने हैं। सरकार कोई गलती करे या न करे, आपको रेल की पटरी उसी भांति उखाड़नी है जिस प्रकार तुलसीदास ने रामायण लिखी थी—स्वांतः सुखाय, बहुजन हिताय। आस्कर वाइल्ड ने इसी को 'कला के लिए कला' कहा है। इसमें लज्जा या संकोच का स्थान ही नहीं है। आप जो कुछ भी करेंगे वह देश के हित में ही होगा। भगवान जो कुछ करता है वह ठीक ही करता है और हम जो कुछ भी करते हैं वह सब भगवान की इच्छा के अनुकूल ही होता है। इस सनातन आर्य पद्धति को आप कसकर पकड़े रहें। यह हमारी संस्कृति है और इसे हमें अखंड रखना है। रेल की पटरी भले ही तोड़ दी जाए, मगर अपनी पुरातन परंपराएं हमें कभी नहीं तोड़नी है। हमारा हित इसी में निहित है। भगवान आपको अच्छी बुद्धि दे!

आप लोगों में से जो दब्बू, कायर, परिश्रमी और चरित्रहीन छात्र हैं वे आगे चलकर राजपत्रित अधिकारी, वकील, डाक्टर या शिक्षक बनेंगे। ये लोग सुबह काम पर निकलेंगे और गठिया के दर्द की भांति संध्या समय फिर अपने घर लौटेंगे। रविवार के दिन वे साइकिल का पंचर ठीक कराएंगे, बड़े अफसरों की जी-हुजूरी करेंगे या अपनी बीवी के साथ पिकनिक करने जाएंगे। ऐसे स्वार्थी व कायर लोगों से मुझे कुछ नहीं कहना। ऐसे विभीषण हर संस्कृति में होते आए हैं और होते रहेंगे। लाल तिकोन भी इन्हें चौकोन नहीं कर सकता। संतोष की बात इतनी ही है कि ऐसे गद्दार छात्रों की संख्या ज्यादा नहीं है और जो है वह भी धीरे-धीरे कम होती जा रही है। भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं।

आप लोगों के बीच खड़े होकर मुझे भी अपने कालिज के दिन याद आ रहे हैं। ओफ, वे दिन भी कितने नीरस थे! दिन-रात पढ़ना, अध्यापक के चपरासी तक को प्रणाम करना और परीक्षाओं के लिए पुरानी कुंजियां खरीदना। प्रत्येक साथ पढ़ने वाली लड़की को दीदी कहना पड़ता था हालांकि मन-ही-मन हम बराबर यह सोचते रहते थे कि काश, यह हमारी दीदी न होकर हमारे साले की दीदी होती। आप लोग महान हैं। आपके कर्म और विचार एक से हैं। आपने अनेक प्यासी आत्माओं की प्यास बुझाई है जिसका मुकाबला सिंचाई की कोई योजना कभी नहीं कर सकती। पढ़ने के बाद हमने क्या किया, वह भी जाहिर ही है। जनता की सेवा में जुट गई, एक अदद मोटर आ गई, एक अदद बीवी भी मिली और जब करने को कुछ और नहीं बचा तो दो-चार अदद बच्चे ही बना लिए। मैंने ये कार्य अपने ही घर में संपन्न किए जबकि आप इन्हें घर के बाहर भी करेंगे।

यह संस्कृति का वैभव-युग है; यह चेतना का स्वर्ण-काल है। आप लोग जीवन में आगे बढ़ें, यही मेरी हार्दिक कामना है। मेरी दूसरी कामना यह है कि जब तक मैं बाहर न चला जाऊं तब तक आप अपने टमाटर और अंडे अपनी जेबों में ही रखे रहें। मेरे जाने के बाद आप उनका जो चाहें वह प्रयोग करें। शाकाहारी शिक्षकों के मुंह पर टमाटर का प्रयोग करें और सामिष्टाहारी प्राध्यापकों के मुखों पर अंडों का। इससे आपका कार्यक्रम भी संपन्न हो जाएगा और शिक्षकों के भी चोट केवल शरीर तक ही रहेगी, वह उनकी भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचाएंगी।

मुझे बुलाने के लिए फिर से एक बार धन्यवाद। मुझे यह हार्दिक और शारीरिक खेद है कि मैं यहां ज्यादा देर नहीं ठहर पाऊंगा क्योंकि ठीक अभी मुझे एक देशी शराब की दुकान का उद्घाटन भी करना है। कुटीर व्यवसायों में मेरी रुचि बराबर रही। खैर, जब भी मेरे योग्य कोई सेवा हो, मैं हमेशा हाजिर हूं। जाने से पहले एक बात जरूर कहूंगा और वह यह कि आप किसी भी स्थिति में परम पिता परमात्मा को न भूलें। वही सारी सृष्टि चलाता है और यह उसी का चमत्कार है कि मेरे जैसा निकम्मा आदमी भी आज इस प्रख्यात शिक्षा-संस्थान में दीक्षांत भाषण दे रहा है। प्रभु की लीला अपरंपार है। पहले हमारा मात्र एक देश था मगर धर्म और भगवान के नाम पर इसके तीन भाग हो गए। जो काम भूगोल नहीं कर सका वह इतिहास ने कर दिखाया। अगर आप सही अर्थों में धर्मात्मा बने रहे तो इस देश के और भी खंड हो सकते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैं भगवान की स्तुति में कही गई एक कवि की इस उक्ति के साथ इस भाषण को समाप्त करता हूं :

जब खुदा मेहरबान होता है,
तो गधा पहलवान होता है।

मैंने किया है

सुदर्शन मजीठिया

इस मल्टीकलर दुनिया में जहां एक ओर रंग-बिरंगे जीव मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर इस प्रकार के जीव भी मिलते हैं जो किसी भी कार्य की पूर्णता व सफलता का श्रेय स्वयं लेना चाहते हैं। यदि आप उनसे पूछें कि यह कार्य किसने किया है तो वे सीना तानकर आपसे झट कहेंगे, मैंने किया है। 'मैंने किया है' का अंतर्राष्ट्रीय वर्ग, देश और राष्ट्रों की सीमा को नहीं पहचानता। अमुक कार्य की समाप्ति व पूर्णता में न जाने कितने लोगों का हाथ रहता है। साथ ही अन्य कितने ही तथ्य होते हैं, जिनसे उस कार्य में सफलता मिलती है, लेकिन यदि आप पोपटलाल जी से पूछें कि यह कार्य किसने किया है तो आपको रेडीमेड उत्तर मिलेगा, 'मैंने किया है।'

माल-सामान से भरी एक गाड़ी सड़क पर ठीक-ठीक स्पीड से आगे बढ़ी जा रही थी। गाड़ी के बैलों के डील-डौल को देखकर मेरी तबीयत प्रसन्न हो गई। आश्चर्यवश पहले तो मैंने उस गाड़ी की परिक्रमा कर डाली फिर पूछा कि यह गाड़ी कौन ढो रहा है? बैलों को गोस्वामी कहने का मुझे तो कोई हक नहीं था, परंतु मेरे प्रश्न का उत्तर देने की भी फुरसत बैलों को नहीं थी। वे अपनी मस्ती में आगे बढ़े जा रहे थे। कहीं से एक बारीक आवाज आई, "यह गाड़ी मैं ढो रहा हूं।" मुझे आश्चर्य हुआ और मैं सोचने लगा कि भला यह आकाशवाणी कहां से हुई? मैंने चारों ओर देखा। देखते-देखते देखता हूं कि गाड़ी के नीचे एक तगड़ा-सा कुत्ता मस्त चाल से अकड़ता हुआ चला जा रहा है। उसने मुझे घूरते हुए कहा, "यह गाड़ी मैं ढो रहा हूं।" उस गाड़ी के नीचे कुत्ता इस विश्वास के साथ आगे बढ़ा जा रहा था कि उस गाड़ी के बोझ का उत्तरदायित्व जैसे उसी पर हो। मुझे भी उस अस्वाभाविक यथार्थता को अपने गले उतारना पड़ा। मैंने करबद्ध नतमस्तक हो कहा, "महाशय जी, आप जो कहें, वह इस दास को स्वीकार है।"

सोचते-सोचते मैं एक दिन सोच रहा था कि दुनिया में यह जो सबके सिर के ऊपर नीली छतरी टिकी है, इसका भला क्या रहस्य है? एक छत को संभालने के लिए कम-से-कम चार खंभों की जरूरत होती है लेकिन इतनी विशाल नीली छत के नीचे तो एक भी खंभा नहीं नजर आता, आखिर इसका रहस्य क्या हो सकता है? खाली जेबों में हाथ डाले आसमान

की ओर मैं ताकता रहा। यह सवाल बार-बार मैंने आसमान से किया किंतु कोई उत्तर नहीं मिला। आखिर एक दिन उत्तर मिला, "यह आसमान हमारे कंधों पर टिका है।" मैंने देखा कि चिड़ियों का एक समूह पंख फड़फड़ाता हुआ मुक्त गगन में विहार कर रहा है—मेरे प्रश्न का शाश्वत उत्तर उन्होंने उड़ते-उड़ते दिया। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि यह आसमान उन्हीं के कंधों पर टिका है। सुनकर मैंने कहा, "दास को उत्तर मिल गया।"

जब मैं दुनिया के देशों की क्रांति का इतिहास पढ़ता हूं, तो मेरे सामने भी रंगीन सपना साकार हो जाता है। मैं कल्पना करता हूं कि मेरे देश में एक दिन क्रांति अवश्य होगी। और उस दिन सारे जहां से अच्छा इस मेरे हिंदोस्तां का कायाकल्प हो जाएगा। मुझे खुद नहीं मालूम कि आखिर मेरे सपनों की यह क्रांति कौन करेगा? कब करेगा? कैसे करेगा? और दुनिया के गुलिस्तान हिंदोस्तां में किस जगह से इस गोल्डन क्रांति का आरंभ होगा। क्रांतियों का इतिहास पढ़ते-पढ़ते अनजाने में यह क्रांतिकारी विचार मेरे अंदर घर कर गया है कि यह क्रांति अगली सदी में अवश्य होगी। जिस क्रांति को गांधी और अरविन्द नहीं सफल बना सके, उस क्रांति को मेरा यह क्रांतिकारी अवश्य सफल बनाएगा। उस दिन सब जाम भर जाएंगे, कोई भूखा नहीं रहेगा, हर जागरण का मारा रात को गहरी नींद सोएगा, हर खटिया खटमल से शून्य हो जाएगी। कोई गरीब नहीं रहेगा, क्योंकि अमीर अपनी सुरक्षा के लिए सरकारी दबाव में आकर गरीबों से अपनी संपत्ति का बंदरबांट करेंगे। कोई प्रेमी उदास नहीं होगा, क्योंकि प्राइवेट तौर से प्रेम करने के बाद भी सरकारी तौर से विवाह करने की व्यवस्था होगी। सिर्फ शर्त इतनी ही होगी कि उन प्रेमियों को अपनी संतान सरकारी मर्यादा के अंदर रखनी होगी। उस दिन आगे बढ़कर जब उस क्रांतिकारी से मैं पूछूंगा कि यह क्रांति किसने की तो वह पड़ोसी से उधार ली हुई छाती फुलाकर उत्तर देगा कि यह क्रांति मैंने की है।

वैसे एक बात है—'मैंने किया है' का नशा एक रायल नशा होता है। इसकी खुमारी किसी मुगल बादशाह की खुमारी से कम नहीं होती। जिस प्रकार भारत का गेहूं अमरीका में पकता है, उसी प्रकार काम करने वाला कोई और होता है और 'मैंने किया है' कहने वाला कोई और है। इस विश्वास का जब आध्यात्मिक विस्तार हो जाता है तो चमचे कड़छे बन जाते हैं। और इन नए हाईब्रीड कड़छों के सामने अच्छे-अच्छे पुराने कड़छे बगलें झांकने लगते हैं। जिस प्रकार यज्ञों के शांतिपूर्ण वातावरण से केवल एक ही ध्वनि गूंजती रहती थी : 'ओं शांति ओं शांति . . .शांति।' यदि इनके सामने साक्षात ईश्वर भी आ जाए तो वे उससे यही कहेंगे कि 'इस सृष्टि को हमने बनाया है।' और एक ईश्वर होगा, कि जो अपनी सलामती के लिए सिर झुकाकर उत्तर देगा, 'आप लोगों का कहना ही ठीक है।'

एक मुर्गे की जनानी बांग सुनकर मैंने पूछा, 'यह बांग किसने दी?' "मैंने" एक मुर्गीनुमा मुर्गे का उत्तर था। बांग देने वाले मुर्गे को मैंने घूरकर देखा। मुर्गे ने मुझे देखा। दोनों की

आंखें चार हुई। वह मुर्गा मुस्कराता हुआ पंख फड़फड़ाता हुआ आगे बढ़ गया। कुछ ही दिनों के बाद मेरे हाथ में एक अंडा देखकर वह मुर्गा प्रश्न कर बैठा, "जानते हो यह अंडा किसने दिया है?"

"किसने?"

"मैंने।"

"यह कैसे?"

"यदि अंडे की मदर 'बांग' दे सकती है, तो क्या मैं अंडा नहीं दे सकता?"

मैं पूरे जोश के साथ चिल्लाया, "क्यों नहीं। क्यों नहीं।"

मैंने उस मुर्गे का सौंदर्य निरीक्षण किया, किंतु क्या सत्यम्, क्या शिवम् और क्या सुंदरम् —- एक भी तत्व उसकी शक्ल में मुझे नहीं दिखाई दिया। लेकिन जब लोग मुर्गे को मारकर 'चिकन फ्राइ' तैयार कर खाते हैं, तो सहसा उनके मुंह से निकल जाता कि 'व्हाट ए ब्यूटीफुल मुर्गा।' जिसको जीते जी कोई नहीं पूछता, वही मुर्गा शहीद होकर ब्यूटीफुल हो जाता है।

मुर्गे के मामले में आज तक यह रहस्य मुझे समझ नहीं आया कि सौंदर्य वस्तुगत होता है या मनोगत? यदि आप पूछें कि यह मुर्गा किसने बनाया? तो खाने वाला कहेगा, "मैंने बनाया।' वैसे हर आदमी अपनी जिंदगी में कम-से-कम एक मुर्गे की तलाश में तो रहता ही है।

एक घोड़े को लोटास लगी तो वह धूल में लोट-लोट कर, इस नश्वर सृष्टि का आनंद लूटने लगा। उसे देखकर मुझे कौतूहल हुआ। नजदीक जाकर मैंने उससे पूछा, 'हे अश्वराज, आपके पूर्वजों ने अश्वमेध यज्ञ का श्रेय प्राप्त किया है, फिर आपको क्या तकलीफ हुई कि आप इस तरह धूल में लोटने लगे? आपकी सेवाओं का मैं मौन प्रशंसक हूं, लेकिन आप आज धूल में क्रांति करने के मूड में लगते हैं। क्या बात है? सच कहिए।" अश्वराज ने अपनी दुलत्तियां आसमान की ओर दिखाते हुए कहा, "आज सारा आसमान मैंने अपनी लातों पर उठाया है। जाओ, इस बात का प्रचार करो कि अश्वराज की दुलत्तियों में आसमान को उठाए रखने की भी शक्ति है।"

एक हाथी अपनी मस्त चाल से झूमते हुए चला जा रहा था। हर प्रकार के साइज के अनेकानेक कुत्ते उस हाथी के आसपास पूरे दमखम के साथ भौंकते हुए चले जा रहे थे। उन कुत्तों में कोई छोटा-मोटा पिल्ला था तो कोई शेर का अवतार। मैंने एक कुत्ते से पूछा कि आखिर तुम्हारी समस्त जाति हाथी पर क्यों नाराज है?

"हम नाराज कहां हैं?" एक कुत्ते ने गुर्राकर कहा।

"तो भौंक क्यों रहे हो? हाथी के चलने से तुम्हारा क्या बिगड़ रहा है?"

"हम भौंक रहे हैं, इसलिए तो हाथी चल रहा है। यदि हम न भौंकते तो हाथी चलता कैसे?" हाथी के चलने तथा कुत्तों के भौंकने में मुझे कुछ तालमेल नहीं नजर आया। मुझे

यह छोटी-सी बात समझ नहीं आई कि कुत्तों के भौंकने से हाथियों को किस प्रकार विटामिन मिलते हैं। मैं चुप हो गया। यदि चुप न रहता तो कुत्तों का वह हुजूम मुझ पर टूट पड़ता। मैं गंभीर होकर एक तटस्थ कुत्ते के पास जाकर उसकी पूंछ की गोलाई का सौंदर्य निरीक्षण करने लगा। मैंने श्वानदेव की पूंछ को सहलाने की भी कोशिश की। श्वानदेव गुर्रा उठे। मैंने कहा, "आपकी पूंछ की गोलाई पर मैं फिदा हूं। आप इतनी सुंदर गोलाई किस कारखाने में जाकर बनवाते हैं? कुत्ते ने गंभीर होकर कहा, "हर कुत्ते में सौंदर्य की एक भावना होती है। सौंदर्य की उसी भावना के आधार पर हर कुत्ता अपनी पूंछ को स्वयं गोल करता है। हम स्वावलंबी हैं और योगी भी। हमें परावलंबन के कारखाने में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।" मैंने सोचा कि यदि कुत्ते की पूंछ डंडे की तरह सीधी होती तो उसकी वर्तमान गोलाई का सौंदर्य तो लुप्त ही हो जाता। ढाई अक्षर के जिस शब्द की महिमा कबीरदास ने गाई है, वह शब्द, सर्वव्यापक, प्रभावशाली व उतना ही खतरनाक है। सामान्यतः हर कोई चाहता है कि उसे प्रेम करने का अवसर मिले। प्रेम के मैदान में क्रांति करने वाले अक्सर मजनूं व देवदास की पंक्ति में शरीक होना चाहते हैं। प्रेमियों का ऐसा ही दल आपको सिनेमागृहों में मिलेगा। सिनेमा देखते-देखते नायक-नायिका से तो उन्हें प्रेम होता ही है परंतु इस प्रेम का जब विस्तार हो जाता है, तो उनका यह प्रेम वे जिस कुर्सी पर बैठते हैं उसी से हो जाता है। वे चाहते हैं कि उस कुर्सी को घर लेते चलें, परंतु जब कुर्सी को घर ले जाना संभव नहीं होता तो विवशतावश उनका प्रेम मात्र गद्दियों तक ही सीमित हो जाता है। परिणामस्वरूप वे डनलप व फोम की गद्दियों पर ही हाथ साफ कर लेते हैं। हर सिनेमागृह में अपको ऐसी कुर्सियां सिर धुनती मिलेंगी।

जो प्रजा कल तक अपना पैंदा जमीन पर रगड़ती थी, क्या उसे कुर्सियां शोभा देती हैं? मैंने कितने ही डनलप प्रेमियों से यह प्रश्न किया, परंतु किसी माई के लाल ने छाती खोलकर यह उत्तर नहीं दिया कि 'गद्दियों का डनलप या फोम मैंने चुराया है।' ईसा के गिरिवचन तो कहते हैं कि अपने पड़ोसी से प्रेम करो परंतु चरणदास जी को शिकायत रहती है कि अक्ल तो उनके पास है, जबकि पैसा पड़ोसी के पास है। तो भला ऐसे पड़ोसी से चरण दास जी कैसे प्रेम करें? चरणदास जी के विचारों के अन्य सहभागी हैं सर जानकीनाथ। प्रेम के मैदाने-जंग में दोनों आज तक असफल रहे हैं। अब तो उनकी खोपड़ी भी चिकनी हो गई है। उनके रहे-सहे बाल भी त्यागपत्र देने की तैयारी कर रहे हैं, परंतु सर जानकीनाथ व चरणदास जी की इच्छा है कि यदि प्रेम के मैदान में उन्हें सफलता मिले तो वे अपनी एक फुट छाती को फुलाकर अपने घर की छत से यह घोषणा करेंगे कि 'यह प्रेम हमने किया है।' इसके विपरीत यह भी देखा गया है कि काम करने वाले की भाषा सदैव मौन होती है। वह भाषा उसके कार्य द्वारा ही व्यक्त होती है। लाइट हाउस अपने कार्य के माध्यम से ही अपने आपको व्यक्त करता है। आम के वृक्ष को यह घोषणा नहीं करनी

पड़ती कि ये आम उसने पकाए हैं। परंतु जब एक व्यक्ति विशेष को या वर्ग विशेष को इस बात का विज्ञापन करना पड़े कि यह कार्य उसने ही किया है तो स्पष्ट हो जाता है कि बोलने वाला इस विज्ञापन द्वारा अपने अहं को संतुष्ट करना चाहता है। 'मैंने किया है' का श्रेय होने के पीछे असंतुष्ट हीन भावना ग्रंथि ही काम करती है। उसी हीन भावना ग्रंथि का यह प्रतिक्रियात्मक रूप है। आदमी का निर्माण किया ईश्वर ने परंतु ईश्वर की खोज अपने हित के लिए मनुष्य ने की। ईश्वर की खोज कर मनुष्य ने डिक्लेअर किया, 'ईश्वर को मैंने बनाया।' किसने किसको बनाया, यह तो आदमी को उसकी मौत के बाद ही पता चलेगा।

एक कौमी गाली, पूरी कौम के नाम

मनोहर श्याम जोशी

वह यादगार शाम!

वेस्टर्न रेलवे वालों की एक घरेलू डाक्यूमेंटरी की पटकथा पर सिर खपाने के बाद मैं गोधूलि बेला उनके दफ्तर से थका-मांदा बाहर निकला। सोचा, गेस्ट हाउस जाने से पहले चर्चगेट स्टेशन के बाहरी स्टाल पर चाय पी आऊं।

एक कप चाय और एक प्लेट पकौड़ी लेकर शुरू हुआ ही था कि पीछे से आवाज आई, "एक प्याला चा का सवाल उठा सकते हैं हम। बहुत जोर दोगे तो पकौड़ियों को भी पूछ लेंगे।"

पलटकर देखा—खलीक। और विचित्र वेश में। मैला-फटा पायजामा और उल्टी पहनी हुई खादी की मैली गंजी। चेहरे पर दाढ़ी की कुछ हफ्तों की बढ़वार। पांव नंगे। दांत पता नहीं कब से साफ नहीं किए हुए।

खलीक के सवालात पूरे किए। फिर उससे पिंड छुड़ाने की कोशिश।

"गोया तुम्हारे ये नक्शे हैं कि मेरे साथ रहना तक गवारा नहीं?" उसने तुनककर कहा, "आपकी बुर्जुआ नाक को बदबू आती है क्या मुझसे? कह दीजिए, कह दीजिए कि आती है।"

मैं भला क्यों कबूल करता। यों उस साबुन-पानी से अनजान जिस्मे जीनियस से पसीने की खट्टी गंध के भभके-से उठ रहे थे।

खलीक ने मुझे कालर से पकड़ा और मेरी नाक अपनी बालों से भरी कांख में घुसा दी, "कहिए कुछ महक मिली आपको मेहनतकश हिंदुस्तानी की?"

मैंने उसे धक्का दिया तो वह हाथापाई पर उतर आया। मैं बहुत आसानी से उसे पीट सकता था लेकिन जोशी जी के अनुसार पिटकर भी वह जीतता। उसके गलत-सही चाहे जैसे 'विद्रोह' के समक्ष मेरी 'समझौतापरस्ती' हारी हुई ही ठहर सकती थी। मैं 'समझौतापरस्त' यों था कि मैंने नौकरी-वौकरी कर ली थी।

मैंने फिलहाल उसी 'समझौतापरस्ती' से काम लिया और कहा, "खलीक, मैं भी तुम्हारी तरह मेहनतकश ही हूं। कलम घिसकर पेट पालता हूं। आज ही देखो छुट्टी थी लेकिन दिन-भर

एक डाक्यूमेंटरी लिखने में झक मारी। मैं तो अभी हजार रुपए माहवार वाला टुट-रूं-टूं साहब भी नहीं बना।"

खलीक कुछ नरम पड़े। फिर उन्होंने मंगलकामना की, "बन जाओगे साले टुट-रूं-टूं साहब! उससे ज्यादा तुम कुछ बन भी नहीं सकते।"

उसके बाद खलीक सिलसिलेवार हमारे उन तमाम परिचितों की क्रांतिकारी आत्मा की तृप्ति के लिए अंजलि देते गए जो कुछ बन गए थे।

तर्पण करके खलीक प्रसन्न हुआ। लेकिन यही प्रसन्नता गले पड़ गई। अब उसे यह जिद थी कि अंधेरी ईस्ट की झोंपड़पट्टियों में चलूं जहां वह डेरा डाले था। उसका कहना था कि जैसे अभी मेरी कांख सूंघकर तुममें कुछ ताजगी आई है वैसे ही वहां की गंध सूंघकर तुम अपने तमाम बुर्जुआ बासीपन से छुटकारा पा जाओगे। उसका दावा था कि शैलेन्द्र के जो गीत इधर हिट हुए हैं वे खलीक के झोंपड़े में चार घंटे बिताने पर मिली प्रेरणा के ही प्रसाद थे।

''कुछ तो शर्म करो यारो। कामरेड बने घूमते हो,'' खलीक ने कहा, ''तुम्हारा गांधी बाबा तो कामरेड भी नहीं था, उसके लिए तो सारे बिरला हाउस खुले हुए थे, वह एक झोंपड़े में रहता था ताकि इस गोबर मुल्क से उसकी ट्यूनिंग बनी रहे।"

लानत-मलामत से वह गाली-गलौज पर पहुंचा, फिर गाली-गलौज से आगे बढ़कर बेढब हस्त-मुद्राओं पर, और अंत में पराकाष्ठास्वरूप अंग-प्रदर्शन पर उतर आया। हारकर मैं उसके साथ अंधेरी जाती डबल-फास्ट में चढ़ गया। सारे रास्ते में ट्रेन के और उसके प्रवचन के हिचकोले खाता रहा। इस प्रवचन में स्पष्ट चेतावनी दी गई थी कि मनोहर श्याम जोशी वगैरह-वगैरह अदब के सारे हरामजादे, अपनी-अपनी मीडिओक्रिटी की दलदल में लोट लगाते-लगाते एक दिन उसी में धंसकर मर जाएंगे और इन भगिनीभंजकों का कोई नामलेवा तक न होगा। लेकिन यह खलीक, जिसके कलाम से टुकड़खोर अदीब घबराते हैं और जिसकी शख्सियत को देखकर वे घिनाते हैं, यह सदियों-सदियों तक, किताबों में और पढ़ने वालों के दिलों में जिंदा रहेगा। खलीक ने यह भी बताया कि जो भी बीड़ी की जगह सिगरेट, नौटॉक की जगह व्हिस्की, भुखमरी की जगह तर माल, बेकारी की जगह नौकरी, द्विविधा की जगह सुविधा, हथेली की जगह टिश्यूपेपर, गूदड़ की जगह डनलपपिलो अपना चुके हैं, और फिर भी इस गरीब मुल्क के अदीब होने का दंभ भरते हैं, वे सबके-सब अगम्या-विशेष से अकृत्य-विशेष करने के दोषी हैं। साहित्यकारों के स्वर्ग में उनका प्रवेश निश्चय ही निषिद्ध होगा। वहां उस स्वर्ग में इस आलतू-फालतू मुल्क, जबान और अदब का कोई नुमाइंदा होगा तो बस यह नाचीज खलीक !

खलीक ने सूचना दी कि इन दिनों यह भूतनी का जीनियस, अपना मास्टरपीस लिखने में मशगूल है, और यह चीज कुछ इतने ऊंचे पाए की हुई जा रही है कि खुद भूतनी का

खलीक इसे पूरी तरह समझ नहीं पा रहा है। इस मुल्क के मीडिओकर अदीब साले क्या खाक समझ पाएंगे? इस बात का पूरा अंदेशा है कि इस नावेल को कोई साला न छापे। छप भी जाए तो कोई साला न पढ़े। पढ़ भी ले तो कोई साला समझ न पाए। और समझ भी ले तो मारे जलन के कोई साला तारीफ न करे। मगर "हमको है विश्वास हम होंगे कामयाब, एक दिन।" एक दिन, देख लेना एक दिन। मगर उस दिन तक तो तुम साले भी कहां जिंदा रहोगे? यह खलीक भूतनी का तो इक्कीसवीं सदी में समझा सकने वाला अदब आज उस झोंपड़पट्टी में बैठकर लिख रहा है कमबख्त!

वह झोंपड़पट्टी! उस दीन-हीन बस्ती में भी सबसे दीन-हीन खलीक की कुटिया।

खलीक ने बहुत ढूंढ-ढांढकर एक ढिबरी जलाई। कुटिया के भीतर की इंकलाबी अराजकता रौशन हुई। एक कोने में लगा कागजों का ढेर जो मैंने देखा तो यही सोचा कि आज की रात यह अमर कृति सुनने में बीतनी है। किंतु आश्चर्य कि ख़लीक ने रचना सुनाने का सहज लेखकीय उत्साह लेशमात्र भी प्रदर्शित नहीं किया। उसने जानना चाहा कि कुछ पैसे-वैसे हैं कि गांठ के भी उतने ही कोरे हो, जितने कि अक्ल के?

मैंने जेबें टटोलने का नाटक किया कि कुछ रेजगारी इसे दिखाकर पिंड छुड़ाऊं।

खलीक ने बाअदब कहा, "आप नाहक जहमत उठा रहे हैं बंदपरवर! यह खादिम खुद आपकी जेबों में ढूंढ लेगा।"

मेरी विभिन्न जेबों से पांच-पांच के दो नोट, एक-एक रुपए के तीन नोट और सवा रुपए की रेजगारी बरामद हुई। रेजगारी मेरी जेब में डालते हुए खलीक ने कहा, "हुजूर, ये आपके लिए।" और फिर सभी नोट अपनी जेब के हवाले करते हुए बोला, ''और ये जश्ने-जम्हूरिया के लिए।" खलीक ने बीड़ी के विज्ञापन वाला टाट का थैला उठाया और कहा, "जश्न के लिए जरा शापिंग कर आऊं बिरादर।"

वक्त काटने की नीयत से मैंने कोने में पड़ा वह कागजों का ढेर उठाया कि उलट-पलटकर देखूं। खलीक वहीं दरवाजे से चिलाए, हैं-हैं-हैं, मेरे अदब को अपने नापाक हाथ न लगाइएगा, भूले से भी!" वह आया, कागज मुझसे छीना, उनका पुलिंदा बनाकर एक टूटी हुई अटैची में डाला और अटैची को किसी तरह ताला लगा दिया। मैं उर्दू लिखावट ठीक से नहीं पढ़ सकता और उसमें भी खलीक की, लेकिन इतना तो उन कागजात की एक झलक ही बता गई कि मास्टरपीस के नाम पर अब तक काटा-कूटी, गोंदा-गोंदी ही अधिक हुई है।

खलीक लौटा। नौटांक का एक अद्धा, बीड़ी के दो बंडल, थोड़े-से चावल और आलू तथा चाय की पत्ती का एक पैकेट उसने अपने झोले से निकाला।

अब स्टोव की खोज शुरू हुई। वह गूदड़ में छिपा हुआ मिला। स्टोव में तेल नहीं था। खलीक ने कहा, "मेरी शक्ल क्या देख रहे हैं, जाकर लाइए या कि सारे पैसे हमारे ही खर्च करने का इरादा है आपका? तेल नहीं होगा तो डिनर कैसे बनेगा? आपके पेशाब से चिराग

भले ही रौशन होते हों बंदापरवर, लेकिन यकीन मानिए मेरा यह स्टोव नहीं जल पाएगा।"

रेजगारी का एक हिस्सा मैंने स्टोव में तेल भरवा लाने में लगा दिया। इस बीच खलीक नीट नौटांक पीने लगा था।

"चाय बनाना तो तुम्हें आता ही होगा, मेरी जान।" खलीक ने पूछा, "बाहर बंबे से पानी भर लाओ! और तुम्हें तो भूतनी के इस बोडका में मिलाने के लिए भी पानी चाहिए होगा।"

जल-पात्र के नाम पर उस कुटिया में एक कदीमी गडुआ था, और एक अल्यूमीनियम का भगोना। मनोहर दोनों में पानी भर लाया। गडुए को काफी धो-मांजकर। यद्यपि मनोहर के द्विज-संस्कारों के लिए इतनी तमाम धुलाई के बाद भी ऐसे गडुए का पानी अपेय ही ठहर सकता था।

बगैर दूध-चीनी की चाय मैंने बनाई। खलीक को दी। प्याला मेरे हाथ से लेते हुए उसने कहा, "हेमिंग्वे के सीने के बालों की कसम, घरेलू काम करते हुए तुम बहुत प्यारी लग रही हो मेरी जान!"

मैं धरना चाहता था हाथ लेकिन परिष्कृत जोशी जी चाय की घूंट के साथ गुस्सा पी गए। अब खलीक बोले, "नहीं सीरियसली जोशी! क्या यह नहीं हो सकता कि तुम इसी तरह हमारी खिदमत में रहा करो! चिलम भरते-भरते मुमकिन है कुछ सीख जाओ शागिर्दी में।"

फिर मेरी चुप्पी को कमजोरी की निशानी मानकर खलीक ने कहा, "इसमें तुम्हें कोई एतराज भी नहीं होना चाहिए। माशाअल्लाह पहाड़ी छोकरे हो तो तुम, और पहाड़ी छोकरे तो बर्तन मांजने ही मैदानों में आते हैं।"

अब मुझसे रहा नहीं गया। धर दिया हाथ। खलीक इस वार से बचने के लिए पहले से ही तैयार बैठे थे। झापड़ को उन्होंने अपनी उठी बांह के कवच पर झेला। फिर जो हथेली उनके गाल पर पड़ने वाली थी, उसे ही चूमकर बोले, "वायलेंस, सदके जाऊं! जब तक वायलेंस का यह जज्बा जिंदा है तुममें, तुमसे कुछ उम्मीद रखी जा सकती है जोशी! यू आर नाट ए बर्नट् आउट केस। लेकिन इंकलाबी जामा पहनाओ इस वाइलेंस को, इंकलाबी!"

अपने गुस्से को, और गुस्से से हुए गम को गलत करने के लिए जोशी जी ने नौटांक बगैर हैंडल के कई-कई दरार वाले एक मग में डाली। गडुए का पानी उसमें मिलाने की सोची लेकिन मनोहर की अश्रद्धा का विचार कर गए। शुद्ध नौसादार उनके हलक को जलाने लगा।

अब खलीक उठे और जिस भगोने में चाय बनी थी उसी में उन्होंने गडुए का पानी डाला और उस पानी में बगैर बीने-धोए चावल और साबुत आलू। यह 'तहरी' उन्होंने स्टोव पर चढ़ा दी।

फिर उन्होंने फरमाया, "उस्ताद की शागिर्दी में आ ही गया है तो जमूरे चल तेरा माइंड थोड़ा इम्प्रूव कर दें।"

अच्छा तो अब मास्टरपीस पारायण प्रारंभ होता है—मैंने सोचा। मगर नहीं। खलीक गूदड़ में से एक जेबी किताब ढूंढ़ लाए, जो निश्चय ही किसी फुटपाथी कबाड़ी से खरीदी गई थी। खलीक पढ़ने लगे, "बी विद मी, लुई द सान ऐंजल, नाव विटनेस बिफोर द टाइड्स कैन रैस्ट अवे, द वर्ड आई ब्रिंग . . ."

जोशी जी सुन कम रह थे, यह ज्यादा सोच रहे थे कि कविता किसकी है? सहसा उन्हें याद आया और उन्होंने कहा, "हार्ट क्रेन की आव माफिया।"

खलीक ने उन्हें घूरा और कहा, "आपसे किसी ने कुछ पूछा था साहबजादे? कतई चुप रहिए किलास में।"

मैं चुपचाप सुनता गया वह निहायत लंबी और उलझी हुई कविता। और उस पर खलीक का "वाट-वाज" मार्का अंग्रेजी उच्चारण और अंग्रेजी कविता को मुशायरे की चीज बनाने वाला लहजा। मुझे हंसी आने को हुई।

लेकिन खलीक मियां की आवाज भर्राने लगी और उनकी आंखें नम हो चलीं। "तमाम पौराणिक-ऐतिहासिक संदर्भों और मिथक-संकेतों से भरी पड़ी बोझिल इस कविता में खलीक ऐसा क्या पढ़े ले रहा है जो उसके हृदय को छू रहा है?" जोशी जी ने पूछा। मैंने कहा उनसे, "आप इंटेलेक्चुअल तो रोत्ते ही पौराणिक संदर्भ में हो, रुदन भी ऐतिहासिक हुआ करे आप लोग्गों का!"

"सम इनमोस्ट साब, हाफ-हर्ड, डिसुएड्स द एबिस, मर्जेस द विंड इन मेजर टू द बेव्स।" खलीक पड़ रहा था और मनोहर सुन रहा था, इन शब्दों में अपने भीतर की कोई अधसुनी सुबकी पूरी तरह! उस व्यक्ति को सुबह-सुबह खून की चार कै करते देख रहा था जिसके न रहने पर वह आठ बरस का बालक अनाथ हो गया। इस उल्टी से कुछ और लाल हो उठी थी गुलाब की झाड़ी। इस उल्टी करने वाले ने अभी तो पूछा था दिल्ली से लौटकर, आ गई तेरी साइकिल मनोहर?

ओ दाउ हू स्लीपस्ट आन दाईसैल्फ अपार्ट, लाइक ओशन अथ्वार्ट लेंस आफ बर्थ एंड है डैथ" पढ़ रहा था खलीक और मनोहर देख रहा था उन बोतलों को जो अब नहीं पी जाएगी, उस सितार को जो अब नहीं बजेगा और उस संगीतज्ञ पिता को जो अलग-अकेला सोया हुआ था। देख रहा था विक्षिप्त उस मां को जो स्काच-व्हिस्की की बोतलें एक के बाद एक उंड़ेल रही थी अर्थी पर, लेकिन जान रही थी कि वह जो अपने पर ही सोया हुआ है अब उठेगा नहीं।

कविता समाप्त हुई। खलीक खड़ा हो गया। वह अब बाकायदा रो रहा था। फिर उसने अपने आंसू पीते हुए, नाटकीय भंगिमा धारण की और कविता का एक बंद दोहराया,

"इंक्वीजिटर! इंकोग्निजेबल बर्ड आफ एडन एंड द एनचेंड सेफल्कर, इंटू दाई स्टीप सैवानाज, वर्निंग ब्लू, अटर टू लोनलीनेस द सेल इज टू।"

खलीक ने किताब उठाकर किन्हीं अदृश्य शत्रुओं के मुंह पर दे मारी और कहा, "गौर से देख लो भूतनी को। सलामत रहे उसका यह बादबान, खलीक अपनी नई दुनिया खोज लेगा।"

लगभग तैयार 'तहरी' की गंध ने तभी एक हड़के कुत्ते को आकर्षित किया। खलीक ने अपनी अंगुलियां जलाते हुए भगोना उतारा। तहरी की 'बलि' कुत्ते को चढ़ाई कुत्ते ने सूंघ-सांघकर नापास कर दी। खलीक हंसा। उसने फिर अंगुलियां जलाते हुए भगोना उठाया और सारी-की-सारी तहरी तामचीनी की एक गंदी प्लेट में उलट दी। अब प्लेट अपने और मेरे बीच रखकर वह उसे खाने लगा। मैंने हाथ नहीं बढ़ाया तो वह बोला, "दारू के नशे के बावजूद आपका हिंदू जागा हुआ है भूतनी का?"

"नहीं, नहीं।" जोशी जी ने अपनी प्रगतिशीलता का परिचय देते हुए एक ग्रास मुंह में डाला। उनसे यह कहते नहीं बना कि इतनी गंदी तहरी, इतनी गंदी प्लेट में मैं खा नहीं सकता।

चावल अधपके थे। उनके बीच सफेद कंकर थे। आलू के छिलकों की बोराबास और मिट्टी रची-बसी थी उनमें। चाय की पत्तियों का स्वाद अलग था। इस व्यंजन को ग्रहण करने में जोशी जी ने अपने को किंचित असमर्थ पाया। मगर चुपचाप, छोटे-छोटे निवाले, नौटांक के सहारे, हलक में उतारते रहे।

खलीक तहरी सटासट सपोड़ गया, यह कहते हुए कि हम अदीब तो कुत्तों से भी गए-गुजरे हैं। बची हुई नौटांक उसने बोतल से ही गटक ली। खाली बोतल के मुंह पर जबान फेरी। अपना हाथ-मुंह पायजामे के गंदे पांयचे पर पोंछा। और फिर एलान किया, "कुत्तो और अदीबो, इस कैंडल-लाइट डिनर के बाद अब पेश-खिदमत है लिटरेरी मास्टरपीस!"

अटैची खोलकर उसने कागज का पुलिंदा निकाला। देर तक उसे फैलाकर देखा-जांचा। फिर उसमें से यहां-वहां से पांच सफे चुने। उन्हें सिलसिलेवार लगाकर वह मेरे सामने आ बैठा। अपनी माइनस सिक्स आंखों से कुछ देर तक उसने कागजों को घूरा। फिर उसने गला खंखारकर कफ वहीं थूक दिया और कागज पर नजर जमाकर मां की गाली दी।

सींकिया शायर की दादागीरी का यह सारा नाटक अब मुझे अखरने लगा। मैंने फटकारा, "यह क्या बदतमीजी है बे?"

"जी?" खलीक की चुंदी आंखों ने मोटे शीशों के पीछे से मुझे घूरा, "आप साले कहां के सेंसर लगे हुए हैं जो मेरे नावेल के उन्वान पर एतराज कर रहे हैं। जी हां, यही गाली मेरे इस नावेल का नाम है। और इस गाली का मैंने, क्या कहते हैं आप हिंदी वाले, परतीकात्मक

उपयोग किया है। एक कौमी गाली, पूरी कौम के नाम।"

जोशी जी ने मुझसे कहा, "संदर्भ : दोस्तोवेस्की का रूसी गाली पर निबंध।"

हाथ से लिखे इन पांच पृष्ठों में उपन्यास की प्रस्तावना की शुरुआत भर थी। इनमें गांव के तमाम बुजुर्गों-पुरखों को उनके मुंह से सुनी हुई मां की गाली के माध्यम से याद किया गया था। कहां, क्यों, किस मौके पर, किस अंदाज में उनमें से किसने इस गाली का इस्तेमाल किया था इसकी पूरी तफसील बयान की गई थी। और मां की गाली की यादों के इस ताने में गांव और परिवार की तमाम माताओं की, स्वयं धरती माता की यादों का बाना बुना गया था।

जोशी जी ने मुझसे कहा, "अगर खलीक भदेस और भाव-विह्वल की यह अनूठी जुगलबंदी अंत तक निबाह ले जाए तो चीज सचमुच दिलचस्प और काबिले-दाद बन जाएगी।"

"और आगे सुनाओ . . . "उन्होंने उत्साह से कहा।

"आगे बहुत कुछ है लेकिन फिलहाल किसी को भी सुनाया-पढ़ाया नहीं जाएगा। आइडिया-चोरों की अपनी बिरादरी में कोई कमी नहीं बिरादर। यह शुरू का हिस्सा भी मैंने अब तक कुल दो ही लोगों को सुनाया है—एक श्यामलाल, एक कोई और।"

"कोई और कौन?" जोशी जी ने जिज्ञासा की।

"आपसे मतलब . . .?" खलीक ने झिड़क दिया, "आप सी.आई.डी. में हैं क्या साले? आप तो अपने भाग सराहिए की खलीक ने आपको इस काबिल समझा कि अपनी मास्टरपीस का एक हिस्सा सुना दे। अब फरमाइए क्या राय है आपकी? कुछ वह कीजिए न, क्या कहते हैं आप हिंदी वाले, आलू-चना।"

"मास्टरपीस के बारे में सिवा इसके क्या राय हो सकती है कि बस मास्टरपीस है", मैंने कहा और फिर नशे को नाटकीयता पर न्यौछावर करते हुए फैसला सुनाया, "खलीक, तुमने ज्यां जेने की महतारी की बलिहारी कर दी है, तुम्हारी वक़्त पहचानने के लिए किसी सार्त्र की नजर दरकार है।"

खलीक ने मेरे गलबहियां डाल दीं। उतनी ही नाटकीयता से उसने भी एलान किया, "जोशी प्यारे! बतौर अफसानानिगार तुम कितने बड़े चूतियानन्दन हो, यह कम-से-कम मुझसे छिपा नहीं। लेकिन, और यह बहुत ही अहम किस्म का लेकिन है, गौर फरमाएं, लेकिन, अदब के मामले में तुम्हारी जानकारी, समझ और पकड़ का मैंने हमेशा लोहा माना है। तुम गोया के लिटरेट लिटरेच्योर हो। बाकी तो सब ससुरे खानदारी और पैदाइशी किस्म के अनपढ़ हैं। बाहर से यह साले हिंदुस्तानी भले ही सेविल रो में सिला सूट क्यों न पहने हों, भीतर तो इनके, समझ रहे हो न कहां, बालिश्त-बालिश्त-भर खेत की धूल ही जमी हुई है।"

इतना कहकर देहाती खलीक मियां कुछ सोच में पड़ गया, फिर बोला, "सच सच बताओ यार, नोक-पलक सब दुरुस्त हैं न इस चीज की? आइडिया ठीक-ठाक है न? चलेगा?"

दौड़ेगा। मैंने कहा, "डर्बी-जीत घोड़े की तरह।"

खलीक तुष्ट हुआ, बोला, "सार्त्र तो साला जाने कब इसका फ्रांसीसी तर्जुमा पढ़ेगा। लेकिन सार्त्र को पढ़ने और समझने वाले श्यामलाल से और सार्त्र के अगवाड़े-पिछवाड़े में तमीज कर सकने वाले जोशी से, यह गरीब, गंवार बलियाटिक खलीक दाद ले गया, कोई कम बात नहीं है। बहुत बड़ी बात है यह। बहुत बड़ी—बहुत बड़ी।"

और हर 'बड़ी' के साथ खलीक मियां मेरा एक मुख्तसर-सा बोसा लेता चला गया।

अब वह लड़खड़ा रहा था, हिचकियां ले रहा था। मैंने सुझाव दिया, "आराम करो।" वह वहीं फर्श पर लंबा लेट गया। फिर पांडुलिपि को चूमते हुए हिचकियां लेते हुए, पूछता रहा, "ग्रेट है न?"

और मैं दरवाजे का सहारा लेकर किसी तरह सीधा खड़ा हुआ जवाब देता रहा, "सिम्पली ग्रेट।"

यह संकीर्तन काफी लंबा खिंचा। शायद और भी खिंचता लेकिन तभी खलीक मियां की 'ग्रे' का 'ग्रे' लंबा खिंचा और उन्होंने उल्टी कर दी। नौटांक में घुली हुई तहरी तीन-चौथाई फर्श पर और एक-चौथाई पांडुलिपि पर जा गिरी।

खलीक अब रोने लगा। उसे अपनी और संसार की त्रासद नश्वरता का पूर्वाभास हुआ। उसने आशंका व्यक्त की कि खलीक को कमीनगी का घुन उसकी हेल्थ और टैलेंट दोनों को चाट जाएगा ससुरा। ये हजरत खुद मिट्टी में मिल जाएंगे, और अपने ख्वाब को, अपनी मास्टरपीस को भी मिट्टी में मिला देंगे।

मैंने, खलीक को नेक सलाह दी कि ऐसी कमीनी अफवाहों पर कान न दें। लेकिन खलीक, खलीक को कमीना ठहराता रहा।

मनोहर गडुए को बंबे से भर लाया। उसने खलीक को कुल्ले करवाए। उनका मुंह-हाथ धुलाया। पानी से ही उसकी चम्पी की। कै पर मिट्टी लाकर डाली। पांडुलिपि को उसकी एक फटी तहमद से पोंछकर अटैची के भीतर डाल दिया। फिर उसका गूदड़ करीने से बिछाया। उसे सहारा देकर उठाया और गूदड़ पर आराम से लिटा दिया।

यह सब करते हुए मनोहर को बराबर आशंका हो रही थी कि कहीं वह पहाड़ी छोकरों वाला प्रसंग फिर न छेड़ दे खलीक। लेकिन खलीक मियां अब व्यंग्य नहीं, शुद्ध भावुकता बोला। उसका कहना था कि इस्लाम पिछले जन्म में विश्वास करने की अनुमति नहीं देता, लेकिन अगर पिछले जन्म जैसी कोई चीज होती हो तो यह मनोहरश्याम जोशी इस खलीक का सगा भाई रहा होगा।

डैथ-सीनवाला आलम पैदा करते हुए खलीक ने मेरा हाथ अपने हाथ में लिया और

यह वचन देने को कहा कि अगर जीनियस खलीक आज ही, चलो आज ही नहीं तो जल्द ही किसी दिन और, मर जाए तो तुम चूतियानन्दन, अपने तमाम चुतियापों से परहेज बरतते हुए, खलीक की मास्टरपीस को पूरा और ठीक-ठाक करके छपवा देने के काम में जुट जाओगे। जब तक खलीक की बाकायदा मौत न हो जाए तब तक तुम इसी तरह यहां आते रहोगे, मास्टरपीस कितनी लिखी जा चुकी है, किस तरह आगे लिखी जाने वाली है, यह सब समझते रहोगे ताकि विरासत ठीक से संभाल सको।

मैंने वचन दिया। मास्टरपीस की कसम खाई और बिदा मांगी। लेकिन खलीक मुझे विदा देने के मूड में नहीं था। वह चाहता था कि कयामत की इस रात मैं उसके सिरहाने रहूं। मनोहर इसके लिए तैयार था लेकिन मैं "कल फिर आऊंगा।" कहकर फूट लिया।

उसका पहला कयास सही था। दूसरे के बारे में क्या कहूं।

चंदनवुड चिल्ड्रन स्कूल . . . !

के. पी. सक्सेना

आंख मुलमुल. . .गाल गुलगुल . . . बदन थुलथुल, मगर आवाज बुलबुल! वे मात्र वन पीस तहमद में लिपटे, स्टूल पर उकडूं बैठे, बीड़ी का टोटा सार्थक कर रहे थे! रह-रहकर अंगुलियों पर कुछ गिन लेते और बीड़ी का सूंटा फेफड़ों तक खींच डालते थे! जहां वे बैठे थे वहां कच्ची पीली ईंट का टिन से ढका भैंसों का एक तवेला था! न कोई खिड़की न रौशनदान! शायद उन्हें डर था कि भैंसें कहीं रौशनदान के रास्ते खिसक न जाएं! सुबह-सवेरे का टाइम था और भैंसें शायद नाश्तोपरांत टहलने जा चुकी थीं! तवेला खाली पड़ा था! उन्होंने मुझे भर आंख देखा भी नहीं और बीड़ी चूसते हुए अंगुलियों पर अपना अंतहीन केल्क्यूलेशन जोड़ते रहे! . . .

मैंने उनसे संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल का रास्ता पूछा तो उनकी आंखों और बीड़ी में एक नन्ही सी चमक उभरी! . . . धीरे-से अंगुली आकाश की ओर उठा दी गोया नया चिल्ड्रन स्कूल कहीं अंतरिक्ष में खुला हो। मगर मैं उनका संकेत समझ गया! नजर ऊपर उठाई तो तवेले की टिन के ऊपर एक तख्ती नजर आई, जिस पर गोराशाही अंग्रेजी में कोयले से लिखा था—दि संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल! . . . प्रवेश चालू! इंगलिश मीडियम से कक्षा 6 तक मजबूत पढ़ाई! प्रिंसिपल से मिलें! . . .” तख्ती पढ़कर मैं दंग रह गया!. . .यही है चंदन लकड़ी स्कूल? . . . चंदन दरकिनार, कहीं तारपीन या कोलतार तक की बू नहीं थी! मेरी मजबूरी अपनी जगह थी! मुहल्ले के गनेशीलाल के पोते के दाखले की जिम्मेदारी मुझ पर थी! खुद गनेशीलाल उम्रभर पढ़ाई-लिखाई की इल्लत से पाक रहे और अपने बेटे को भी पाक रखा! सिर्फ गुड़ की किस्में जान लीं और खानदानी कारोबार चलाते रहे! मगर पोता ज्यों ही नेकर में पांव डालने की उम्र को पहुंचा, उनकी पतोहू ने जिद पकड़ ली कि छुटकन्ना पढ़िहैं जरूर, और वह भी निखालिस इंगलिश मीडियम से! . . . उसकी नजर में हिन्दी मीडियम से पढ़ने से बेहतर है कि गुड़ बेच ले! पतोहू ने अपने मैके में देखा कि अंग्रेजी मीडियम से पढ़े छोकरे कैसे फट-फट आपस में इगलिश में गाली-गलोज करते हैं! . . . एक स्मार्टनेस सी रहती है! . . . चुनांचे गनेशीलाल मेरे पीछे पड़ गए कि छोकरे कोकहीं अंग्रेजी मीडियम में डलवा ही दूं! . . . उधर जुलाई-अगस्त की झड़ी लगते ही चिल्ड्रन स्कूलों

में वह किच-किच होती है कि आदमी अपना मरा हुआ बाप भले ही दोबारा हासिल कर ले, मगर बच्चे को स्कूल में नहीं ठूंस सकता! . . . अंग्रेजी के 'डोनेशन' और हिन्दी के 'अनुदान' का फर्क इसी वक्त समझ में आता है आदमी को! अनुदान के बीस रुपयों में बच्चा हिन्दी मीडियम में धंस जाता है, मगर डोनेशन तीन अंकों से नीचे होता ही नहीं! . . . अंग्रेजी की ग्रेटनेस का पता यहीं पर चलता है! खैर . . . !

शिक्षा संदर्भ में यह एक अच्छी बात है कि बारिश में फूली लकड़ी पर उगे कुकुरमुत्तों की तरह, जुलाई-अगस्त में चिल्ड्रन स्कूल भी दनादन उग आते हैं! हर गली-मुहल्ले में भूतपूर्व लकड़ी की टालों और हलवाइयों की दुकानों पर नर्सरी मोंटेसरी स्कूलों के बोर्ड टंग जाते हैं! हर साइनबोर्ड का यही दावा होता है कि हमारे यहां बच्चा मां की गोद जैसा सुरक्षित रहेगा और आगे चलकर बेहद नाम कमाएगा! . . . ऐसे ही दुर्लभ तथा नए उगे स्कूलों में 'संदल वुड चिल्ड्रन स्कूल' का नाम भी मेरे कानों में पड़ा था! नाम में ही चंदन-सी महक और हाली-वुड जैसी चहक थी! . . . और अब मैं टिन जड़ित, रोशनदान रहित उसी स्कूल के सामने खड़ा था! . . . बीड़ी तहमद वाले थुलथुल सज्जन ने आखिरी कश खींचकर बीड़ी को सद्‌गति तक पहुंचाया, और तहमद के स्वतंत्र कोने से मुंह पोंछकर आंखों-ही-आंखों में पूछा कि क्या चाहिए? . . . मैंने दोनों हाथों से बच्चे का साइज बताया और धीरे-से पूछा कि प्रिंसपल कहां हैं . . . कब उपलब्ध होंगे? वे भड़क गए! गुर्रा कर बोले, "हम आपको क्या नजर आवे हैं? टाई-कमीज अंदर टंगी है तो हम प्रिंसिपल नहीं रहे? जरा बदन को हवा दे रहे थे! आप बच्चा और फीस उठा लाइए! भर्ती कर लेंगे!" मैं सटपटा गया और इस बार उन्हें इस ढंग से अभिवादन पेश किया जिस ढंग से अमूमन अंग्रेजी मीडियम में होता है! यह पूछने पर कि बाकी टीचिंग स्टाफ कहां हैं, उन्होंने बताया कि बाकी का स्टाफ भी वे खुद ही हैं! क्लास थ्री स्टाफ भी, और क्लास फोर (झाड़ू, पोंछा, सफाई) भी! . . . दो अदद लेडी टीचर भी हैं, जिनमें से एक उनकी मौजूदा पत्नी हैं और दूसरी भूतपूर्व! फिलहाल दोनों घर में लड़ाई-झगड़े में मसरूफ हैं! चट से टीचिंग सेशन शुरू होते ही आ जाएगी! . . . अभी कुल तेईस बच्चे नामजद हुए हैं! पच्चीस पूरा होते ही ब्लैकबोर्ड मंगवा लेंगे और पढ़ाई जो है उसे शुरू करवा देंगे! . . . मुझे तसल्ली हुई! डरते-डरते पूछा, "खिड़कियां, रौशनदानों, पंखों और बैंचों वगैरा की झंझट आपने क्यों नहीं रखी?" . . . वे दूरदर्शी हो गए! . . . आप चाहते हैं कि बच्चों को अभी से आरामतलब बना दें? ग्लासगो कभी गए हैं आप? वहां के सन् चालीस के पैटर्न पर हमने स्कूल शुरू किया है! बच्चों को, उसे क्या कहते हैं . . . हां . . . हार्डशिप की आदत डालनी होगी! . . . फिर धीरे-धीरे सब कुछ हो जईहैं! . . . अगले साल रौशनदान खुलवा देंगे . . . फिर अगले साल पंखों वगैरा की देखी जाएगी! . . . पईसा चाहिए, कि नाहीं चाहिए? . . . पच्चीस बच्चों की फीस लईके शुरू में ही आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी खोल दें का? . . . टाइम पास होते-होते

सब कुछ हुई जईहैं! . . . बच्चा ले आवो! . . . दो ही सीटें बची है। हैं गी! . . .।''

सो साहब, संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल के प्रधानाचार्य के श्रीवचन सुनकर मैं काफी से भी अधिक प्रभावित हुआ! सारी हिम्मत बटोरकर एक अंतिम प्रश्न पूछा,''मास्साब! वैसे तो अपने इंडिया में चारे-भूसे की कमी चाहे भले ही हो, मगर बच्चों का टोटा नहीं है! फिर भी अगर दो बच्चे और न हाथ लगें तो क्या आप स्कूल डिजाल्व कर देंगे''? वे पुनः भड़क गए! . . . आए गए सुबे-सुबे नहसूत फैलाने! . . . जिस भगवान ने तेईस बच्चे दिए, वह दो और नाहीं भेजिहें का? डिजालव कर भी दें तो कौन-सी भुस में लाठी लग जईहें? . . . पहले इस टिन में पक्के कोयला का गुदाम रहा! . . . सोचा कि इस्कूल डाल लें! डाल लिया! . . . इन्ते पढ़े-लिखे हैंगे कि कक्षा 6 तक पढ़ाए ले जावें! नाहीं चल पईहें इस्कूल तो कोयले का लैसंस कोई खारिज हुई गवा है का?. . . वो लपक के बच्चा ले आवो! . . .''

मैं लपककर चल पड़ा! . . . रास्ते भर प्रधानाचार्य की उस अंग्रेजी से प्रभावित रहा जो एक फिल्मी गाने "आकाश में पंछी गाइंग . . . भौंरां बगियन में गाइंग" जैसी थी! मास्साब दूर तक टकटकी बांधे मुझे उम्मीदवार नजरों से देख रहे थे, गोया कह रहे हों—बच्चा लईहें जरूर! जईहें कहां? इधर मैं यह सोच रहा था कि गनेशीलाल के पोते के भविष्य के लिए गुड़ बेचना मुनासिब रहेगा या संदलवुड चिल्ड्रन स्कूल में अंग्रेजी मीडियम से शिक्षा अर्जित करना?

(नोट—यदि किसी स्कूल का नाम यही हो, तो अन्यथा न लें! नाम काल्पनिक है!)

हो जाए इसी बहाने एक श्रद्धांजलि

लतीफ घोंघी

हर शहर में दो या चार महान टाइप के लोग रहते हैं। वे भी इसी टाइप के हैं। दूसरी आदतों के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना है लेकिन उनकी एक आदत बहुत अच्छी है कि वे श्रद्धांजलि देने में पक्के हैं। उधर कोई मरा नहीं कि वे श्रद्धांजलि देने के लिए मरे जाते हैं। जिस प्रकार प्रेशर आने के बाद आदमी फड़फड़ाने लगता है, उसी तरह वे श्रद्धांजलि के प्रेशर से छटपटाने लगते हैं। कब निकले और उन्हें शांति मिले। बस, यही उनकी महानता है, जिससे मैं प्रभावित हूं।

उन्होंने मुझे बताया था कि उनकी जिंदगी के केवल दो उद्देश्य हैं। पहला, कि देश के लोगों को अधिक-से-अधिक श्रद्धांजलि दो और दूसरा यह कि चाहे किसी की बारात में या स्वागत समारोह में भले ही न जाओ लेकिन यदि किसी को श्रद्धांजलि देने के लिए कोई सभा हो रही हो तो बिना बुलाए चले जाओ और सबसे आगे बैठो।

इस दो महान कार्यों के लिए उन्होंने अपना जीवन बर्बाद कर दिया। यह उनका सौभाग्य था कि इधर मरने वालों की संख्या में संतोषजनक वृद्धि हुई थी और उनके श्रद्धांजलि-सृजन में निखार आ गया था। एक आदमी को श्रद्धांजलि देकर घर आए। हाथ-मुंह भी नहीं धो पाए कि खबर आती कि पड़ोसी चल बसा। वहां से श्रद्धांजलि देने गए तो पता चला कि विदेश में कोई मर गया। इधर अपने देश को निपटाया और उधर विदेश को श्रद्धांजलि देने की तैयारी में भिड़ गए। कभी-कभी तो लोगों को उनकी श्रद्धांजलि के कारण ही पता चलता था कि कोई गणमान्य चल बसा है।

ईश्वर ने उन्हें कद-काठी भी कुछ इसी पुनीत कार्य के अनुरूप दी है। लगता है जैसे वे इस देश में केवल श्रद्धांजलि देने के लिए ही पैदा हुए हैं। उनकी आंखें हमेशा डबडबाई रहती हैं। उन्हें देखकर महसूस होता है कि अब-तब रो ही देंगे। चेहरा देखकर कोई भी कह सकता है कि इस आदमी के परिवार में कोई जबरदस्त गमी हुई है। उनका बात करने का ढंग भी बिलकुल श्रद्धांजलि देने टाइप ही है। पिछले विधानसभा चुनाव में एक उम्मीदवार हार गए तो मैंने उनसे प्रतिक्रिया जानना चाही। वे बोले, ''आदमी अच्छा था, लेकिन होनी को कौन टाल सकता है. . . भगवान उनके शोक संतप्त परिवार को यह दुःख वहन करने

की शक्ति दे।"

मैंने उनसे पूछा,"श्रीमान जी, आपको यह श्रद्धांजलि देने का चस्का कहां से लगा?"

वे बोले,"हमारा तो खानदानी धंधा है जी। पिताजी का तो इस क्षेत्र में इतना काम था कि जब तक उनकी श्रद्धांजलि नहीं हो पाती थी मरने वाले को भी न ही लगता था कि उसका मरना सार्थक हुआ है। उस समय मैं छोटा था। उनके साथ जाता था और दो मिनट का मौन रख-रखकर मेरा आत्मविश्वास पक्का हो गया . . . बस तभी से लगा हूं इस धंधे में।"

थोड़ी देर के लिए वे रुके। फिर बोले, "पिताजी कहते थे, बेटा—हम गरीब देश के गरीब नागरिक हैं। किसी को श्रद्धांजलि के अलावा कुछ नहीं दे सकते। इसलिए मेरे मरने के बाद तुम हमारी इस वंश परंपरा को आगे बढ़ाना।"

इतना कहने के बाद वे दो मिनट के लिए मौन हो गए। आंखें नीची कर लीं। दोनों हाथ सामने बांधकर खड़े हो गए। मैंने पूछा, "श्रीमान् जी! ये क्या कर रहे हैं आप?'

वे बोले, "पिताजी को एक बार और श्रद्धांजलि दे रहा हूं। उनकी कृपा और आशीर्वाद से आज मेरा नाम व्ही.आई.पी. लोगों में है। अभी घर पर आइए तो मैं आपको वह डायरी दिखाऊंगा जिसमें मैंने उन लोगों के नाम और पते लिखे हैं जिन्हें मैं आज तक श्रद्धांजलि दे चुका हूं।" मैंने मजाक में पूछा "आजकल धंधा कैसा चल रहा है?"

वे बोले, "बिल्कुल मंदा है जी . . . देखो ना। पिछले दो महीने से कोई नहीं मरा। डाक्टर से रोज पूछता हूं कि डाक्टर जी, कोई सीरियस हो तो पहले मुझे बताना। लेकिन सरकारी अस्पतालों में भी अब खुजली खांसी के अलावा कुछ नहीं बचा।"

"फिर क्या सोचा है आपने?"

"सोच रहा हूं कि महीना-पंद्रह दिनों के लिए पंजाब चला जाऊं। इस तरह यहां रहने से तो मैं कुंठित हो जाऊंगा। श्रद्धांजलि और साहित्य में कोई बहुत अंतर नहीं है जी। आदमी बहुत जल्दी कुंठित हो जाता है। बीच में एक ट्रेन पटरी से उतरी थी तो मैं प्रसन्न हो गया था। लेकिन बाद में पता चला कि उसमें कोई नहीं मरा। मुझे तो लगता है जी कि अपनी सरकार मरने वालों की संख्या भी सही नहीं बताती है। अब तो रोज रेलवे स्टेशन जाता हूं और देखता हूं कि कितने लोग दिल्ली जा रहे हैं। उनके नाम अपनी डायरी में लिख लेता हूं और रोज उनके घर पर पता लगाता रहता हूं कि वे लौटे हैं या नहीं। जाने कब मौका लग जाए उन्हें श्रद्धांजलि देने का। अपने देश में जिंदगी और मौत का कोई भरोसा नहीं फिर मैं क्यों बेखबर रहूं।"

मैं उनके इस आशावादी दृष्टिकोण से एक बार फिर प्रभावित हुआ। कितना जीवट का आदमी है। कितनी लगन है उसे अपने काम से। महान लोगों के यही लक्षण होते हैं। इसी लगन से यदि देश के नेता काम में लग जाएं तो उन्हें भी महान बनने में कितनी देर

लगेगी।

मैंने कहा, "श्रीमान जी, आप बुरा न मानें तो एक सलाह दूं।"

वे बोले, "बिलकुल दीजिए जी। हम उन लोगों में से नहीं हैं कि बुरा मान जाएं। लोग तो नेताओं की तरह हमें मुंह पर गालियां देते हैं लेकिन बदले में हम केवल ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि भगवान हमें उस गाली देने वाले को शीघ्र श्रद्धांजलि देने का अवसर प्रदान करे।"

मैंने कहा, "टाइम पास करने के लिए आप एक काम कीजिए। इस व्यक्तिगत श्रद्धांजलियों के अतिरिक्त कुछ संस्था और स्थितिपरक श्रद्धांजलियों में भी रुचि दिखाइए। इससे एक लाभ होगा कि जब कभी श्रद्धांजलि पर कोई शोध-कार्य होगा आप श्रद्धांजलि प्रवर्तक के रूप में स्थापित व्यक्ति माने जाएंगे।"

वे बोले, "मैं समझा नहीं जी। कुछ उदाहरण देकर समझाइए। पिताजी जब किसी को श्रद्धांजलि देकर आते थे तो उसके बारे में उदाहरण सहित समझाते थे।"

मैंने कहा, "देखिए, कोई बड़ा अधिकारी रिश्वत लेते पकड़ा जाए तो आप व्यवस्था को श्रद्धांजलि दीजिए, सरकार जब कोई नया टैक्स लगाए तो आप सरकार को श्रद्धांजलि दीजिए। नसबंदी के बाद भी किसी के घर बच्चा पैदा हो जाए तो आप सिविल सर्जन को श्रद्धांजलि दीजिए, बलात्कार का कोई अभियुक्त बरी हो जाए तो आप पुलिस को श्रद्धांजलि दीजिए, कोई ट्रेन पटरी से उतर जाए तो आप रेल मंत्री को श्रद्धांजलि दीजिए, दहेज के कारण कोई बहू जल जाए तो आप समाज को श्रद्धांजलि दीजिए, कोई सांप्रदायिक दंगा हो जाए तो आप धर्म को श्रद्धांजलि दीजिए। बस, इसके बाद तो आपको श्रद्धांजलि के क्षेत्र में नए आयामों की जानकारी आप-से-आप होने लगेगी। इस बीच कोई-न कोई-मर ही जाएगा। कुंठा से बचने का यही तरीका है।"

वे प्रसन्न हुए। बोले, "पाजामा उठाए जी।'

मैंने पूछा, "क्यों?"

वे बोले, "सचमुच आप महान हैं जी। मैं आपके चरणों को श्रद्धांजलि देकर ही इसकी शुरुआत करना चाहता हूं।

मैंने भी यह सोचकर अपने चरण आगे बढ़ा दिए कि जीते जी यह सुख भी देख लूं। अपने देश में बुद्धिजीवी को श्रद्धांजलि देना भी कोई कम महत्व का नहीं है। और जब देश के सभी लोगों को श्रद्धासुमन अर्पित हो रहे हैं तो बुद्धिजीवी और साहित्यकारों ने क्या बिगाड़ा है। उनकी भूमिका भी कोई कम महत्वपूर्ण नहीं है।

अमरीकन जांघिया

नरेन्द्र कोहली

माथुर साहब खुली छत पर खड़े थे। सारा शरीर नंगा था। हनुमान जी के लंगोट के बराबर, छोटा-सा लाल रंग का जांघिया पहन रखा था।

मैं संकुचित हो गया, जैसे पेटीकोट में घर से गली में निकल आई किसी औरत को देखकर सकुचा जाता हूं। ऐसी स्थिति में मेरी दृष्टि उन पर नहीं पड़नी चाहिए थी। शायद वे बाथरूम से निकले थे, अभी भीतर जाकर कपड़े पहन लेंगे। पर, वे अपनी छत का मध्य भाग छोड़ आगे आ गए, ताकि गली में जिन कोनों से वे देखे नहीं जा सकते थे, वहां भी देखे जा सकें।

मेरे पोंगापंथी मन को बुरा लगा। मैं एक भले आदमी को, भरे मुहल्ले में, इस प्रकार नंग-धड़ंग खड़ा नहीं देख सका। आंखें झुका लीं, और चाल तेज कर दी।

"अजी कोहली साहब! नजरें चुराए कहां आगे जा रहे हैं?" वे सीढ़ियां उतर कर गली में आ गए।

मैंने अपने मन को डांटा, "अबे नंगा यह है और शरमा तू रहा है। मर्द बन।"

"आपसे कौन आंखें मिला सकता है माथुर साहब।"

"क्यों जी! ऐसी क्या बात है?" उन्होंने अपने लाल जांघिए पर प्यार का हाथ फिराया।

"नंगे से तो खुदा भी घबराता है। हम तो फिर आपके मुहल्ले के एक आदमी भर हैं।"

उन्होंने अपने भद्दे, थुलथुल शरीर पर गर्वभरी एक दृष्टि डाली, "अजी वह तो यूं ही जरा गर्मी लग रही थी, इसलिए बाहरी कपड़े उतार दिए।"

"हां साहब! आप लोगों को अधिकार है, जब चाहें, अमरीकनों के समान बीच चौराहे अपने कपड़े उतार दें।"

"आप तो मजाक कर रहे हैं।" वे मेरे मजाक पर हंस पड़े, "वैसे यह आपको मानना पड़ेगा, आजकल गर्मी बहुत पड़ रही है।"

"जब आप अमरीकन एम्बैसी में नहीं थे, तब तो आप सारी गर्मियां धोती-बंडी में ही काट देते थे।"

उनके चेहरे पर मलाल आ गया। अपने उन दिनों की चर्चा शायद उन्हें अच्छी नहीं लगी थी।

"तब की बात और थी साहब! पर अब गर्मी सचमुच ही अधिक हो गई है।"

"हां, हो तो गई है।" मैंने कहा, "अमरीका ठंडा देश जो ठहरा।"

वे हंस कर मुझे ऐसे टाल गए, जैसे कोई हाथ हिलाकर मक्खी उड़ा देता है।

अब तक मैं कुछ धृष्ट हो गया था। पूछा, "इम्पोर्टेड है?"

"क्या?"

और फिर मेरा तात्पर्य समझ, उन्होंने अपने लाल जांघिए को बड़े प्यार से सहलाया, "हां! हमारी एम्बैसी के मिस्टर किथकिन अमरीका लौट रहे थे। अपना सामान वे ले जाना चाहते नहीं थे। उन्होंने अपनी चीजों की नीलामी की। उसी में से ले लिया है।"

"काफी ऊंची बोली दी होगी।"

उनके स्वर में आकस्मिक आवेश भर उठा, "अजी साहब! पूछिए मत। बोली तो यूं ऊपर चढ़ रही थी, जैसे दिल्ली में जमीन के भाव चढ़े हैं। लोग टूटे पड़ रहे थे। मैं तो एकदम निराश हो गया था। पर लगता है, ग्रह अच्छे थे। भगवान ने सहायता की। हायेस्ट बिड मेरी ही रही।"

"न मिलता, तो आपको काफी तकलीफ होती।"

"हां। मन को समझा लेते कि अपनी किस्मत में ही नहीं था। पर मिल ही गया।"

वे अत्यंत प्रसन्न थे।

"फिटिंग बढ़िया है।" मैंने मुग्ध दृष्टि से जांघिए को देखा।

"हां! काफी कंफोर्टेबल है।"

"कोई हिंदुस्तानी दर्जी तो ऐसी चीज क्या बनाएगा।"

"अजी! राम का नाम लो।" उन्होंने मुंह बनाया, "यहां किस साले को कपड़े सीने का शऊर है। पता नहीं क्या करते हैं; लोग घास छीलते-छीलते कपड़े सीने लगते हैं।"

वे फिर जांघिए को निहारने लगे थे।

"इसी समस्या के मारे मैं धोती बांधता हूं। फिटिंग की तो समस्या नहीं है न।"

"हां। दर्जियों की जहालत से तो आप बच जाते हैं, पर सच पूछा जाए तो धोती कोई ड्रेस नहीं है। उसमें आदमी नंगा होता रहता है।"

"हां साहब! जांघिए की और ही शान है। और वह भी अमरीकन जांघिया।" मैंने हथियार डाल दिए।

वे ऐसी मुग्ध दृष्टि से जांघिए को पी रहे थे, जैसे कोई नया प्रेमी अपनी प्रेमिका के रूप को पीता है।

"ऐसा शेड आपको भारत में नहीं मिलेगा।" मैंने फिर चर्चा आरंभ की।

"मैंने एक-एक दुकान छान मारी है।" वे तुरंत मुझसे सहमत हो गए, "ऐसा रंग तो दूर, इसके आसपास का भी कोई रंग नहीं मिला। खास अमरीकन फार्मूले पर बना हुआ है। अपने देसी रंग तो इसके पासंग भी नहीं हैं।"

"इसकी चमक लाजवाब है।"

"अजी दो पतलूनों में भी इसकी चमक नहीं छिपती। नीचे पहनकर दफ्तर जाता हूं तो पतलून के भीतर से अपना रंग दिखाता है। बिना बताए ही सब लोग जान जाते हैं कि इम्पोर्टेड है।"

"पता नहीं हिंदुस्तानी लोग कपड़े में ऐसी चमक क्यों नहीं ला सकते।" मैंने आह भर कर कहा।

"अजी। ऐसी चमक लाने के लिए बड़ी डेवलप्ड इंडस्ट्री होनी चाहिए। अपना देश अभी बहुत पिछड़ा हुआ है।" सहसा उन्होंने आवाज दबाकर भेदभरे स्वर में कहा, "बिना ईमानदारी और कठिन परिश्रम के इंडस्ट्री आगे नहीं बढ़ सकती। और अपने यहां ईमानदारी तो ईमानदारी, कैरेक्टर ही सिरे से गायब है। आपसे क्या छिपाना . . . आप अपने ही आदमी हैं। मेरे सैक्शन में छः अमरीकन हैं और हम दो हिंदुस्तानी। पर ऊपरी आमदनी केवल हम दोनों की ही है . . .।"

मैंने बड़ी करुण दृष्टि से उसे देखा, वह आदमी अपने अमरीकन जांघिए की प्रशंसा में अपने-आपको नंगा करता जा रहा था।

"आप इस जांघिए को पहनकर सोते भी हैं, या केवल गली में खड़े होते समय ही इसे पहनते हैं?" मैंने पूछ लिया।

"कभी-कभी पहन कर सो भी जाता हूं।" वे आश्वस्त होकर मुस्कराए, "सोने में एकदम तकलीफदेह नहीं है।"

"पर ऐसी शानदार चीज पहनकर सोने से क्या लाभ?" मैंने टोका, "जल्दी घिस जाएगा। इसे तो आपको केवल विशेष अवसरों के लिए संभालकर रखना चाहिए। ऐसे जांघिए कौन से रोज मिल जाते हैं।"

"आप कहते तो ठीक हैं कोहली साहब!" वे मुझसे सहमत हो गए, "पर इम्पोर्टेड चीज लेने का लाभ तो तभी है, जब उसका पूरा उपयोग किया जाए। मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो इम्पोर्टेड कपड़े वार्डरोब में टांगकर अपनी शान बढ़ाते हैं। मैं तो उनसे कसकर काम लेने के पक्ष में हूं . . .।"

"फिर भी, पहनकर सोने . . .।" मेरा स्वर काफी पीड़ित था।

"बात यह है भाई जान।" वे बोले, "कि यह जांघिया मल्टीपर्पज है। इसे नाइट सूट के समान भी पहना जा सकता है, यह ईवनिंग सूट का काम भी देता है, इसे आप सूट के नीचे पहनकर दफ्तर भी जा सकते हैं। यानी जहां जैसे जो सूट करे।"

"तो यह अमरीकन पालिसी के अनुसार ही बनाया गया है।"

"बिलकुल! बिलकुल!!"

"पर इसे पहनकर सोने से आपको मच्छर नहीं काटते?"

वे बड़प्पन से मुस्काए, "अब देखिए फारेन ड्रेस पहनने से अपने देश की क्लाइमेट में कुछ-न-कुछ तकलीफ तो उठानी ही पड़ती है। मच्छर तो काटते ही हैं।"

"हां जी। ये एशियाई कीड़े-मकोड़े अमरीकनों का एकदम लिहाज नहीं करते। अब देखिए, वियतनामियों ने अमरीका की क्या गत बना रखी है . . .।"

"वह तो पालिटिक्स की बात है।" वे बोले।

अर्थात वह उनके जांघिए की बात नहीं थी। अतः उसमें उन्हें रुचि नहीं थी।

"भाभी के लिए आपने कोई अमरीकन ड्रेस नहीं खरीदा? आखिर उन्हें भी तो गर्मी लगती होगी।" मैंने पूछा।

"हैं हैं।" वे हंस पड़े, "वे भी मुझसे इसी बात को लेकर नाराज हैं। पर कैसे खरीदता। मिस्टर किथकिन तो कुंवारे ही है। वैसे मैं सोच रहा हूं, किसी को लिखकर सीधे वहीं से मंगवा लूं।"

"जरूर-जरूर।" मैंने सलाह दी, "सीधे अमरीकन प्रेसिडेंट को ही लिखिए। वे तो कब से इस कोशिश में हैं कि सारे देश उनके जांघिए पहनने के लिए नंगे हो जाएं।"

"आपकी बड़ी आर्थोडाक्स थिंकिंग है। इसे आप नंगा होना कहते हैं।" वे मेरी नादानी पर हंस दिए।

"नहीं। नंगा तो मैं हूं। आंखें उठाकर पूरी तरह आपकी ओर देख भी नहीं सकता।"

उन्होंने मेरी बात का एकदम बुरा नहीं माना। परोपकार की भावना से प्रेरित होकर तुरंत बोले, "आपको पसंद हो तो आपके लिए भी कोई जुगाड़ लगाऊं। कुछ जांघिए रफू होने के लिए दर्जी के पास गए हुए थे। तब नहीं बिके थे, अब बिकेंगे।"

"भगवान ऐसी मुसीबत की घड़ी न लाए। इतनी गर्मी का लगना राष्ट्रीय हित में नहीं है।"

"आप तो बात को फिर पोलिटिकल लेवल पर ले गए।" वे बोले, "मैं तो दोस्ताना बात कह रहा था।"

"आपकी दोस्ती के पालिटिक्स को भी लोग समझने लगे हैं।"

वे पहली बार पूरी तरह उदास हो गए। उनके चेहरे पर निक्सन की निराशा और क्षोभ था। एक काला देश, उनकी सहायता के प्रस्ताव को ठुकरा रहा था।

तीन अदद मास्टर : तीन अदद झलकियां

लक्ष्मीकान्त वैष्णव

झलकी पहली : पहले मास्टर की

मास्टर झोला लेकर राशन की लाइन में लगा है। मास्टर के आगे बहुत से लोग लगे हैं, मास्टर के पीछे बहुत से लोग लगे हैं। बहुत देर हो गई है, मास्टर अपनी ही जगह खड़ा है। पीछे के लोग उसे ठेल-ठेलकर आगे बढ़ते जा रहे हैं। मास्टर आगे बढ़ने के लिए हाथ-पांव मारता है, तो एक तगड़ा-सा आदमी हाथ की कुहनी से उसके पेट पर घूंसा मारता है। मास्टर पीड़ा से अर्राकर पेट पकड़कर बैठ जाता है।

—पेट पर क्यों मारा?

—तो उठो, पीठ पर मार देते हैं।

मास्टर डर के मारे बैठा रहता है।

—मैं बुद्धिजीवी हूं, मेरे पेट पर मत मारो।

—बुद्धि का इधर कोई काम नहीं। लाठी हो तो भैंस हांक लो, अन्यथा झोला उठाओ और रास्ता नापो।

—पर मुझ पर भावी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है। मुझे गल्ला नहीं मिला तो मैं खाऊंगा क्या? और खाऊंगा नहीं तो पढ़ाऊंगा क्या?

—अबे, चल दायित्व वाले! दो कौड़ी का मास्टर, पीढ़ी के निर्माण की बात करता है। अब पीढ़ी को तेरी जरूरत नहीं रही। वह अपना निर्माण स्वतः कर रही है। पीढ़ी के निर्माण की बात करके तू अपनी औकात भूल रहा है। तेरी हस्ती ही क्या है—पीढ़ी की फीस पर पलने वाला!

पीछे से दो धर्मात्मा आगे बढ़कर मास्टर को उठाकर खड़ा कर देते हैं। मास्टर अब भी पेट सहला रहा है।

क्या मास्साब, आप मास्टर होकर नाटक करते हैं?—धर्मात्मा नं. 1 ने कहा।

नाटक कौन कर रहा है? मेरे पेट पर मार दिया गया है। एक मास्टर के पेट पर मारते थोड़ी शर्म तो आनी चाहिए थी।

तो कोई लात थोड़े ही मारी है। पेट पर लात मारना पाप है, कुहनी मारना नहीं।—मारने

वाले का स्वर।

—अब लात मारने की तमन्ना मन में रह गई हो तो वह भी मार लो।—मास्टर ने गांधीवादी लहजे में कहा।

मारने वाला मारने के लिए लात उठाता है।

—अरे-अरे, क्या कर रहे हो?—धर्मात्मा नं. 1 ने कहा।

—मार लो, मार लो। गरीब मास्टर को सभी लतियाते हैं। —मास्टर का दयनीय स्वर।

—अब खुद ही कह रहा है तो मार भी दो बेचारे को। धर्मात्मा नं. 2 ने दया दिखाते हुए कहा।

मारने वाला लात मा़र देता है। मास्टर पेट पर लात पड़ते ही गश खाकर गिर पड़ता है। मारने वाला और दोनों धर्मात्मा उसे घसीटकर एक ओर कर देते हैं। तीनों के चेहरे पर लाइन में एक आदमी कम हो जाने की प्रसन्नता का भाव है।

—बुद्धि बेहोश पड़ी है।—मारने वाला।

—पीढ़ी के निर्माण का दायित्व बेहोश पड़ा है।—धर्मात्मा नं. 1।

—बेचारा।—धर्मात्मा नं. 2।

—अरे-अरे, बेचारा-वेचारा मत करो। 'सिम्पैथी' दिखाओगे तो फिर आकर लाइन में लग जाएगा।—मारने वाला।

बेहोश मास्टर थोड़ी-सी आंखें खोलकर कराह भरता है। मारने वाला, धर्मात्मा नं. 1 और धर्मात्मा नं. 2 तीनों ठहाका मारकर हंसते हैं।

झलक दूसरी : दूसरे मास्टर की

स्थान : मास्टर की खोली। समय : दिन के साढ़े बारह बजे। तापमान : पसीने छूट रहे हैं। वातावरण : खोली के बाहर हवा की लू और खोली के भीतर पसीने की बू। पात्र : मास्टर और एक बीमा एजेंट जमीन पर बोरा बिछाकर बैठे हैं।

—बीमा कराया?

—नहीं।

—कितने बच्चे हैं?

—सात।

—सात! सात क्यों?

—क्या करूं! अब होने बंद हो गए।

—बीवी तो एक ही है ना?

—हां। वह भी अब पूरी नहीं बची है।

—तो कितने का बीमा कर दूं?

—बीमा नहीं कराना।

—क्यों?

—पैसे ही नहीं बचते। प्रीमियम कहां से भरूंगा?

—फिर भी, सात बच्चों और इकलौती बीवी का आपके बाद?

—मेरे 'जाब' में कोई 'रिस्क' नहीं।

—कमाल है! पढ़ते-पढ़ते आप पागल हो जाएं, दिमाग की नस फट जाए . . .

—कैसे फटेगी? मैंने पढ़ना ही छोड़ दिया है।

—लेकिन मास्टर का काम बिना पढ़े नहीं चल सकता।

—चला लेते हैं।

—कैसे?

—'ट्रेड-सीक्रेट' बताए नहीं जाते।

—अच्छा! तो कितने का बीमा कर दूं?

—कहा न, कि मेरे जाब में कोई रिस्क नहीं।

—रिस्क नहीं! कमाल है। अभी-अभी एक मास्टर को नकल पकड़ने के अपराध में एक लड़के ने परीक्षा-हाल में छुरा भोंक दिया।

—आपका ख्याल गलत है। लड़के ने सिर्फ जूता मारा था।

—जी, आपका ख्याल गलत है। जूता किसी और मास्टर को मारा होगा। मैं जिसकी बात कर रहा हूं उसे छुरा भोंक दिया गया।

—फिर?

—फिर क्या, मास्टर टें बोल गया।

—यानी?

—यानी मर गया।

—बिलकुल मर गया?

—जी हां, तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो गया। 'इट वाज एन इंस्टांटेनियस डैथ।'

मास्टर क्षणभर के लिए भौंचक्का-सा हो जाता है।

—तो फिर कितने का बीमा कर दूं?

—कह दिया न, कि मेरे जाब में कोई रिस्क नहीं।

—कमाल है! खुदा न खास्ता आपको किसी ने छुरा . . .

—कैसे भोंकेगा? मैं छुरा भुंकवाने का काम ही नहीं करूंगा।

—अपना नैतिक दायित्व भी नहीं निबाहेंगे? जमाना आप पर थूकेगा।

—तो छुरा भुंकवाना या जूता खाना नैतिक दायित्व है?

—मैंने यह कब कहा? ये तो नैतिक दायित्व निबाहने के परिणाम मात्र हैं।

—मुझसे यह नहीं होगा।

—पर आप पर भावी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है . . . आप कैसी गैर-जिम्मेदारी की बात करते हैं?

—अभी आपने फरमाया कि एक नैतिकता के दावेदार को छुरा भोंक दिया गया?

—जी हां।

—उसके नाम पर कोई रोने वाला है?

—जी, उसकी बीवी दहाड़ मार-मारकर रो रही है।

—और?

—और उसके बच्चे बिलख-बिलखकर रो रहे हैं।

—हूं। इनके अलावा कोई और?

—जी, और कोई क्यों रोने चला?

—तो आओ बेचारे के नाम पर हम रो लें।

—लेकिन रोने के बाद बीमा करवाना पड़ेगा!

—पहले नैतिकता की मौत पर तो रो लें। फिर बीमे के बारे में सोचेंगे।

—सोचेंगे? यानी रो लेने के बाद भी केवल सोचेंगे ही! नहीं-नहीं। (भावुक हो जाता है।) तुम बीमा करवा ही लो, मास्टर। तुम पर भावी पीढ़ी के निर्माण का दायित्व है। तुम अपना दायित्व निबाहोगे। नकल पकड़ना तुम्हारा फर्ज है, तुम उसे करोगे। तुम अनैतिक काम नहीं होने दोगे, मास्टर। (स्वर दयनीय हो आता है।) और . . . और उधर लड़के छुरा लेकर घूम रहे हैं, मास्टर। वे . . . वे तुम्हें छुरा जरूर भोंकेंगे, मास्टर। तुम टें बोल जाओगे, मास्टर। यस मास्टर, इट विल बी ए केस आफ इंस्टांटेनियस डैथ। और . . . और तुम्हारे सात-सात अनाथ, अबोध, मासूम बच्चों और तुम्हारी इकलौती, निरीह, बेबस, बेसहारा, अबला पत्नी का तुम्हारे बाद क्या होगा? सोचो मास्टर, जरा तो सोचो . . . मेरे भी सात बच्चे हैं, इकलौती बीवी है, कुछ तो सोचो। तुम्हें बीमा करवाना ही होगा, मास्टर।

बीमा एजेंट फूट-फूटकर रो पड़ता है। मुद्रा से लगता है वह अपने ही दुख से दुखी है। मास्टर भी उसके गले लगकर जोर-जोर से रोने लगता है। दोनों काफी देर तक रोते रहते हैं। फिर बीमा एजेंट अपने कागज, फाइल इत्यादि बटोरकर चुपचाप खोली से बाहर निकल जाता है।

झलक तीसरी : तीसरे मास्टर की

मास्टर कमरे में उकडूं बैठा है। चारों ओर परीक्षा-कापियों का अंबार लगा है। मास्टर पन्ने गिन-गिनकर नंबर दे रहा है। पास ही उसकी मैट्रिक-फेल बीवी और नवीं कक्षा का विद्यार्थी उसका बड़ा लड़का बैठे हैं। सब-के-सब कापियां जांच रहे हैं। कापियां इंटर, बी.ए. से लेकर

एम.ए. तक की है।

दरवाजे पर बिना दस्तक की औपचारिकता निबाहे, दो साये उभरते हैं। एक बड़ा आदमी है और दूसरा फिल्मी नायकों की-सी वेशभूषा में बीस-बाईस वर्ष का नवयुवक।

—आ सकते हैं?

—अभ्यागत का स्वागत है।

—क्या हो रहा है?

—आलू छील रहा हूं।—मास्टर कहना चाहता था लेकिन बोला—जी, कांपी जांच रहा हूं, श्रीमान।

—किस क्लास की?

—जी, बी.ए. की।

—इन्हें जानते हो?—बड़े आदमी ने लड़के की ओर इंगित किया।

—हर नत्थू खैरे को जानना आवश्यक तो नहीं।—मास्टर कहना चाहता था, लेकिन विनम्रता से बोला— जी, इससे पहले कभी दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

—आप बी.ए. में बैठे हैं।

—मैं धन्य हुआ आपके दर्शन कर। कहिए, क्या सेवा करूं?

—जरा, इनकी कांपी निकालिए।

—और ये कांपियां भी।—लड़के ने कोई आठ-दस रोल नंबरों की लिस्ट थमा दी।

—ये क्या आपके बापों की कांपियां हैं?—मास्टर कहना चाहता था लेकिन फिर विनम्रता से बोला—ये शायद आपके मित्रों की कांपियां होंगी?

—जी हां, लंगोटियों की हैं।

—अच्छा। मैं समझा था फुलपैंटियों की हैं?—मास्टर बुदबुदाया। फिर बोला—लेकिन नंबर बढ़ाना अनैतिक कार्य है।

—बढ़ा भी दीजिए, क्या जाता है?—साम-नीति।

—यह अनैतिक कार्य है।

—आपको एक कांपी जांचने का कितना मिलता है?

—हमसे सौ रुपए लो। मगर नंबर बढ़ओ।—दाम-नीति।

—नहीं, यह कार्य अनैतिक है।

—तुम्हें मालूम है कि यदि यह न हुआ तो बीच चौराहे पर तुम्हारी चमड़ी उधड़ सकती है। कालेज का चेयरमैन मेरा मामा है, तुम्हारी नौकरी जा सकती है। तुम दाने-दाने को मोहताज हो सकते हो। तुम्हारे बच्चे टिन का कटोरा लेकर दर-दर की भीख मांगने को फिर सकते हैं। —दंड नीति।

—जान चली जाए लेकिन अनैतिक काम नहीं करूंगा। बोटी-बोटी कट जाए, खून

का कतरा-कतरा बह जाए, लेकिन यह मुझसे नहीं होगा।

बड़े आदमी ने पैंतरा बदला। अब वह भेद-नीति का अनुसरण कर रहा था।

—अच्छा, तुमने चगन के नंबर बढ़ाए थे न?

—कौन कहता है? सबूत?

—सबूत दूंगा। और तुम छात्रा कृष्णाबाई को परीक्षा-हाल में चिट सप्लाई करते थे न?

—सबूत?

—सबूत दूंगा। अच्छा, छात्रा रामकली और लक्ष्मीबाई से तुम्हारा इश्क काफी दिनों तक चलता रहा था न?

मास्टर की बीवी और लड़का उठकर अंदर चले जाते हैं।

—और रामकलीबाई के गालों को सहलाकर बालों में फूल खोंसते समय छात्र चंगीलाल और मंगीलाल ने तुम्हें रंगे हाथों पकड़ा था न?

मास्टर साष्टांग दंडवत की मुद्रा में बड़े आदमी के समक्ष लेट जाता है।

—बस-बस दयानिधान, अब और मत खोलो।

—तो फिर कांपी खोलो।

मास्टर ने रोल नंबर ले लिए और कांपियां खोलने लगा।

—अरे, ये तो हिन्दी की कापियां हैं! ये मेरे पास नहीं हैं।

—क्यों, हिन्दी तो आप ही पढ़ाते हैं न?

—हां, पर कांपियां अंग्रेजी की जांच रहा हूं।

—भला क्यों?

—हिन्दी की 'एग्जामिनरशिप' नहीं मिली।

—और अंग्रेजी की मिल गई?

—जी, मैंने अंग्रेजी भी पढ़ी है।—इसके बाद मास्टर 'नरो वा कुंजरो वा' की स्टाइल में धीरे-से बुदबुदाया—दरअसल फूफाजी अंग्रेजी के हेड आफ दि डिपार्टमेंट हैं।—मास्टर जमीन से चार अंगुल ऊपर तकिये पर बैठा था। झूठ बोलकर तकिया एक ओर खिसका दिया और जमीन पर आ टिका।

कमाल है! पढ़ाते कुछ हैं, जांचते कुछ हैं।

—हें हें हें . . . मास्टर घिघियाया—यही तो एक जरिया है धन-प्राप्ति का। इस जाब में रिश्वत, घुसखोरी नहीं चलती न। बड़ा आनिस्ट आब है। दोनों उठकर चले जाते हैं। मास्टर फिर पन्ने गिन-गिनकर नंबर देने लगता है।

जैसे कोई और हो!

अशोक शुक्ल

हाय-हाय, क्या बाडी थी। क्या चाल थी, चार कदम चलकर कैसे झटके-से रुकती थी! जिधर से निकल जाती, जैसे चक्कू चल जाते। सैकड़ों दीवाने घेर लेते, आगे-पीछे भागते। शोर मच जाता—आ गई, आ गई। और सीधी कितनी? चाहे बीच सड़क में रोककर पकड़ लो! हाय-हाय क्या चीज थी!

वह यू.पी. रोडवेज की बस थी।

हाय-हाय, क्या बाडी थी! क्या चाल थी! क्या शान थी! जैसे सरकार हो।

बिलकुल वही सरकारों-सा स्वभाव। पहले लेट हुई। फिर ओवरलोड हो गई। कंडक्टर ने चलने की सीटी बजाई तो ड्राइवर इस शान से चढ़ा, जैसे एवरेस्ट पर चढ़ा हो। फिर उसने पीछे मुड़कर सवारियों—विशेषकर महिला सवारियों का निरीक्षण किया और बस स्टार्ट करने की कामना से कई पुर्जों को हिलाया-डुलाया। मगर बस बिलकुल सरकार की तरह अड़ गई, टस-से-मस न हुई।

तब कंडक्टर ऐक्शन में आया। वाह रे कंडक्टर! आज भी जब उसका ध्यान आता है, मुंह से धन्य-धन्य निकलता है। उसने एक साथ अनेक काम किए।

सर्वप्रथम, अपने कठोर नियंत्रण में सारी सवारियां उतारीं और उनसे बस ठेलवाई। क्या अलौकिक दृश्य था। सहकारिता का कैसा अनूठा चित्र था! छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, नर-नारी, सभी धक्का लगा रहे थे। एकता छलक पड़ रही थी। गोरी-गोरी मेहंदी-लगी हथेलियां किस प्यार से बस को धकेल रही थीं। जैसे कोई प्रिया अपने प्रिय की किसी छेड़खानी से अतिशय प्रसन्न हो, उसे 'हटो, तुम बड़े वो हो' कहती हुई परे धकेले! उस समय, सबके मन में एक ही इच्छा थी—काश! हम भी बस होते।

लेकिन शृंगार रस की इस कोश वाली चर्चा को यहीं छोड़ आपका ध्यान पुनः बस धकेलने से जन्मी सहकारिता की ओर खींचना चाहता हूं। उस दिन विश्वास हो गया, जब तक रेलगाड़ियां भी इसी तरह ठेल-ठेलकर स्टार्ट न कराई जाएगी, इस देश में सहकारिता आंदोलन कदापि न पनप सकेगा।

बस चली। ओवरलोड थी, इसलिए चलने के साथ ही कई समस्याएं उग आईं। ठीक

कांग्रेस-विभाजन की तरह कुछ लोग जो पहले खड़े थे, अब दूसरों की सीटों पर जम चुके थे। बड़ी अव्यवस्था थी, चीख-पुकार मच रही थी। झगड़े बढ़ते जा रहे थे। मारपीट की संभावना काफी उज्ज्वल थी। स्थिति इतनी विस्फोटक थी कि सरकार होती, तो गोली चलवा देती; कि तभी हमारे प्यारे कंडक्टर ने माननीय गृहमंत्री का रोल संभाला।

सर्वप्रथम उसने अपराधी और निरपराधी— दोनों को बुरी तरह डांटा। लगा, गृहमंत्री रेडियो पर गरज रहे हैं। फिर उसने किसी को उठाया, किसी को बैठाया। एक आदमी को बस से उतार देने की धमकी दी। जैसे किसी सूबाई मिनिस्टर को कैबिनेट से ड्राप करने की धमकी दी गई हो। अंततः व्यवस्था किसी अपमानित लड़की-सी लौटी। स्थिति—गुजरात की तरह—नार्मल हो गई।

अब मैं कंडक्टर से प्रभावित हो चला था। स्वयं को सहकारिता-आंदोलन के कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में प्रमाणित करने के बाद उसने जिस लाघव से गृह मंत्रालय का काम संभाला था, वह सराहनीय ही नहीं सरासर दर्शनीय भी था। और . . . बस, कमाल हो गया। गृह मंत्रालय का अनुबंध पूरा होने से पहले ही बेचारे कंडक्टर को एक तीसरे मंत्रालय का काम स्वीकार करना पड़ा। यह था—'कानून मंत्रालय'।

एक महिला किसी सज्जन की खाली सीट पर गैर कानूनी ढंग से बैठ गई थी, वे इतने स्वस्थ थीं कि सीट में बाकी बचे दो पुरुष कुचले जा रहे थे। मरता क्या न करता, सभी ने मिलकर कंडक्टर से इस प्राणलेवा जुल्म के खिलाफ अपील की।

कंडक्टर ने घटनास्थल पर जाकर जांच की, आरोप आश्चर्यजनक रूप से सही था। अब तो बेचारा कंडक्टर बड़े धर्मसंकट में पड़ गया—एक ओर महिला के विरुद्ध प्रबल जनमत, दूसरी ओर नारी-मात्र के प्रति पक्षपात करने की उसकी पुरानी आदत! अब क्या हो?

वही हुआ, जो युगों-युगों से होता आया है। कंडक्टर को कर्त्तव्य की कठोर बलिवेदी पर अपनी सुकोमल भावनाओं का खून चढ़ाना पड़ा। उसने जैसे कलेजे पर पत्थर रख निर्णय दिया—महिला सीट से उठ जाएं। किंतु वह पारंपरिक महिला नहीं थी, वह शीतयुद्ध पर उतर आई और बिफरकर बोली, "किसी का बाप मुझे इस सीट से नहीं उठा सकता।"

उनका दावा ठीक था, किसी का बाप—जब तक भारोतोल्लन में हेवीवेट चैंपियन न हो, सचमुच उन्हें नहीं उठा सकता था। कंडक्टर तत्काल कर्मठ गांधीवादी बन गया और उसने बस एक ओर खड़ी करवाकर घोषणा की, "जब तक महिला सीट खाली नहीं करती, बस नहीं चलेगी।"

तब जैसा कि स्वाभाविक ही है कई हैमरशोल्ड, कई ऊ थां, कई किसिंगर समझौता कराने के लिए आगे आए। इन शांति-प्रस्तावकों में अधिकांश वे थे जो सुंदरी किंवा युवती महिलाओं के आसपास बैठे थे। अंत में कंडक्टर की नैतिक जीत हुई और महिला को सीट

खाली करनी पड़ी। यद्यपि उन्होंने सीट तभी खाली की, जब उन्हें बड़े सम्मान के साथ स्वयं कंडक्टर की सीट आफर की गई, जिसे उन्होंने निस्संकोच स्वीकार किया।

कुछ देर बाद पहला ठहराव आया। बस का इंजन किसी अफसर के दिमाग की तरह गर्म हो गया था। उसे शांत करने के लिए ठंडा पानी डाला गया। लगा, किसी नब्बे वर्ष के मंत्री को आक्सीजन दी जा रही हो।

कंडक्टर चलती बस से कूदकर बड़ी आत्मीयता के साथ सामने की दुकानों में घुस गया था। उसने चाय वाले को अखबार दिया, पान वाले को उसके चाचा का पत्र दिया और मूंगफली वाले को बताया कि शहर में मूंगफली के दाम बढ़ने वाले हैं। अब इतना तो अंधा भी देख सकता है कि कंडक्टर द्वारा किए गए ये तीनों काम मूलतः सूचना प्रसारण मंत्रालय के थे। सहृदय पाठकों को स्मरण ही होगा कि इसके पूर्व हमारा प्यारा कंडक्टर बस ठेलवाकर सहकारिता मंत्रालय का, शांति और व्यवस्था कायम कर गृह मंत्रालय का और निष्पक्ष निर्णय देकर कानून मंत्रालय का काम निःस्वार्थ भाव से कर चुका है। बस के—धीरे-धीरे ही सही—चलने से परिवहन मंत्रालय का काम तो अप्रासंगिक रूप से चल ही रहा था।

इस स्टापेज पर नीबू लदे। बस फिर झपक गई थी। जब उसे पत्नी की तरह कोच-कोचकर जगाया गया, तब गुर्राकर चल पड़ी। लगभग इसी के साथ नीबुओं की ढुलाई को लेकर एक प्रेमपूर्ण लड़ाई प्रारंभ हुई। लड़ाई नीबू-स्वामी और कंडक्टर में थी। मुख्य सिद्धांत पर दोनों पक्ष एकमत थे कि ढुलाई सरकार द्वारा निर्धारित दर पर नहीं दी जाएगी, न ली जाएगी। दोनों पक्षों के पास अपने-अपने प्रमाण थे। व्यापारी बता रहा था, उसने कब-कब, किस-किस बस से इससे भी ज्यादा माल कम पैसों में ढोया है। वह कंडक्टर को अपने पूववर्ती कंडक्टरों से प्रेरणा लेने के लिए उत्साहित कर रहा था। कंडक्टर भी ऐसे अनेक उदाहरण दे रहा था जिनमें उसने इससे भी कम माल के और ज्यादा पैसे वसूल किए थे। दोनों पक्ष, बीच-बीच में, विपक्षी के प्रति अपना सहज प्रेम दर्शाते चल रहे थे। व्यापारी कहता था, "तुम अपने आदमी हो, इसीलिए इतना दे रहा हूं। नहीं तो रेट इससे कम है।" कंडक्टर का दावा था कि व्यापारी रोज का चलने वाला है, इसलिए वह लिहाज कर रहा है, वैसे कायदे से किराया ज्यादा बनता है।

फिर वे डाक्टर किसिंजर को मात कर गए। हमारे देखते-देखते उन्होंने कोई ऐसा गुप्त समझौता किया, जिसे हम सुनकर भी समझ न सके। व्यापारी ने समझौते के अंतर्गत कंडक्टर को नकद राशि के अतिरिक्त तीस नीबू भी दिए।

जरा सोचिए, देश में पहले ही कितनी ज्यादा मुद्रा फैल रही है। सभी चीख रहे हैं, 'मुद्रा-प्रसार कम करो।' ऐसी नाजुक स्थिति में यदि कंडक्टर तीस नीबू न लेकर नकद मुद्रा लेता तो क्या होता। मजबूरन सरकार को और नोट छापने पड़ते। मुद्रा पर अनावश्यक

दबाव पड़ता। निश्चय ही इस समय कंडक्टर वित्त मंत्रालय के अवैतनिक सलाहकार के रूप में काम कर रहा था।

अगले स्टापेज पर, पूर्ववत पत्र बंटे, अफवाहें उड़ीं, चाय वाले की बेंच पर बैठकर कंडक्टर ने हिसाब किया। ड्राइवर को ईमानदारी के साथ उसका हिस्सा दिया और बस के कुली को अठन्नी बतौर इनाम दी। बस को अनंतकाल तक के लिए रुकी देख बहुत-सी सवारियां उतरीं, प्रायः सभी ने चाय पी। चाय वाले की बिक्री बढ़ी, जिसे उसने चाय का स्तर गिराकर संतुलित किया।

आपने गौर किया, यह सब क्या हो रहा था? हमारे प्यारे कंडक्टर ने प्रत्यक्ष रूप से अपनी, ड्राइवर की तथा कुली की और अप्रत्यक्ष रूप से चाय-पान वालों की आमदनी बढ़ाई थी। वह साफ-साफ गरीबी हटा रहा था। यह प्रधानमंत्री का काम था। जो यह बिना यश की कामना के पूरा कर रहा था।

बस रात भर जगी अभिसारिका-सी फिर सो गई थी। लोग उसे छेड़-छेड़कर फिर से स्टार्ट हो जाने के लिए पटा रहे थे। मैं दूर खड़ा कंडक्टर की कर्मठता पर मुग्ध हुए जा रहा था, कैसा अद्भुत व्यक्ति था। मेरे देखते-देखते वह सहकारिता, गृह, कानून, परिवहन, सूचना-प्रसारण, वित्त और प्रधानमंत्री के मंत्रालयों के काम पूरी दक्षता से पूरे करके दिखा चुका था।

अब, संभावनाओं का तो कोई अंत है नहीं। मैं जानता था, अभी वह कंडक्टर और न जाने कितने राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय दायित्व पूरे करेगा। मुझे स्पष्ट दिख रहा था, उसके कंडक्टरी थैले में, बहुत-से, प्रायः सभी मंत्रालय बंद हैं। कई बार, जब थैला खोलकर मनचाही रेजगारी खोजता था, तब मुझे शक होता था, वह रेजगारी नहीं मौके के अनुरूप किसी उपयुक्त मंत्रालय की खोज कर रहा है।

उसके गुणों का कहीं ओर-छोर न देख, मैंने आंखें बंद कर मन-ही-मन उसे श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया फिर आंखें खोलीं तो देखा, बस ठेली जा रही थी।

देश-सेवा के अखाड़े में . . .

सूर्य बाला

यह खबर चारों तरफ आग की तरह फैल गई कि मैं देश-सेवा के लिए उतरने वाला हूं। जिसने सुना, भागा आया और मेरे निर्णय की दाद दी। बधाई-संदेशों का तांता लग गया—"सुना, आप देश-सेवा पर उतर रहे हैं, ईश्वर देश का भला करें!"

प्रस्ताव-पर-प्रस्ताव आने लगे कि बाइ द वे, शुरुआत कहां से कर रहे हैं? कौन-सा एरिया चुन रहे हैं? हमारे अंचल से करिए न! बहुत स्कोप है। हेलीपैड बनकर विकसित होने लायक इफरात जमीन पड़ी है। आबोहवा भी स्वास्थ्यप्रद है। ईश्वर की दया से गरीबी, भुखमरी और अशिक्षा आदि किसी बात की कमी नहीं। लोग भी सीधे-सादे नादान किस्म के हैं—आंखें मूंदकर माई-बाप का रिश्ता जोड़ लेने वाले। अगले दस सालों तक तो बहकने की कोई गुंजाईश नहीं। वर्षों सुख-शांति, अमन-चैन से गुजार सकेंगे, आप 'माई-बाप', इन देश के लालों के साथ। ये हमेशा रोटी के लाले पड़े रहने पर भी कभी शिकवे-शिकायत नहीं करते। हर हाल में मुंह सिलकर रहने की जबरदस्त ट्रेनिंग मिली है इन्हें।

मैंने सोचा, जगहें तो सारी एक-सी हैं; ऐसे स्कोप कहां नहीं है! लेकिन जब कहा जा रहा है, आफर मिला है तो उन्हीं के एरिया से शुरुआत हो जाए। मेरा निश्चय सुनते ही प्रेस वाले दौड़े आए और आग की तरह फैलती इस खबर में घी डाल गए।

शाम को उस एरिया का सबसे बड़ा कांट्रेक्टर आया और सलाम करके बोला

''बंगला कहां छवेगा?

मैं हैरान। कैसा बंगला? अभी देश-सेवा तो हुई नहीं कुछ, उससे पहले बंगला छवाने आ गया!

उसने उसी अदब भरी मुस्तैदी से कहा, ''वही तो, जब तक बंगला नहीं छवेगा, देश-सेवा,—जनहित जैसे महान काम कहां बैठकर करेंगे आप? लोक-सेवक लोग आकर कहां ठहरेंगे? मुलाकाती कहां लाइन लगाएंगे? संतरी कहां सिड़केगा उन्हें? . . . फूंस की छत या टिन के शैड के नीचे मुलाकाती नहीं इकट्ठे होते। कोई बेवकूफ थोड़े है। सीधी-सी बात है, जो अपने सिर पर छत नहीं खड़ी कर पाया, वह उनके सिरों पर साया कहां से करेगा? अपना नहीं तो कम-से-कम अपने दुःख-दर्द सुनाने आने वालों का तो ख्याल कीजिए।''

मैंने कहा, "तब फिर छवा दीजिए, जहां ठीक समझिए।"

वह खुश हो गया। वहीं-का-वहीं बैठकर नक्शा वगैरह खींचकर वह बोला, "गेराज एक रहेगा या दो?"

मैंने कहा, "अरे यार! पहले कार तो हो . . .!"

उसने कहा, "आपकी न सही, मुलाकातियों की तो होगी! और फिर यों समझ लीजिए कि बप्पा साहब को देशहित के पैवेलियन में कुल छः महीने ही गुजरे हैं और आलरेडी दोनों बेटों के ट्रकों और स्टेशन-वैगनों के लिए जगह की कमी पड़ रही है।"

मैंने आज्ञाकारी बच्चे की तरह कहा, "तब जैसा आप लोग उचित समझिए।"

कांट्रेक्टर खुश हो गया, "ऐसा करते हैं, एक गेराज बना देते हैं और दो की जगह छोड़ देते हैं . . . पोर्च पोर्टिको आलीशान बनाएंगे, नहीं तो संतरी टुटपुंजिए मुलाकातियों को रुआब से दुतकारेगा कैसे? संतरी जितना कटखना होता है, आदमी उतना ही पहुंच वाला माना जाता है। . . . अच्छा मैं चलता हूं। बंगले का आहाता, लान सींचने, साग-सब्जी, फूल-पत्तों की क्यारी संवारने के लिए मेरा एक आदमी है, बड़ा नेक और विश्वासपात्र। इस काम के लिए उसी को रखिएगा, जनहित जैसे काम करने जा रहे हैं तो इस एरिया के नक्कालों से सावधान रहने की जरूरत है।"

शाम को उस एरिया के व्यापारी-संगठन का प्रमुख आया और आजिजी से बोला, "देश-सेवियों का भोजन तो अत्यंत संतुलित और नियमित होता है। साहब तो अनाज को हाथ नहीं लगाते थे और देख लीजिए काठी ऐसी है कि सत्तर की उम्र में सत्ताईस वालों को बगल में दबाकर घूमें। अखाड़ेबाजों-सा सधा और तना हुआ शरीर . . . सिर्फ मीनू की बदौलत ही तो! बाइ द वे आपका मीनू?"

मैंने झेंपकर कहा, "अभी बनाया नहीं . . .।"

उसने ताकीद की, "तो झटपट बना डालिए—खानपान की दुरुस्ती पहले। आप जानो रूखी-सूखी वाले महात्मा को कौन पूछता है? मेरा तो आज तक किसी नमक-रोटी खाने वाली महान आत्मा से साबका पड़ा नहीं। मेरे देखते-देखते कितने ही जनसेवी नमक, रोटी, प्याज से शुरू होकर फल, दूध और सूखे मेवों वाले मीनू पर स्थानांतरित हो आज तक स्वास्थ्य-लाभ कर रहे हैं।"

मैंने संकोच से कहा, "सूखे मेवे तो गरिष्ठ होंगे। सोचता हूं, शुरू-शुरू में रोटी-दाल ही ठीक रहेगा।'

उसने फौरन टोककर कहा, "देखिए, आप दाल-रोटी खाइए या नमक-रोटी, लेकिन एक बात समझ लीजिए—इधर भड़काने वाले बहुत हैं—घर-घर यह बात पहुंच जाएगी कि जो खुद नमक-रोटी खाता है वह हमें मालपुए कहां से खिलाएगा?—और इस एरिया के लोग भोले-भाले, नादान हैं।"

मैंने कहा, "आपकी बात ठीक है, लेकिन मेवे बहुत महंगे भी तो हैं।"

वह बेतकल्लुफी से बोला, "क्यों शर्मिंदा कर रहे हैं आप? आप इस एरिया के जनसेवक होकर आ रहे हैं और खरीदकर मेवे खाएंगे? लानत नहीं होगी इस जमीन के बाशिंदों के लिए? आखिर हम किस मर्ज की दवा हैं? आज ही सूखे मेवों का एक टोकरा भेजे देते हैं।"

मैंने जल्दी से कहा, "नहीं-नहीं, आपके मेवे . . ."

उन्होंने बात काटकर कहा, "उन्हें मेरे मेवे नहीं, देश-सेवा के मेवे समझकर खाइएगा, बस! वैसे भी आप चखकर देखिएगा तब समझिएगा कि खरीदकर खाए मेवों में वो स्वाद और लज्जत कहां जो देश-सेवा से प्राप्त मेवे में होती है! पैसों की चिंता मत कीजिएगा! मुझे आप पर भरोसा है; मेरे पैसे कहीं नहीं जाएंगे। सब वसूल हो जाएंगे।"

अगले दिन उस एरिया का नामी-गिरामी दर्जी आया और बड़े प्यार से मुझे अपने फीते में जकड़ते हुए बोला, "आप फिक्र न कीजिए। मुझे सब अंदाज है। वप्पा साहब से मैंने पहली बार नाप लेते वक्त ही कह दिया था कि अगली अचकन और पाजामे के लिए कम-से-कम पौना-पौना मीटर कपड़ा ज्यादा लाइएगा। और वही हुआ! वैसे ही आप भी करिएगा . . . लिबास तो यही रखेंगे न! रखना भी चाहिए। शुभ्र, स्वच्छ बकुल-पंखी—अर्थात् बगुले की तरह सफेद शफ्फाफ। हर मौके और हर जगह के लिए पूरी तरह दुरुस्त। जमाने की हवा सर्द हो या गर्म, ये वस्त्र पूरी तरह वातानुकूलित रहते हैं। समझ लीजिए, लिफाफे हैं जो अपना मजमून बदलते रहते हैं। कोई बाहर से इनके अंदर का मजमून भांप नहीं सकता। और इधर तो इस लिबास की महिमा और बढ़ गई है। इतिहास बताता है कि पहले इस लिबास को महान लोग पहनते थे, अब इसे जो पहन लेता है तुरत-फुरत महान हो जाता है।"

अगले दिन सुबह-सुबह तेल-पिलाई लाठी और बुल-बर्करी सीने वाला एक मुच्छड़ आया और सलाम ठोंककर बोला, "मैं संतरी हूं, सिर्फ देश-सेवियों के पोर्टिकों और पोर्चों के लिए समर्पित। अब तक की सारी जिंदगी, समझ लीजिए, देश-सेवी फाटकों और पोर्चों पर ही कुर्बान की है। खिदमत में कोई कोर-कसर नहीं रहेगी, इसका भरोसा रखें। वप्पा साहब ने तो पूरी हक-हुकूमत दे रखी थी। जिसे चाहता अंदर जाने देता, जिसे चाहता चार धक्के दे, कालर पकड़, बाहर कर देता। बप्पा साहब कभी दखल न देते थे।

"अहा, क्या आदमी थे! कभी पूछा-पैरवी की ही नहीं। मेरी वजह से कभी टुटपुंजिए, फटेहाल मुलाकती उनके पास फटक ही नहीं पाए। समझ लीजिए, वे तो नाम के मंतरी थे। असली मंतरी तो मैं यानी उनका संतरी ही हुआ करता था। अब आपको क्या बताना, समझ लीजिए एक तरह से पूरे देश की बागडोर संतरियों के हाथ में ही होती है . . . अच्छा चलता हूं। फाटक, पोर्टिको तैयार हो जाए तो बुलवा लीजिएगा। ये रहा मेरा विजिटिंग

कार्ड। मेरे सिवा कोई और यहां संतरी न होने पाए, इसका ख्याल रखिएगा। यह ओहदा जिस-तिस को सौंपने लायक नहीं। बड़ी जिम्मेदारी, बड़े जोखम का काम है। हां, सांझ को इस इलाके के कुछ और नामी-गिरामी, तावेदार लोग आपसे दुआ-सलाम किया चाहते हैं जिससे आपको पूरा इत्मीनान हो सके।"

शाम को, सर पे टोपी लाल, गले में रेशम का रूमाल बांधे वे लोग भी आए और मुझे पूरा भरोसा दिला गए कि 'हमारे रहते इस पूरे इलाकेभर में किसी की हिम्मत नहीं जो आपके काम में दखल दे। न आपकी तरफ कोई आंख उठा सकता है, न कोई इन्क्वायरी बैठ सकती है। हम जो हैं! आप तो बस खाइए और चैन से सोते हुए देश की खुशहाली का सपना देखिए। किसी की मजाल नहीं जो कोई रोड़ा अटकाए! अटकाए तो हमें तलब कीजिएगा। इसी तरह हमें पूरा भरोसा है कि आपके रहते हम पर आंच न आने पाएगी। है कि नहीं? न हमारा काम रुके, न आपका। बप्पा साहब जब तक रहे अपनी बात रखी, हम निर्द्वंद्व घूमते रहे। अब यह जिम्मेदारी आप पर। आप अपना हाथ हमारे सर पे रख दें तो हमें भी इत्मीनान हो जाए।"

मैंने ससंकोच उन्हें समझाने की कोशिश की, "लगता है आप लोगों को कुछ गलतफहमी हो गई है—मैं तो यहां देश-सेवा के इरादे से आया हूं।"

उन्होंने फौरन कहा, "लीजिए, तो हम कौन-से देश के बाहर हैं? हम भी तो उसी देश के वासी हैं जिस देश में गंगा बहती है, प्रदूषण की। हमें कोई गलतफहमी नहीं है! और एक बात आपको भी याद दिला दें कि आप भी किसी गलतफहमी में न पड़िएगा, यह इलाका जितना आपका है उतना ही हमारा भी। इतना ध्यान रखिएगा, देश-सेवा के क्षेत्र में रहकर हमारे जैसे देशवासियों से द्रोह न मोल लीजिएगा! बाकी जिम्मेदारी हमारी। न वोट की कमी होने देंगे न नोट की। आप चैन से सामाजिक-आर्थिक क्षेत्र के पिछड़े हुए तमाम काम कीजिए, चाहे काम तमाम कीजिए।'

इस प्रकार धमकी भरे आश्वासन और आश्वासनभरी धमकियां देते हुए भूतपूर्व मंतरी के संतरी और उसके बिरादरों ने अपने-अपने क्षेत्रों को गमन किया और उस विचारोत्तेजक धमकी से प्रेरित हुआ मैं, ओ मेरे क्षेत्रवासियों, आपके नाम यह संदेशनुमा धमकी जारी करता हूं कि चूंकि मुझे अब कुछ भरोसेमंद साथी मिल गए हैं, अतः मैं बेखौफ, बेहिचक आपके क्षेत्र की सेवा के अखाड़े में कूदने वाला हूं। सावधान!

विक्रमार्क, बुढ़िया और सराय रोहिल्ला

हरीश नवल

विक्रमार्क ने हठ नहीं छोड़ा और एक बार फिर बैताल का शव पेड़ से उतार कंधे पर लादा और सदा की भांति मौन अपनी राह पर चल पड़ा। बैताल ने कुछ देर बाद कहा, "मुझे तुम पर तरस आता है। तुम्हारा रास्ता काटने के लिए आज तुम्हें मैं तुम्हारी राजधानी दिल्ली का एक किस्सा सुनाता हूं। दिल्ली का एक आम इलाका है सराय रोहिल्ला, वहां बशेशरनाथ अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रहता है। लोअर मिडिल क्लास से ताल्लुक रखता है। उसके दो बड़े भाई दिल्ली में ही अलग-अलग जगहों पर रहते हैं, एक इकलौती बहन है जो शादी के बाद अपने इकलौते पति के साथ हापुड़ में रहती है। इन चारों की मां मेरे किस्से की नायिका है।

''बुढ़िया प्रागैतिहासिक हो चुकी थी। शरीर की शक्ति लगभग चुक गई थी और चूंकि उसके तीनों बेटे उसके हाथों से निकलकर अपनी पत्नियों के हाथों में खेल रहे थे, अतः वह बेचारी मेरठ में अपने छोटे भाई के साथ रहकर दिन काट रही थी। एक दिन होनी ऐसी हुई कि उसके भाई की मृत्यु हो गई। भाई के पुत्र ने सराय रोहिल्ला में बशेशरनाथ को तार दे दिया कि वे आएं और अपनी चल संपत्ति मां को ले जाएं जो वहां भाई के गम में अचल हो रही है। (हां, तुम्हें यह बता दूं कि मेरठ वाले की डायरी में सराय रोहिल्ला वाले का ही पता था)।''

बैताल ने सांस लेकर फिर किस्सा शुरू किया, "बशेशरनाथ को जब तार मिला, उस समय वह पत्नीविहीन हो, सुखी जीवन व्यतीत कर रहा था (पत्नी मायके गई हुई थी)। वह मां का सबसे छोटा व लाड़ला बेटा था, शायद इसीलिए उसके दिल में मां के लिए कहीं थोड़ी-सी 'वैकेंसी' थी। वह तुरंत मेरठ गया और मां को सराय रोहिल्ला ले आया। मां, भाई के गम व बुढ़ापे की वजह से क्षीण हो गई थी। यहां दो दिन तो आराम से कटे किंतु तीसरे दिन जैसे ही श्रीमती बशेशरनाथ बच्चों के साथ घर लौटीं तो लौटते ही उसकी छाती पर काला भुजंग लोट गया। जब उसने देखा कि उसके बिछौने पर सास जी लेटी हुई हैं और पतिदेव टेम्परेचर ले रहे हैं। कठिनाई से श्रीमतीनाथ ने अपना टेम्परेचर डाऊन किया। फारमल नमस्कार-चमत्कार के बाद पहला काम तो यह किया कि सास को अपने

बिछौने से हटाकर पीछे की कोठरी में सास की उमर से मेल खाती हुई चारपाई-सी वस्तु पर स्थानांतरित कर दिया और फिर बशेशरनाथ पर चढ़ बैठी, 'क्यूं जी, एक तुम्हीं लाड़ले शरवन कुमार थे जो डोली में बिठाकर बुढ़िया को सराय रोहिल्ला तीर्थ पर लाकर पुन कमा रहे हो? बाकी दोनों सौतेले थे, मेरी जान को यही आफत लानी थी . . . " आदि . . . आदि . . . । उधर बुढ़िया बुखार में डूबी हुई थी। ये डायलाग सुनकर उसका दिल भी डूबने लगा, लेकिन तभी उसे तिनके का सहारा मिला जब बशेशरनाथ ने क्रोध दबाते हुए कूटनीतीय शैली में कहा, "भागवान देखो अब यह उनकी विदा-वेला है, जाने कब चली जाएं, मैं तो जान-बूझकर उन्हें यहां लाया हूं ताकि लोग देखें और कहें कि अंतिम वक्त में बशेशर की घरवाली ही काम आई, सबसे छोटी बहू थी लेकिन सास का ख्याल उसी को सबसे ज्यादा था, फिर मां कौन-सा तंग करेंगी, पड़ी रहेंगी कोठरी में, खा-पी ज्यादा सकती नहीं हैं, राशन-कार्ड में उनका नाम चढ़वा लेंगे और राशन ब्लैक कर देंगे, क्यों?''

''बुढ़िया ने बेटे के कथन में से अपने मतलब का सार गह लिया और बाकी थोथा समझकर उड़ा दिया। और श्रीमती बशेशरनाथ ने बहुत अर्से बाद पति को समझदार विशेषण से विभूषित किया।

''बहन-भाइयों तक खबर पहुंची कि मां बीमार है और सराय रोहिल्ला में ही है, सो अगले इतवार नाश्ते के समय बड़े और भोजन के समय तक मझले भाई सपरिवार सराय रोहिल्ला पहुंच गए। मां का शारीरिक संस्करण कितना संक्षिप्त हो गया था, इस बात की वृहत रूप में चर्चा करने लगे। बच्चों के लिए दादी मां एक अजीब वस्तु थी, वे उसे छू-छू कर देख रहे थे कि कहां-कहां से बोलती है। हापुड़ से एक शाम बहन भी पति के साथ खाली हाथ आई और दो दिन बाद थैले भरकर ले गई।"

विक्रमार्क थक गया था, उसने कंधा बदला, बैताल फिर चालू हो गया, "दिनों के साथ-साथ मां का शरीर भी गलने लगा। नौबत यहां तक पहुंच गई कि मां का शौचालय तक पहुंचना भी मुहाल हो गया जिससे श्रीमती बशेशरनाथ का बुरा हाल हो गया। परिवार-नियोजन वालों के सौजन्य से बच्चों को धोने-पोंछने से किसी तरह छुटकारा मिला था, लेकिन अब बुढ़िया ने भूली दास्तां बहुत जोर से याद दिला दी। कुछ दिन तो दवा-दारू (दारू बशेशरनाथ पीता था) की गई पर फिर श्री व श्रीमती नाथ को बोध हुआ कि यदि दवाएं चलती रहीं और असली मिलती रहीं तो बुढ़िया न जाने कब तक चलती रहे, अतः दवाएं बंद करके दुआएं चालू कर दीं कि छुटकारा जल्दी मिले, किंतु साईयां उसे राखने के पक्ष में था। श्रीमती बशेशरनाथ रोज सुबह एक नई आशा से उठतीं किंतु बुढ़िया को पलकें झपकाते देख निराश हो जातीं। बुढ़िया खाती कम थी, किंतु बनाती अधिक थी। घर के सभी पुराने कपड़े उसके उत्पादन को ठिकाने पहुंचाने में खत्म हो चुके थे। श्रीमती बशेशरनाथ ने कई मन्नतें मानीं, टोटके किए, व्रत भी रखे लेकिन हर वार खाली गया।

हार कर उन्होंने एक ज्योतिषी को बुलाया और उससे बुढ़िया की मुक्ति सूचना चाही। ज्योतिषी अनब्याहा था। उसने जांच-वांचकर बताया, 'चिंता की बात नहीं है, मां जी शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएंगी।'

''उसी शाम आफिस से लौटते ही बशेशरनाथ को शाही फरमान मिला कि आज रात तक बुढ़िया जेठ जी के घर पहुंच जानी चाहिए। और उसी रात बुढ़िया का ट्रांसफर उसके बड़े पुत्र के पास मोरीगेट में हो गया।

''दो ही दिन बाद बशेशरनाथ को सूचना मिली कि मां जी की मृत्यु हो गई। सारा परिवार मोरीगेट पर एकत्र हो गया। पंडित बुलाया गया, हवन किया गया, विमान आया जिसे तीनों भाइयों ने मिलकर सजाया, उसमें फल लटकाए, गुब्बारे बांधे। बढ़िया कफन मंगाया गया, बुढ़िया के लिए कपड़े, जूते, ट्रंक, बर्तन जो उसे जीते जी नसीब न थे, लाए गए और करीने से सजा दिए गए। बड़े-बूढ़े और उनसे ज्यादा मोहल्ले की औरतों ने जो कहा, मंगाया गया। बैंड-बाजे बुलवाए गए और बहुत धूम-धाम से शव-यात्रा निगम बोध घाट की ओर रवाना हुई। घंटे बजाए गए, गुलाल, फूल और सिक्के लुटाए गए। आगे-आगे जल छिड़कते हुए सिर घुटाए हुए नंगे पैर धोती-बनियान पहनकर जेठ जी शोक-विह्वल दहाड़ें मारते चल रहे थे। श्मशान घाट पर जब बुढ़िया को जलाने के लिए पहली लपट जेठ जी ने लगाई, जेठानी पछाड़ खाकर गिर पड़ी। श्री व श्रीमती बशेशरनाथ पहले से ही आंसुओं से तर थे और जेठ जी अभी भी बिलख रहे थे।"

थोड़ी देर मौन रहने के बाद बैताल ने फिर मुंह खोला, "अच्छा विक्रमार्क, यह किस्सा समझो कि यहीं खत्म हुआ। अब इससे संबंधित मेरे प्रश्नों के उत्तर जान-बूझकर नहीं दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। प्रश्न है कि जब श्रीमती व श्री बशेशरनाथ बुढ़िया की मृत्यु ही चाहते थे तो भी उनके आंसू क्यों निकल रहे थे? दूसरे जेठ जी क्यों बिलख रहे थे और जेठानी पछाड़ खाकर क्यों गिरी?"

विक्रमार्क ने कुछ देर सिर खुजलाने के बाद उत्तर दिया, "जेठानी इसलिए पछाड़ खाकर गिरीं कि उन्हें यह अनुमान नहीं था कि बुढ़िया के मरने पर इतना अधिक पैसा खर्च करना पड़ेगा, खर्चे का हिसाब लगाते ही उन्हें गश आ गया। श्री व श्रीमती नाथ इसलिए आंसू बहा रहे थे कि दो दिन बुढ़िया को और अपने पास रखते तो जो यश जेठ-जेठानी को मिल रहा था, वह उन्हें मिलता और जेठ? वे शायद इसलिए बिलख रहे थे कि फैशनपरस्त होते हुए भी मां के मरने पर उन्हें सिर मुंड़ाना पड़ा।"

यों विक्रमार्क का मौन भंग होते ही बैताल का शव छूटकर वापिस उसी पेड़ पर लटक गया।

सब चलता है

बालेन्दु शेखर तिवारी

ठीक सौ साल पहले कविवर मैथिलीशरण गुप्त का जन्म हुआ था और तब से लगातार उनसे मिलने के प्रोग्राम मैं बनाता रहा, लेकिन अपनी व्यस्ततावश उनसे कभी न मिल सका। हारकर बेचारे अब से बाईस साल पहले अनंत यात्रा पर निकल गए और ताजा समाचार यह है कि आज तक नहीं लौटे हैं। कल उनकी 'भारत भारती' के पन्ने पलटने का चांस मिला तो यह देखकर परम प्रसन्नता हुई कि राष्ट्रकवि भी ठीक मेरी ही तरह देशदशा से दुबले होते रहते थे। उनकी तसवीरें गवाही देती हैं कि वे दुबले-पतले सज्जन थे और स्थिति यह है कि खाकसार भी वैसे ही हेल्थ का स्वामी है तथा भविष्य में राष्ट्रहित के लिए ककड़ीवत् होने के लिए भी तैयार है। लेकिन अपना देश इतना महान और विशाल है कि मेरे जैसे लोकमंगलकारी प्राणी की सेवाएं प्रचुर मात्रा में नहीं ले रहा है। अन्यथा मेरे पास सेवा का थोक स्टाक है। अफसोस तो इस बात का है कि इधर हम अपनी प्राइवेट समस्याओं को शंटिंग में डालकर देशसेवा के लिए व्याकुल हैं और उधर सब चलता है।

जी हां, सब चलता है। यह अकेला महामंत्र ही इस महामानव समुद्र को चला रहा है। आप कहीं भी कुछ भी करने के लिए परम फ्री हैं। आप किसी भी दफ्तर के किसी भी कमरे में जब चाहें तब ससम्मान प्रवेश कर सकते हैं। विद्यार्थी जब चाहें तब कक्षा में पधार सकते हैं और इच्छानुसार महाभिनिष्क्रमण भी कर सकते हैं। रेलों और बसों को यह पूरी छूट प्राप्त है कि वे अपनी मर्जी से चलें और जनता को यह अधिकार प्राप्त है कि वह रेलों और बसों पर अपनी मर्जी से लदे। बोलने वाले को सुविधा मिली हुई है कि वह शांतिपूर्वक बोले और सुनने वाले को यह छूट उपलब्ध है कि वह शांतिपूर्वक सोए। हालत यह है कि हर दिशा में सुविधा एक्सप्रेस दौड़ रही है और हर एतराज का एक ही रेडीमेड जवाब है--सब चलता है। यही कारण है कि बीच राह पर किसी गाय या बैल को अनशन की मुद्रा में विराजमान देख कर किसी सच्चे भारतवासी के मन में एक सेंटीमीटर भी आश्चर्य नहीं होता। वह सड़क ही क्या जिसके बीचोंबीच स्थापित होकर गौ माता अथवा उनके वंशज मनुष्य-चालित वाहनों को ब्रेक मारने के लिए विवश न करें। वह सड़क ही क्या जिस पर चांद की तरह हर कदम पर क्रेटर न हो। बरसात के मौसम में जल और

स्थल का भेद मिटा देने वाली प्राकृतिक छटा इन सड़कों पर अपने चरम उत्कर्ष पर रहती है। राह चलते हुए आपका पैर कीचड़ की ताजा आईसक्रीम से सन जाए अथवा पास से गुजरती हुई कार के प्रसादस्वरूप आपके कपड़े वीरगति को प्राप्त हो जाएं तो आप किसी से शिकायत नहीं कर सकते हैं। आप अपनी राह कोई फिल्मी गीत गुनगुनाते हुए बाईं ओर की फुटपाथ पर जा रहे हैं और उसी फुटपाथ पर सामने की ओर से आ रहे किसी वेगवान पुरुष से आपकी टक्कर हो जाए, तब भी आप उन्हें बाईं ओर चलने का हितोपदेश नहीं सुना सकते हैं। वजह यह कि यहां सब चलता है।

इस महामंत्र का साकार रूप उस दिन नजर आया था जिस दिन मैं पटना से गया आने वाली ट्रेन पर सवार हुआ। ट्रेन नियमानुसार अपने निश्चित समय से नब्बे मिनट विलंब से चली और पटना शहर के विभिन्न मुहल्लों में तीन बार रुकते-रुकते बची। मेरे सामने बैठे हुए सज्जन ने मेरे हाथ का अखबार, आदि से अंत तक बांच लेने के बाद ऐसी हिकारत भरी नजर से मेरी ओर देखा, जैसे डांट रहे हों कि यही सड़ा हुआ अखबार खरीदते हैं आप? उनके सवालिया मुखड़े से सहमकर मैं अपना अखबार पढ़ने लगा और थोड़ी ही देर बाद पाया कि ट्रेन एक आदर्श भारतीय गांव के सामने रुक गई है और चंद रेलयात्री ट्रेन से सधन्यवाद उतरकर गांव की ओर प्रस्थान कर रहे हैं। यह देखकर मैंने अपने सहयात्री के सामने ध्यानाकर्षण प्रस्ताव रखा कि ट्रेन को इस तरह थोड़े-से ग्रामवासियों की सुविधा के लिए नहीं रुकना चाहिए। वे अत्यंत वीतराग महात्मा की तरह बोले—सब चलता है।

ट्रेन चल पड़ी तो हमारी बातचीत का सिलसिला भी चल निकला। मैंने उन्हें बताया कि शहरों में सरेबाजार लूट और हत्या की वारदातें आम हो गई हैं तो उन्होंने फरमाया कि सब चलता है। मैंने उन्हें बताया कि यह देश इंजीनियरों और ठेकेदारों का स्वर्ग बन गया है; तो वे उतनी ही तत्परता से बोले कि सब चलता है।मैंने कहा कि भ्रष्टाचार का झरना ऊपर से नीचे तक बहता चला जा रहा है, तो उन्होंने सूचित किया कि सब चलता है। मैंने जब बताया कि पटना में एक महिला ने पांच बच्चों को जन्म दिया है, तब भी वे उसी सदा सुहागन शैली में बोले कि सब चलता है। वे बर्फी की तरह चौकोर सज्जन थे, लेकिन अपना यह छोटा-सा वक्तव्य इमरती की तरह घुमावदार स्टाइल में प्रस्तुत करते थे। मैं आपादमस्तक उनकी छवि निहारने लगा कि यह कैसा महामानव है जिसकी संवाद-योजना 'सब चलता है' से आगे ही नहीं बढ़ रही है? तभी पास बैठे हुए एक अन्य महापुरुष सहसा खड़े हो गए और डिब्बे में लगे रोशनी के बल्बों को अत्यंत मनोयोगपूर्वक निकालने लगे। आसपास के कई बल्बों को उतारकर उन्होंने अपने झोले में डाला। वह झोला भी प्राचीन काल में प्रथम श्रेणी की सीट-कवर काटकर बनाया गया था। अपना झोला हाथ में लेकर वे खतरे की जंजीर खींचने लगे। यह देखकर मैंने अपने सहयात्री को एक

बार फिर कुरेदा, लेकिन वे इस बार भी इतना ही कह सके—सब चलता है। जंजीर खींचने के परिणामस्वरूप ट्रेन रुकी तो झोलाधारी सज्जन उतरकर सामने के गांव में समा गए। उनके सम्मान में ट्रेन तब तक रुकी रही, जब तक वे वापस ट्रेन में नहीं पधारे। मैंने उन्हीं से निवेदन किया कि आपके सौजन्य से यह ट्रेन आधे घंटे तक क्यों रुकी रही, तो उन्होंने हंसते हुए निवेदन किया कि सब चलता है।

यह तो एक यात्रा की कथा सुनाई हमने कि समूचा देश कितनी निश्चिंतता से चल रहा है। सच तो यह है कि देश-दशा की चिंता करने वालों को भी अच्छी तरह पता है कि बेहतर चिंता करने से लाभ कुछ भी नहीं है। हम चाहे देश की दुम लाख सीधी करना चाहें, यह टेढ़ी-की-टेढ़ी ही रहेगी। 'सब चलता है' का मंत्र जिसने रट लिया है और इसका रहस्य जान लिया है, वही वास्तविक सिद्ध पुरुष है। बड़ी-बड़ी संगोष्ठियों और कार्यसमितियों की बैठकों के बाद अंत में यही निष्कर्ष सामने आता है कि चलने दो यार, सब चलता है।

पिछले साल मैं एक अखिल भारतीय संस्था के अखिल भारतीय आयोजन में गया था, जिसमें सातवीं कक्षा के छात्रों के लिए हिंदी की पाठ्य-पुस्तक तैयार करने की तैयारी की गई थी। समूचे हिंदुस्तान से आए विद्वानों ने आवास की व्यवस्था पर संतोष व्यक्त किया और नाश्ते में चटनी के अभाव पर खेद प्रकट किया। इस विषय पर सभी महानुभाव एकमत थे कि रात का खाना लजीज होता है, लेकिन सभी असंतुष्ट थे कि भोजन के बाद मीठे का इंतजाम नहीं है। कुल मिलाकर स्थिति यह रही कि अतिथि और उनके स्वागती सब-के-सब जलपान और भोजन की शास्त्रीय चिंता में ही लगे रहे। समारोह के समापन के दिन सातवीं कक्षा के पाठ्यक्रम निर्माण का भार एक जूनियर टीचर पर डालकर सभी अपना-अपना टी.ए. बिल स्वीकृत कराने में व्यस्त हो गए। एक पराक्रमी विद्वान से मैंने समारोह की उपलब्धियों पर प्रकाश डालने के लिए कहा, तो उन्होंने वही अमर वाक्य दुहराया—सब चलता है। यानी सब कुछ ऐसे ही चलता रहेगा। हम सब कुछ नहीं कर सकते। हम कुछ करें या न करें, स्थिति यह है कि सब चलता है।

अब कल शाम का किस्सा बयान करता हूं। टेलीविजन के पिटारे के सामने सपरिवार बैठकर मूंगफली की ताजा किस्मों की पैदावार के बारे में अपना ज्ञानवर्धन कर रहा था कि मुहल्ले के बाल गोपालों का समूह हमारे ड्राइंगरूम में घुस आया। थोड़ी देर में उनकी मम्मियों और आंटियों का जत्था भी सशरीर हाजिर हो गया। इसके बाद बिना हींग-फिटकरी जैसे आइटमों के ही सीन पर ऐसा रंग चोखा आया कि मुहल्ले के टी.वी. दर्शकों को कमरे में छोड़कर मैं पत्नी और बच्चों के साथ घर से बाहर निकल आया। बच्चे अपनी नाराजगी व्यक्त करने लगे तो हमारी अर्धांगिनी ने उन्हें शांत करते हुए फरमाया कि चुप रहो, यह सब तो चलता ही रहता है। इस तरह चलते रहने की महादशा यह है कि कल हमारे मुहल्ले के उभरते हुए कुछ हीरो हमारे पड़ोसी कृष्णगोपाल बाबू के अंतःपुर में घुस आए और उनकी

नई-नवेली बहू के चारों ओर शृंगार रस का वातावरण बनाकर सधन्यवाद लौट आए। उनका तर्क था कि आजाद देश में जन्म लेने के कारण इस देश में कहीं भी कुछ भी करने का जन्मसिद्ध अधिकर उन्हें प्राप्त है। अपनी बहू और कन्याओं के निर्माता-निर्देशक कृष्णगोपाल बाबू परमहंस की मुद्रा में शांत हैं। उन्हें मालूम है कि कुछ नहीं किया जा सकता, यह सब चलता ही रहता है। अपने सनातन तर्क और अधिकार के सहारे मुहल्ले के हीरोगण आज सबेरे मेरे यहां भी पधारे और वह सारा गाजर का हलवा चट कर गए जो मेरी निजी पत्नी ने खास मेरे लिए परोसा था। हलवे की समाप्ति पर मेरे बच्चों की श्रीमाता अभी तक स्वगत भाषण कर रही है और मैं खुश हूं कि नई पीढ़ी का आक्रमण हलवे तक ही सीमित रहा। एकदम रामराज्य है। ऐसा सुहाना वातावरण पहले कहां था? चारों ओर आजादी पसरी हुई नजर आती है। मन के किसी कोने में अगर यह सवाल जगा कि देश का क्या होगा जनाबे आली, तो हर सवाल का एक ही जवाब है—सब चलता है।

कहीं कोई छिपाव, कहीं कोई बनावट नहीं है। ठेकेदार परिश्रमपूर्वक ऐसी सड़कों और पुलों का निर्माण करते हैं, जिनका निर्माण-कार्य समाप्त होने के पहले ही मरम्मत का टेंडर निकल आए। डाक्टर सिर्फ अमीर रोगियों में रुचि लेते हैं और नेताओं के बारे में तो कुछ भी कहना बड़ा मुंह और सड़ी बात होगी। अफसरों और पुलिस की कथा तो और भी अकथनीय है। हालत यह है कि—

गोली मेरे लाल की जित देखो तित गोल।
गोली लेने वे गए, वे भी हो गए गोल।।

हमारे आसपास जो कुछ भी है सब साफ-साफ है। बिना किसी के चलाए सब कुछ अपने-आप चल रहा है इसीलिए उस दिन विश्वविद्यालय में डिग्री मात्र के लिए विचरण करने वाले युवकों और युवतियों का परम पावन आचरण नजर आया तो मन गद्गद हो गया। सारा समुदाय कालेज के अहाते में इस महान समस्या पर नारेबाजी कर रहा था कि छात्रों के कामनरूप में अभी तक वी.सी.आर. क्यों नहीं लगा है। भीतर स्टाफरूम में शिक्षकगण चिंतन कर रहे थे कि आज तो इस नारेबाजी के फलस्वरूप कक्षा में जाने से बचे, कल कौन बहाना काम आएगा। अंत में यह फैसला किया गया कि कल यदि लाख समझाने पर भी छात्रों ने हड़ताल नहीं की तो हड़ताल कराने के लिए हम लोग हड़ताल कर देंगे। एक महावरिष्ठ शिक्षक ने यही टिप्पणी की कि—सब चलता है।

बात की शुरुआत हमने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की देश-चिंता से की थी और वास्तव में उसी बिंदु पर टिकना भी चाहिए। बार-बार टापिक से बहक गया हूं। इधर अच्छे लेखक की यही पहचान हो गई है कि वह मच्छरों की जनसंख्या के बारे में लिखना शुरू करे, तो आसानी से पालक के साग और नई शिक्षा की चुनौतियों आदि पर भी अपने अमूल्य विचार व्यक्त कर दे। मैं भी कई बार बहका हूं, इसलिए निश्चय ही महान लेखक हूं। विषयांतर से आप निराश न हों। क्या कीजिएगा, सब चलता है।

मनुष्य और ठग

प्रेम जनमेजय

चार ठग विचार-विमर्श में डूबे हुए थे। बहुत दिनों से कोई 'शिकार' नहीं मिला था, इसलिए चिंतित भी थे। तभी सामने से एक मनुष्य आता दिखाई दिया। चारों ठग सतर्क हो गए। मनुष्य देखने में रूपवान और शक्तिशाली था। उसके चेहरे पर अद्‌भुत तेज झलक रहा था और होठों पर प्रसन्नता खेल रही थी। वह गुनगुना भी रहा था। मस्ती में कभी आकाश की ओर और कभी प्रकृति की ओर देखता। मनुष्य आने वाले खतरे से अपरिचित, ठगों की ओर बढ़ता चला आ रहा था। उसके कंधे पर एक थैला लटका हुआ था जिसे उसने सावधानी से पकड़ा हुआ था। 'अवश्य ही इस थैले में कोई बहुमूल्य वस्तु होगी'—चारों ठगों ने सोचा, 'और मनुष्य भी कम सुंदर शिकार नहीं है।' चारों एक योजना के अनुसार मनुष्य के मार्ग पर कुछ-कुछ दूरी पर बैठ गए।

पहला ठग

पहले ठग ने खादी के वस्त्र धारण किए और तकली पकड़कर उसे कातने की मुद्रा बनाकर मार्ग में बैठ गया। उसके चेहरे पर करुणा, दया, अहिंसा, विश्वमैत्री, शांति और मुस्कान के भाव आ-जा रहे थे। मनुष्य जब समीप आया तो ठग ने एक भजन गाना भी आरंभ कर दिया। मनुष्य उसके इस कार्य से प्रभावित होकर रुक गया। ठग ने कहा, "आओ भाई! कहो, इतनी धूप में कहां से आ रहे हो? बैठो।"

"धूप? कोई खास तो नहीं है।"

"आगे मिल जाएगी। लो, यह टोपी पहन लो। अरे, तुम्हारे तो वस्त्र भी बहुत मैले हो गए हैं," कहकर ठग ने बड़े प्यार से मनुष्य को टोपी पहनाई और उसके मना करने पर भी उसे खादी के वस्त्रों का जोंड़ा पहना दिया तथा उसके बहुमूल्य वस्त्र अपने पास रख लिए।

"यह लाठी तुमने क्यों पकड़ी हुई है?" ठग ने मनुष्य की लाठी अपने हाथ में लेते हुए पूछा।

"मार्ग में किसी संकट का सामना करने के लिए। अपनी सुरक्षा के विचार से।" मनुष्य

ने उत्तर दिया।

"न भाई, हिंसा बुरी बात है। हमें अहिंसा में विश्वास रखना चाहिए। सब ईश्वर के जीव हैं। किसी को मारना हिंसा है। कोई यदि तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारे तो दूसरा भी आगे कर दो। लाओ, यह लाठी मुझे दे दो।" यह कहकर ठग ने मनुष्य से लाठी छीन ली और उसे तकली पकड़ा दी।

दूसरा ठग

दूसरे ठग ने गेरुए रंग के वस्त्र धारण किए, हाथ में कमंडल पकड़ा, गले में रुद्राक्ष की माला पहनी, माथे पर तिलक लगाया और सुरक्षा के विचार से बगल में छुरी रख ली। उसके चेहरे पर क्रूरता और सौम्यता के भाव आवागमन कर रहे थे। उसने दूर से मनुष्य को आते देखा तो धूनी रमाई और आंखें मूंदकर ध्यान में स्थित हो गया।

मनुष्य जब समीप से गुजरा तो ठग ने गूंजती आवाज में पुकारा, "बच्चा, बाबा की उपेक्षा करके कहां जा रहा है?"

"क्षमा करना बाबा, आपकी आंखें मुंदीं देखकर मैंने समझा आप ध्यानमग्न हैं अतः उचित नहीं समझा कि . . ."

"हैं . . . हैं . . . मूर्ख, बाबा मन की आंखों से सब देख लेते हैं। तू बाबा को धोखा नहीं दे सकता है।"

"बाबा, मुझे आवश्यक कार्य से जाना है, अतः शीघ्रता में हूं।"

"शीघ्रता मत कर मूढ़! यह संसार जिसके पीछे तू भाग रहा है, नश्वर है। यह जो कुछ तुझे दिखाई दे रहा है, सब माया है। यह तेरा लक्ष्य नहीं है। दृश्यमान संसार असत्य है।"

"फिर सत्य क्या है, बाबा?"

"वह, जो दिखाई नहीं देता। जो निराकार, अलक्ष्य, अगोचर, अरूप, सच्चिदानंद परब्रह्म है। तू उसे प्राप्त कर।"

"वह कैसे प्राप्त होगा, बाबा?"

"ज्ञान की आंखों से। इन बाह्य चक्षुओं से तुझे भ्रम होता है। तू मोह-माया के भ्रम में फंसता है। बस उस एक निराकार का ध्यान कर। बाबा की बातों को अंतिम मान। अपनी ओर से कुछ मत सोच। जा, तेरा भला होगा।"

यह कहकर दूसरे ठग ने 'मनुष्य' की सुंदर आंखें फोड़ दीं और मस्तिष्क निकालकर अपने पास रख लिया। और कहा, "अब अपने लक्ष्य की ओर बढ़, ज्ञानी। वह सर्वव्यापी तेरी रक्षा करेगा।"

मनुष्य आंखों और मस्तिष्क के अभाव में उस 'अलक्ष्य' और 'निराकार' को प्राप्त

करने के लिए डगमगाता हुआ बढ़ गया। थैला उसने कसकर पकड़ा हुआ था।

तीसरा ठग

तीसरे ठग ने राजकीय वस्त्र धारण किए, एक घोड़ा लिया, हाथ में चाबुक पकड़ा, कमर में तलवार लटकाई और मार्ग में खड़ा हो गया। वह बार-बार अपनी मूंछों को मरोड़ रहा था। उसने दूर से मनुष्य को आते देखा तो घोड़े को मनुष्य के मार्ग में अड़ा दिया और स्वर कर्कश करने का प्रयत्न करने लगा।

मनुष्य आंखों और मस्तिष्क के अभाव में दिशाहीन डगमगाता हुआ-सा चल रहा था। वह राजा के घोड़े से आ टकराया। मनुष्य ने घबराकर पूछा, "कौन हो, भाई?"

"तू कौन है और कहां जा रहा है?"

"मैं मनुष्य हूं और बाबा के आदेश पर ईश्वर-प्राप्ति के लिए जा रहा हूं। और आप . . .?"

"हम यहां के राजा हैं और हमें ईश्वर ने तेरी भलाई के लिए भेजा है। हमें तू ईश्वर के समान शक्तिशाली समझ। तेरी सुरक्षा का भार अब हम पर है। हम तेरे हितों की रक्षा करेंगे।"

"मुझे क्या करना होगा, राजन्।"

"तुझे आज से मेरे प्रत्येक आदेश को स्वीकार करना होगा। मैं तेरे अच्छे-बुरे का न्याय करूंगा। जो मैं कहूं उसे सुनना होगा और समझना होगा। मैं ही तेरा पालन-पोषण करूंगा। मेरे विरोध में जाने का अभिप्राय राजद्रोह होगा और उसका दंड मृत्यु होगी।"

यह कहकर राजा ने मनुष्य की जीभ काट ली और घोड़े को ऐड़ लगाकर शिकार खेलने की मुद्रा में चल दिया।

चौथा ठग

चौथा ठग एक वृक्ष के पीछे यह सब दृश्य देख रहा था। उसके वस्त्र स्वच्छ थे, गले में बहुमूल्य मोतियों की माला थी और देखने में दयालु तथा धार्मिक लग रहा था। हाथ में बही खाते पकड़े वह मनुष्य के पास पहुंचा और बोला, "अरे भई, यह तुम्हें क्या हुआ? तुम्हारी यह कारुणिक दशा किसने की है? मेरा दिल भर आया है।" यह कहकर वह रोने भी लगा।

मनुष्य जीभ के अभाव में गूंगा हो गया था। उसके चेहरे पर पीड़ा और त्रास के चिह्न थे। भूख और प्यास से व्याकुल मनुष्य ने संकेतों में अपनी इच्छा प्रकट की।

"हा . . . हां, क्यों नहीं। यह तो मेरा धर्म है।" यह कहकर ठग ने स्वादिष्ट भोजन और पेय का प्रबंध किया। मनुष्य संतुष्ट हुआ और ठग उसे ईश्वर का अवतार लगा।

मनुष्य का चेहरा चौथे ठग के प्रति श्रद्धा और अहसान के भाव से भर गया। मनुष्य के दोनों हाथ जुड़े हुए थे और उसकी आंखों से ठग के प्रति प्रेमाश्रु बह रहे थे।

"भई, इतने दुखी मत हो। मैंने कष्ट में देखकर तुम्हारी सहायता की है। मेरा इसमें कोई स्वार्थ नहीं है। मनुष्य के काम हम न आएं तो हमारी सार्थकता क्या है। तुम निश्चिंत रहो। तुम्हारे कष्ट के दिन समाप्त हुए। अब तुम सुख-चैन की नींद सो सकते हो।" ठग ने कहा।

मनुष्य को शीघ्र ही नींद आ गई। ठग ने बड़ी चतुराई से उसका थैला निकाल लिया। इतनी देर में तीनों ठग भी वहां पहुंच गए।

प्रश्न उठा कि थैले पर किसका अधिकार हो। सब अपने-अपने तर्क प्रस्तुत करने लगे। चौथा ठग चुप रहा। अंततः समझौता हुआ कि बंटवारा हो। तब चौथे ठग ने कहा, "मैं इस बंटवारे में भाग नहीं लूंगा। इसे तुम तीनों आपस में बांट सकते हो।"

''तब तुम क्या लोगे?'' तीनों ठगों ने उत्सुकता से पूछा।

"मैं अनुरोध करूंगा।"

"हां-हां, कहो।" तीनों ठग चौथे ठग की विनम्रता से प्रभावित थे।

"मेरा अनुरोध है कि तुम लोग मेरी इच्छानुसार मनुष्य की आत्मा को बांटोगे और मनुष्य को इस अवस्था में मेरे लिए छोड़ दोगे।"

"इस अवस्था में! गूंगे, अंधे और मस्तिष्क-विहीन इस मनुष्य का तुम क्या करोगे? यह तुम्हारे लिए कर क्या सकता है?" तीनों ठग आश्चर्य से बोले।

"यह मेरे लिए श्रम करेगा। इसके श्रम का संपूर्ण लाभ मेरा होगा। और सुनो, मैं जो भी करूं उसमें तुम हस्तक्षेप नहीं करोगे। भविष्य में तुम मेरे आदेशों पर ही चलोगे। इसे मेरा अनुरोध समझो और यह सदैव ध्यान रखना कि मनुष्य से थैला मैंने प्राप्त किया है।"

तीनों ठग थैले की बहुमूल्य वस्तु पाकर प्रसन्न थे। उन्होंने चौथे ठग की बात स्वीकार कर ली।

चौथे ठग ने मनुष्य को निद्रित अवस्था में उठाया और चल दिया।

बॉस चले परदेश

दामोदर दत्त दीक्षित

बिग बॉस एक सेमिनार में न्यूयार्क जा रहे थे। विदेशी सेमिनार अवध के नवाबों के मुर्गे की तरह होते हैं जिन्हें हजम कर पाना सबके बस की बात नहीं। उन्हें आधुनिक नवाब यानी बिग बॉस ही हजम कर सकते हैं। साफ-सुथरे, धुले-पुछे बिग बॉस के न्यूयार्क अभियान में आंतरिक स्थिति साफ-सुथरी, धुली-पुछी नहीं थी। विषकुंभपयोमुख जैसी स्थिति . . . कई खम, कई पेच, कई लटके।

सेमिनार तकनीकी था, बॉस गैर-तकनीकी, 'सिर्फ बी.ए.'। उन्होंने तकनीक बनने का चोर रास्ता अपनाया था। तकनीकी व्यक्ति के कंधे पर उचककर बैठ गए, बन गए तकनीकी। कंधे पर बैठे बेटे का सिर जब बाप के सिर से ऊंचा हो जाता है तो वह तालियां बजाकर चिल्ला उठता है . . .'मैं तो पापा से भी ऊंचा हो गया!' बॉस सेमिनार में एक आदर्श श्रोता की हैसियत से शामिल होंगे और अनौपचारिक वार्ताओं में 'दिस वे', 'दैट थिंग', 'आई मीन', 'मे बी', 'मे नॉट बी', 'यू अपियर टु बी करेक्ट', 'इट इज नॉट सो इन इंडिया' आदि से काम चलाएंगे। इसी तकनीकी विचार-विमर्श की पूंजी और ऊर्जा के बल पर वे लौटकर बताएंगे कि भारत की डूबती नाक उन्होंने कैसे बचाई। कुछ समय बाद वे दूसरे विभाग में चले जाएंगे। उद्योग विभाग उनके सेमिनार अनुभव का लाभ भले ही न उठाए, शिक्षा विभाग तो उठाएगा. . .'शिक्षा भी तो एक उद्योग है।' आर्थिक कोण भी था। सरकार उनके विदेशगमन पर एक लाख खर्च कर रही थी। वह इतनी ही धनराशि की वस्तुएं सीमा शुल्क बचाकर अपने साथ लाएंगे।

बॉस की कार हवाई अड्डे पर पहुंचते ही अधीनस्थ अधिकारियों में होड़ लग गई कि कार का दरवाजा कौन खोलेगा। सरमा आगे बढ़े तो बरमा ने प्रारंभिक विद्यालय के प्रारंभिक दांव लत्ती से प्रारंभ किया। सरमा मुख के बल धराशाही। बरमा आगे बढ़े तो मलखानी ने उसकी पैंट खींच ली। वे बचपन में इसी तकनीक से दौड़ में विजयी होते थे। मोटी तोंद ने सहयोग देने से इंकार कर दिया और पैंट सबेल्ट नीचे सरक गई। बरमा के लिए दरवाजा खोलने से आवश्यक पैंट बंद करना हो गया। तीर की तरह अग्रसर मलखानी पर कोहनी रूपी रायफल से प्रहार किया अल्फ्रेड रायफल ने। ससुरा बॉस से देर आने की शिकायत

करता रहता था। रायफल के मुंह पर मुक्का मारा मुंहतांक ने। कुल मिलाकर दरवाजा खोलो अभियान में कई अधिकारी धराशायी हुए, कई घायल। हां, शहादत किसी को भी नहीं मिली।

रद्दी भाई का हाथ हैंडिल तक पहुंचा, पर सातपती ने उनके पेट में गुदगुदा दिया। साम-दाम-दंड-भेद सब चल रहा था। सातपती हैंडिल खोलते कि चीफ टेक्नीकल एडवाइजर लंगोटिया ने उनके हाथ में चिकोटी काटी और हैंडिल खोल दिया। एवरेस्ट पर उनका झंडा फहर गया। दरवाजा खोलना उनकी आवश्यकता थी और आवश्यकता आविष्कार की जननी होती है। अगर वह असफल रहते तो बॉस सोचता, 'यह सुकटमुंहा जरूर खुन्नस खाए है कि मैं उसके हक को मारकर विदेश यात्रा पर जा रहा हूं।'

दरवाजा भले ही लंगोटिया ने खोला हो, पर बॉस को प्रथम अभिवादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तीरखा को जिसने कार के अगले दरवाजे से दोनों हाथ भीतर कर, चपरासी की ग्रीवा चालक की ओर धकियाकर, हाथ जोड़ दिए।

'शुभ यात्रा', 'बोन वायेज', 'विश यू ए हैप्पी एंड प्लेजेंट जर्नी' जैसी रसमय फुहारों को ओढ़ते-बिछाते, छिगनी, कृश काया को गुब्बारे की भांति फुलाते हुए, बौड़म बॉस लाउंज की ओर चले। यद्यपि वह नरपशु थे, पर उनकी चाल में अनोखा देवत्व था। हुजूम से घिरे बॉस की छवि वैसी ही थी जैसी रेल देखने के बहाने स्टेशन पर धर धमकने वाली ग्रामीण महिलाओं से घिरी ससुरालगामिनी की छवि।

अधिकारीगण बॉस को उपहार देने लगे। वह ओठों को हौले से हिलाकर 'क्यू' ध्वनि प्रस्फुटित करते और उपहार समीपस्थ चपरासी को हस्तांतरित कर देते। तभी कटारिया-तलवार में व्यवस्था के प्रश्न को लेकर फुसफुस संवाद छिड़ गया।

"बॉस का विदेशगमन जन्मदिन या मुंडन तो है नहीं जो उपहार दिया जाए।"

"बॉस को उपहार देने के लिए न तो संस्कार की बाट जोही जाती है, न ही मुहूर्त निकलवाना पड़ता है। उपहार पहले दो, सोचो बाद में। बॉस ने दाढ़ी बढ़ा ली, नया सूट पहना, उनकी बीवी को जुकाम हुआ, मुन्ने की चालीसवीं पोजीशन आई, कुतिया गर्भवती हुई, उनकी नई, जो नवेली भी है, स्टेनो आई, तो यही घटनाएं उपहार देने के लिए पर्याप्त हैं।"

"तो यार क्या भेंट दे दूं?"

"न हो कुछ तो एक बुके ही दे दो।"

कटारिया बुक स्टाल से लोकप्रिय दूरदर्शन शृंखला यानी 'महाभारत' उठा लाया।

मैंने कहा बुके और तुम ले आए बुक—वह भी महाभारत। बॉस अभी, इसी वक्त तुम्हारी रेगिस्तानी खोपड़ी पर 'महाभारत' पटक मारेंगे। तुम विदेश में उनकी महाभारत कराना चाहते हो?" तलवार धीमे-से चीखा।

"यार, बुके क्या होता है?"

'वही डंडी जैसी चीज जिसमें फूल-पत्तियां लगी होती हैं। वह देखो निजलिंगप्पा हाथ में लिए खड़ा है।"

कटारिया दौड़ता हुआ बुके विक्रेता के पास गया, पर तब तक सभी बुके बिक चुके थे। चोरे ने कुछ समय पूर्व उसके सारे बुके खरीद लिए थे, जिससे अन्य लोग बुके भेंट करने से वंचित रह गए।

कटारिया ने बुक स्टाल से एक पुस्तक लाकर बॉस के हाथ में धर दी। इस भागमभाग में वह तीन बार लाउंज की चिकनी फर्श पर गिरा, गिरकर उठा। 'एवरीथिंग एबाउट न्यूयार्क कालगर्ल्स एंड होर्स' नामक पुस्तक देखकर बॉस ने दो इंच मुस्कान फेंकी, तीन बार 'क्यू' कहा और चार अनगढ़ मैले दांत प्रदर्शित किए।

चपरासी उपहार वस्तुओं को दो सूटकेसों में भरकर कार में रखने चला जिसे दो अधिकारियों ने बलात छीन लिया।

सहसा बॉस चीखे, "रुको, रुको।"

सूटकेस वाहक अश्मीभूत हो गए। बॉस ने कहा, "रास्ते में पढ़ने के लिए भी तो कुछ चाहिए। वह पुस्तक निकाल दो, वही न्यूयार्क वाली।"

पुस्तक निकाली गई। अधिकारियों में काफी देर तक इस बात को लेकर छीना-झपटी होती रही कि कौन अपने कर-काष्ठ से बॉस के करकमल में पुस्तक मधु धरेगा।

अधिकारियों ने न्यूयार्क को लाउंज के इस छोटे कोने में उतार दिया। मेरे चचेरे चाचा ने पिछले दिनों लिखा था कि 'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' से न्यूयार्क दिन में धुंध में डूबा और रात में तारोंभरे आकाश जैसा दीखता है . . .। मेरे बड़े बाबा दो सौ रुपए लेकर न्यूयार्क गए थे। उनके लड़के यानी गोलू चाचा अब करोड़ों में खेलते हैं। लारीन आंटी ने परसों टेलीफोन पर बताया था कि आजकल न्यूयार्क में माफिया गैंगों का राज चल रहा है...। यू.एन.ओ. में डेपुटेशन झटकने से न्यूयार्क में दीर्घप्रवास का जुगाड़ लग सकता है।

बॉस के चेहरे पर प्रच्छन्न तनाव समय की सुइयों के साथ बढ़ता जा रहा था। आखिर वह असह्य कचोट के साथ कराह उठे, "मिस बीनापानी नहीं दीख रही है।"

"सर, वह तो बिना पानी की हैं। क्यों आएंगी?" कालिया ने परिहास किया।

गोरे ने ढाढ़स बंधाया, "हो सकता है, टैक्सी बिगड़ गई हो। क्या जाने 'ब्यूटी पार्लर' में देर हो गई हो? बस, आ ही रही होंगी, सर।"

ये बातें बॉस में आशावाद का प्रादुर्भाव नहीं कर सकीं। उन्होंने सोचा . . . इस नई लौंडिया को अपनी खूबसूरती और स्मार्टनेस का कुछ ज्यादा ही नशा है। इसे कसना पड़ेगा।

'सेक्योरिटी चेक अप' की उद्घोषणा हुई। बॉस की दंडवत-पालागन शुरू। सारी अंग्रेजियत हवा, भारतीयपन फूट निकला।

कई अधिकारी सोचते थे कि वे नरसिंह राव की मुद्रा में विमान के पास खड़े होकर येल्तसिन की मुद्रा में विमानारूढ़ बॉस को 'बॉय', 'टाटा' करेंगे। सुरक्षाकर्मियों ने उन्हें रोका। वे बिफर पड़े। आखिर सुरक्षाकर्मियों ने आड़ी लाठी लगाकर उन्हें प्रदर्शनकारियों की तरह पीछे धकेला। कई अधिकारी अपने चिकने अंगों के बल चिकनी फर्श पर गिर गए। फिर भी उन्होंने हार नहीं मानी। वे हवाई पट्टी की दिशा में जो भी दरवाजा देखते, उसी में घुस जाते। ऐसा हड़कंप मचा कि लगा हवाई अड्डे पर आक्रमण हो गया हो।

अत्यंत कठिनाई से सुरक्षाकर्मियों ने इस हुजूम को दुमंजिले के लाउंज की ओर खदेड़ा। वहां से उन्होंने बॉस के साथ 'हाथ हिलाई हिलावा' कार्यक्रम संपन्न किया। विमान के उड़ान भरने के बाद वापस चल दिए। उनके चेहरों पर खुशामदी ललक थी। वे बॉस के 'रिसीविंग वेलकम' की रणनीति के बारे में अभी से सोचने लगे थे।

शहीद रज्जब

विष्णु नागर

वह पटरी पर सो रहा था। सो रहा था कि एक ट्रक उसके ऊपर चढ़ गया। वह उसी वक्त, वहीं मर गया। पता भी नहीं चला कि वह कराहा था या नहीं।

ऐसा रोज होता है इस शहर में। इसके पास वाले और उसके भी पास वाले शहर की यही एक विशेषता है। आदमी मर जाता है। ड्राइवर भाग जाता है। चार लाइन की खबर छप जाती है। जो फुर्सत में होता है, वह पढ़ लेता है। जो व्यस्त होता है, वह नहीं पढ़ता। फर्क दोनों में से किसी को नहीं पड़ता।

लेकिन उसकी किस्मत कि वह प्रधानमंत्री के चुनाव क्षेत्र का था। खबर में यह लिखा था। किसी हितैषी ने प्रधानमंत्री के हित में यह बात पढ़ ली और उन तक पहुंचा दी। बस फिर क्या देर थी। प्रधानमंत्री पुष्प-चक्र लेकर अस्पताल पहुंच गए—शव पर चढ़ाने।

इस बात से अस्पताल तो अस्पताल पूरी दिल्ली में हड़कंप मच गया। संवाददाता पछताने लगे, हाय वे क्यों नहीं उस वक्त वहां थे। फोटोग्राफर रोने लगे कि उन्हें एक महत्वपूर्ण फोटो से वंचित कर दिया गया है। बहरहाल रज्जब का शव, शवगृह से बाहर निकाला गया। बाहर खुले में रखा गया। अस्पताल वालों की ओर से भी खूब फूल-मालाएं चढ़ाई गईं। शव को इत्र-फूलों से सुगंधित किया गया।

प्रधानमंत्री के बाद तो अस्पताल में मंत्रियों का तांता लग गया। होड़ मच गई कि प्रधानमंत्री के बाद दूसरे नंबर पर कौन अस्पताल पहुंचता है। मंत्रियों की कारों में रेस होने लगी। कई बार वे 'रेड लाइन' बसों की तरह टकराते-टकराते बचीं लेकिन टकराईं नहीं। गृहमंत्री, वित्तमंत्री से और वित्तमंत्री, रक्षामंत्री से और रक्षामंत्री, उद्योगमंत्री से पहले अस्पताल पहुंच गए। वाणिज्यमंत्री, उद्योगमंत्री से 5-6 सेकंड बाद अस्पताल पहुंच पाए। उन्हें यह नागवार गुजरा। उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय से शिकायत की कि उन्हें समय पर इसकी खबर क्यों नहीं दी गई थी। वे इस बात से इतने उत्तेजित हुए कि उन्होंने स्वयं प्रधानमंत्री से व्यक्तिगत रूप से मिलकर इसकी शिकायत की।

विपक्ष के नेता को भी इसकी खबर देर से ही लगी। उन्होंने पहले प्रधानमंत्री कार्यालय के इस व्यवहार पर खेद प्रकट करते हुए एक पत्र लिखा। फिर वे भी अस्पताल पहुंचे।

उन्होंने न केवल शव पर पुष्प चक्र चढ़ाए बल्कि उस आदमी का नाम भी पता किया। उसके बाद पार्टी कार्यालय जाकर उन्होंने एक शोक समाचार जारी किया, जो इस प्रकार था :

"हमारी पार्टी शहीद रज्जब खां वल्द बन्ने खां की असामयिक मृत्यु पर अपना गहरा शोक व्यक्त करती है और मृतक के परिवार के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करती है। जब प्रधानमंत्री के चुनाव क्षेत्र का आदमी राजधानी की सड़क पर इस तरह मारा जा सकता है तो इस बात की तो कल्पना करना भी मुश्किल है कि उन क्षेत्रों के निवासियों के साथ यहां क्या गुजरती होगी, जहां से विपक्षी दलों के सदस्य चुनकर लोकसभा और विधानसभाओं में आए हैं।

हमारी पार्टी शहीद रज्जब के असामयिक और दुखद निधन पर अपनी पार्टी का ध्वज वज एक दिन के लिए आधा झुकाएगी। हमने शहीद रज्जब के शोकाकुल परिवार को सहायता के रूप में 1000 रुपए देने का निर्णय भी किया है। उनकी शवयात्रा कल सुबह 11 बजे हमारी पार्टी के कार्यालय से निकलेगी। इसमें पार्टी के सदस्य हजारों की संख्या में शरीक होंगे। शहीद रज्जब का शव प्रधानमंत्री निवास के बाहर भी कुछ देर के लिए रखा जाएगा ताकि देश के साथ-साथ अपने निर्वाचन क्षेत्र की जनता की उपेक्षा करने वाले इस प्रधानमंत्री की आंखें खुल सकें। हमारी पार्टी शहीद रज्जब की स्मृति में एक कोष की स्थापना भी करने जा रही है जिसमें उदारतापूर्वक दान देने की अपील सभी लोगों से की जा रही है। शहीद रज्जब की एक प्रतिमा भी उस स्थान पर स्थापित की जाएगी, जहां उसका आकस्मिक निधन हुआ है।

शहीद रज्जब खां उन बिरले इंसानों में से थे, जिन्होंने ईंटें ढो-ढोकर देश की महती सेवा की है। भूखे रहकर, सड़क पर सोकर, देश को आगे बढ़ाने के प्रति उनकी निष्ठा अटूट थी। देश को उनकी अभी बहुत जरूरत थी। लेकिन नियति और प्रधानमंत्री की लापरवाही ने उन्हें हमसे छीन लिया है। उनके निधन से देश को जो अपूरणीय क्षति हुई है, उसे भरा नहीं जा सकेगा।"

प्रधानमंत्री हालांकि राजनीति के बहुत पुराने खिलाड़ी थे और वे विपक्ष के नेता को तब से जानते थे, जब वे स्वयं भी विपक्ष में थे, फिर भी उन्होंने सपने में भी नहीं सोचा था कि विपक्ष के नेता इस घटना को इस तरह का मोड़ दे देंगे। प्रधानमंत्री का उद्देश्य साफ था। चुनाव नजदीक आ रहे थे। रज्जब के शव पर पुष्प-चक्र चढ़ाकर वे अपने क्षेत्र की जनता को खुश करना चाह रहे थे। लेकिन लेने के देने पड़ गए थे। प्रधानमंत्री ने महसूस किया कि उनके हाथ से पहल निकल रही है। इस तरह तो सारा श्रेय विपक्ष ले जाएगा। यह ठीक नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिए।

उन्होंने जवाबी वक्तव्य दे दिया। उन्होंने देश की जनता को लाश की राजनीति करने

वाली शक्तियों से सावधान किया। उन्होंने वक्तव्य में कहा : "शहीद रज्जब मेरे चुनाव क्षेत्र के व्यक्ति थे। उनसे मेरा लगाव स्वाभाविक था। उनकी इस तरह मृत्यु से मुझे गहरा धक्का लगा था। इसी कारण मैंने अस्पताल जाकर मृतात्मा के प्रति सम्मान व्यक्त करना जरूरी समझा था। अगर विपक्ष जिम्मेदार होता तो उसके नेता मेरी इन हार्दिक भावनाओं को समझते और ऐसा कोई काम नहीं करते जिससे दुख की इस घड़ी में अनावश्यक विवाद पैदा होता। यह लाश की राजनीति करने का नहीं, देश को आगे ले जाने का वक्त है। हम इस काम में तेजी से लगे हुए हैं। इससे घबराकर विपक्ष ओछी हरकतों पर उतर आया है। इससे जनता के सामने विपक्ष का चेहरा बेनकाब हो गया है।

बहरहाल, आज प्रातः हुई मंत्रिमंडल की आपात बैठक में यह निर्णय लिया गया है कि शहीद रज्जब का शव पूरे राजकीय सम्मान के साथ कल शाम चार बजे दफनाया जाएगा। कल दोपहर एक बजे तक शहीद रज्जब के शव को प्रधानमंत्री निवास पर जनता के दर्शनार्थ रखा जाएगा। ऐसा उन लोागें के प्रति राष्ट्र की ओर से सम्मान व्यक्त करने के लिए किया जा रहा है जो पटरी पर सोते हुए इस तरह शहीद हो जाते हैं। सरकार इस प्रकार शहीद रज्जब का ही नहीं, सारे देश की गरीब जनता के प्रति अपनी चिंता और सम्मान का इजहार कर रही है। सरकार के इस कदम से उन सबके मन में आत्मसम्मान की भावना जागेगी जो ईंट-गारा ढोकर राष्ट्र की अमूल्य सेवा करते हुए आकाश की चादर के नीचे सोते हुए त्याग और बलिदान के उच्च आदर्श स्थापित कर रहे हैं।

सारे राष्ट्र की ओर से शहीद रज्जब का मरणोपरांत इस तरह सम्मान करने से लाश की राजनीति करने वालों के हाथों से एक और अवसर जाता रहेगा। यह सरकार जनता के अटूट समर्थन से बनी है और यह कभी इस तरह की राजनीति की इजाजत नहीं देगी। मंत्रिमंडल का यह भी फैसला है कि शहीद रज्जब के परिवार के हर व्यक्ति को सरकार की राहत योजनाओं में काम दिया जाएगा। अगर शहीद रज्जब के परिवार का कोई भी व्यक्ति पढ़ा-लिखा पाया गया तो उसे उपयुक्त रोजगार देने पर विचार किया जाएगा। यह भी देखा जा रहा है कि क्या नियमों के तहत शहीद रज्जब की विधवा को पेंशन दी जा सकती है। अमर शहीद रज्जब की कोई संतान पढ़ने को उत्सुक होगी तो उसे मुफ्त शिक्षा व पुस्तकें दी जाएंगी। इसके अलावा रज्जब के परिवार की सहायता के लिए समय-समय पर और भी जो प्रस्ताव सरकार के विचारार्थ लाए जाएंगे, उन पर गौर किया जाएगा।"

प्रधानमंत्री के इस वक्तव्य के साथ रज्जब के शव पर सरकारी कब्जा हो गया। उसके परिवार वाले उसका शव लेने गए तो उन्हें शव देने से मना कर दिया गया।

विपक्ष ने रज्जब के शव पर इस तरह सरकारी कब्जा किए जाने की तीव्र भर्त्सना करते हुए कहा कि ''विपक्ष नहीं, प्रधानमंत्री 'लाश की राजनीति' कर रहे हैं। यह प्रधानमंत्री जैसे देश के उच्च पद पर बैठे व्यक्ति को शोभा नहीं देता। विपक्ष ने कभी लाश की घिनौनी

राजनीति करने में विश्वास नहीं किया। सच्चाई यह है कि विपक्ष का ध्यान जैसे ही शहीद रज्जब की दर्दनाक एवं असामयिक मृत्यु की ओर गया, उसने तुरंत बैठक बुलाई और कुछ ऐसे महत्वपूर्ण फैसले लिए जिससे रज्जब भाई का सम्मान भी हो और इस अंधी, बहरी, गूंगी सरकार का ध्यान भी देश की गरीब-पिसी हुई जनता की ओर जाए जो आए दिन ट्रकों-बसों इत्यादि के नीचे कुचलकर मरती रहती है। लेकिन प्रधानमंत्री ने राष्ट्र के प्रति अपनी जिम्मेदारी का निर्वाह न करते हुए सारे मामले को अनावश्यक रूप से राजनीति का रंग दे दिया है। विपक्ष प्रधानमंत्री की घनघोर तानाशाही और असंवेदनशील नीति की आलोचना करता है।

इसी के साथ हम शहीद रज्जब द्वारा की गई देश की सेवाओं के प्रति फिर से अपना सम्मान व्यक्त करते हैं। भारत माता को ऐसे लाखों-करोड़ों सपूतों की जरूरत है। तभी उसकी आंखों से अंतिम आंसू पोछा जा सकेगा। हम मानते हैं कि शहीद रज्जब के राष्ट्र के प्रति योगदान को देखते हुए सरकार जो कर रही है, वह बहुत कम है। ऐसे मौकों पर प्रधानमंत्री को अपना कोष उदारतापूर्वक खोल देना चाहिए था लेकिन उन्होंने ऐसे शोक के मौके पर भी अपनी संवदेनशून्यता तथा अनुदारता का परिचय दिया है। विपक्ष का यह संकल्प था कि वह चंदे द्वारा दस हजार रुपए इकट्ठे करके शहीद रज्जब की विधवा को दे। लेकिन यह जानकर कि प्रधानमंत्री तुरंत इसका अनुकरण करते हुए रज्जब के परिवार को अधिक धन देने की घोषणा की राजनीति करने लगेंगे, विपक्ष ने अपना यह इरादा त्याग दिया है। हम जिम्मेदार विपक्ष के नाते शहीद रज्जब के मामले में सरकार के साथ कोई प्रतियोगिता करना नहीं चाहते, और प्रधानमंत्री द्वारा शुरू की गई 'लाश की राजनीति' के घिनौने खेल में शमिल होना नहीं चाहते, इसलिए हमने शहीद रज्जब की प्रतिमा की स्थापना का अपना इरादा भी त्याग दिया है। संकट और दुख की इस घड़ी में हम कोई भी ऐसा कदम उठाना नहीं चाहते जिससे कि देश का वातावरण दूषित हो। हमने हमेशा देश के व्यापक हित को अपने सामने रखा है। वही हम अब भी कर रहे हैं।"

इसके बाद प्रधानमंत्री का वक्तव्य आया कि "यह अच्छी बात है कि हमारे दबाव के बाद विपक्ष ने 'लाश की राजनीति' करने के अपने अशोभनीय कदम पर पुनर्विचार किया है और उसे वापस ले लिया है। हम इसका स्वागत करते हैं। हमें आशा है कि भविष्य में भी विपक्ष इसी प्रकार जिम्मेदारी की भावना से काम करेगा।

विपक्ष ने सारे मामले को इतना राजनीतिक रंग दे दिया है कि कुछ क्षेत्रों में सरकार की इस बात के लिए अनावश्यक रूप से आलोचना की जाने लगी है कि वह भी शहीद रज्जब का सम्मान नहीं कर रही है बल्कि 'लाश की राजनीति' कर रही है। हम इसे नहीं मानते। सरकार ने अपने इरादों को बहुत पहले और बहुत स्पष्ट शब्दों में बता दिया था। फिर भी सरकार किसी अनावश्यक विवाद में फंसना नहीं चाहती। अतः सरकार ने यह

निश्चय किया है कि रज्जब से संबंधित सभी कार्यक्रम तथा घोषणाएं तत्काल प्रभाव से वापस ले ली जाएं। आशा है विपक्ष अब आगे इस विवाद को राजनीतिक रंग देने से बाज आएगा।

इसी के साथ सरकार ने एक आदेश जारी करके पटरी पर सोने पर रोक लगा दी है ताकि रात को वाहनों के निर्बाध आवागमन में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न न हो। भारतीय दंड संहिता में आवश्यक संशोधन करने के लिए एक अध्यादेश अलग से राष्ट्रपति द्वारा जारी किया जा रहा है, जिसके तत्काल प्रभाव से पटरी पर सोने वालों को तीन माह की बामशक्कत कैद और 10,000 रुपए का जुर्माना या दोनों देने होंगे।"

सुअर के बच्चे और आदमी के

ज्ञान चतुर्वेदी

झोपड़पट्टी की उस बेतरतीब बस्ती के पास रेंगता एक नाला है। सुअर के तीन बच्चे प्रायः उस नाले में किलोल करते पाए जाते हैं। एक किंचित बड़ा बच्चा है, शेष पिद्दीनुमा। वयस्क तथा बूढ़े सुअर भी उसी नाले में लोटते हैं अथवा किनारे की घास पर पड़े हुए अपने सुअर होने की नियति पर परिचर्चा आयोजित करते हैं। कीचड़ में लथपथ तीनों बच्चे, जब सुअर सा मुंह उठाए नाले में एक-दूसरे को ठेलते, गुरगुराते इस छोर से उस छोर तक छप-छप करते भागते हैं तब किनारे बैठे बूढ़े सुअर वात्सल्य रस में नहा जाते हैं (सुअर भी नहाते हैं!) । ये बूढ़े सुअर प्रायः दार्शनिक मुद्रा में बैठकर यह सोचा करते हैं कि इन नादान बच्चों को कोई यह बताए कि सुअर के बच्चो तथा उल्लू के पट्ठो, किस बात पर इतना किलोल कर रहे हो? नाले में ही कट जानी है तुम्हारी यह नश्वर जिंदगी। इन झोपड़पट्टी के आदमियों जैसी हो गई है तुम्हारी जिंदगी—बूढ़े सुअर बस्ती की तरफ थूथन घुमाकर सोचते हैं। 'नादान तथा बेवकूफ नई पीढ़ी . . .' वे सोचते हैं और थूथन पर एक भद्दी मुस्कान लिए नाले के किनारे-किनारे टहलने निकल जाते हैं।

झोपड़पट्टी के नाले वाले सिरे के पास से ही ऊंचे, भव्य तथा सुंदर मकानों और बंगलों का सिलसिला प्रारंभ हो जाता है। नाले और इन मकानों के बीच तीन-चार कूड़े-कचरे के डिब्बे हैं। बंगलों का कचरा तथा जूठा इन डिब्बों में और उसके आसपास फेंका जाता है। घूरे का एक ढेर बन गया है वहां।

सुअर के इन तीन बच्चों का नाश्ता, लंच इत्यादि इन्हीं ढेरों पर होता है। भूख लगती है तो नाले से निकलकर वे इस ठसके से इन ढेरों की तरफ जाते हैं मानो बाथरूम से डाइनिंग लाबी में प्रवेश कर रहे हों। भरपेट कचरा खाकर कुदक्कड़ें लगाते वे पुनः नाले में गुलाटियां मारने लगते हैं। "अहा सुअर जीवन भी क्या है . . ." इन्हें देखकर ही किसी कवि ने ये पंक्तियां उचित कही हैं, या कह दी होती यदि कवि भी सुअर होता, अथवा सुअरों में भी दुर्भाग्य से यदि कोई कवि होता तो कह डालता यद्यपि अभी सौभाग्य से उनके बीच ऐसा नहीं होता है और ठीक ही नहीं होता है, वरना सुअरों की जिंदगी सुअर से भी बदतर हो जाती।

तात्पर्य यह है कि सुअर के इन बच्चों की अच्छी कट रही थी।

अच्छी कट रही थी उनकी।

गंदे नाले से कचरे के डिब्बे तक सीमित सुअर-जीवन, जिसमें संत्रास तथा कुंठा गली के कुत्तों द्वारा खदेड़ने पर पैदा होती और बेईमानी कचरे के डिब्बे के आसपास। प्रगतिवाद जहां नाले से डस्टबिन तक की यात्रा थी और प्रतिक्रियावाद कचरे में भोजन की तलाश को लेकर सिर फुटव्वल। जहां सुअर अपने बच्चों को नाले में छोड़कर सुबह से गलियों में भटकने निकल जाते थे और सुअरनियां किसी पतिव्रता के ठसके से सुअरपति के पीछू-पीछू। सुबह से शाम, सुअरों की टोलियां इस झोपड़पट्टी की बस्ती में यहां-वहां डोलकर भोजन तलाशतीं और बस्ती के आदमी शहर की गलियों में रोजी तलाशते घूमते। सुअर और आदमी, दोनों भटक रहे थे। अच्छी कट रही थी पट्ठों की। न भी कट रही हो, पर शहर में आम राय रही थी कि अच्छी कट रही है।

खैर बात सुअर के उन तीन बच्चों की चल रही थी। उनकी निश्चित ही अच्छी कट रही थी और आगे भी कटती रहती यदि आदमी के तीन बच्चे उनके जीवन में नहीं आते।

आदमी के जीवन में तो हजारों सुअर आते रहते हैं और उस पर विशेष प्रभाव नहीं पैदा करते, पर सुअर के बच्चों का आदमी के बच्चों से यह सीधा साक्षात्कार उनके जीवन के कीचड़ में हलचल पैदा कर गया।

हुआ यूं कि एक दिन सुअर के ये तीन बच्चे जब घूमते-घामते घूरे पर पहुंचे तो उन्होंने पाया कि आदमी के तीन बच्चे उस घूरे पर पहले से ही जमे हुए हैं। शुरू में तो, दूर से देखकर उन्हें यही लगा कि जैसे सुअर के ही तीन बच्चे हों, परंतु पास पहुंचने पर उन्होंने पाया कि वे बच्चे सुअरों से भी अधिक गंदे और किसी भी आम सुअर के बच्चे से अधिक दुबले-पतले थे। तब वे समझ गए कि हो न हो, ये बच्चे आदमी के हों।

आदमी के बच्चे कचरे के ढेर को उलट-पुलटकर कुछ खोज रहे थे। सुअर की छोटी-सी खुपड़िया—उन्होंने सोचा कि यूं ही कचरे से खेल रहे होंगे। हां भई, वरना आदमी के बच्चे का घूरे पर क्या काम? कोई सुअर है क्या कि लगा है घूरे पर! ऐसा सोचकर तीनों सुअर घूरे की तरफ बढ़े।

तभी वे एकदम से रुक गए।

उनका दिल धक्क रह गया। जो दृश्य उन्होंने देखा उसे वे अपने संपूर्ण सुअर जीवन में नहीं भुला सकते थे। उनके खाली पेट से खाली दिमाग तक में एक बेचैन ऐंठन दौड़ गई। क्या देख रहे हैं वे? जो अपेक्षाकृत बड़ा किशोर सुअर का बच्चा था, उसने दोनों छोटे सुअरों को पूंछ के इशारे से अपने पीछे आ जाने को कहा। दोनों छुटके, बंटानी सुअर सीनियर साथी के पीछे घुस गए और उसकी पिछली टांगों के बीच से भयभीत नजरों से देखने लगे। बड़े सुअर ने आंखें मिचमिचाकर देखा, फिर थूथन को घास पर रगड़कर आंखें साफ की।

नहीं, यह सपना शुरू नहीं था। वह सही-सही देख रहा था।

उसने देखा कि आदमी के तीन बच्चे कचरे में से बीन-बीनकर कुछ खा रहे हैं। यह क्या मजाक हो रहा है सुअरों के साथ? यदि आदमी ही कचरा खाने लगेगा, तो हम सुअरों का क्या होगा? आदमी कब से सुअर हो गया? आदमी को यह क्या हो गया है—वह अपने अधिकारों के लिए न लड़कर हम सुअरों के अधिकारों पर अतिक्रमण कर रहा है? "दुनिया के सुअर एक हो!" "जो हमसे टकराएगा, नाली में घुस जाएगा।" "सुअर का बच्चा जिंदाबाद, आदमी मुर्दाबाद।" "सुअर-सुअर भाई-भाई, आदमी तेरे खेलों को देख लिया और देखेंगे। नाले-नाले लोटेंगे, सुअर के बच्चे जीतेंगे।" "सुअर के बच्चे—जिंदाबाद" "हर कीचड़ नाले-कचरे में, संघर्ष हमारा नारा है।" "जात से न बात से, सुअर लड़ेगा लात से" ऐसे नारे और हजारों अन्य नारे, जो किशोर सुअर ने चुनाव के दिनों में गंदे नाले की टट्टी पुलिया पर से गुजरती जीपों से उछलते सुने थे, आज उसके दिमाग में गूंज उठे। उसे लगा जैसे वह भी एक नेता हो गया है जिसके कुछ कर्तव्य हैं। उसने पीछे की तरफ घूमकर नारा उछाला—

"सुअर के बच्चे . . ."

किसी ने जिंदाबाद नहीं कहा।

बल्कि उसके दो अनुयायी उसकी टांगों के बीच डरकर और दुबक गए। उसे याद आया कि इन मासूमों ने तो चुनाव, नारेबाजी का वह माहौल देखा ही नहीं है। जब ये पैदा हुए थे तब अंतिम चुनाव इस देश में हो चुके थे। उसे लोकतांत्रिक देश में पैदा हुए उन सुअरों पर तरस आया जिन्हें लोकतंत्र की रक्षा में नारेबाजी तथा हुल्लड़ का महत्व ज्ञात नहीं था। उसने एक संक्षिप्त वक्तव्य प्रसारित किया कि सुअरों का लोकतंत्र खतरे में है। आज आदमी कचरे पर अधिकार जता रहा है, कल वह हमें नाले से खदेड़ देगा। उसने नारेबाजी का अर्थ बताते हुए अंत में जयहिंद से पूर्व कहा कि वह नारे लगाता कचरे के ढेर की तरफ बढ़ेगा, वे नारे का जवाब नारे से देते पीछे-पीछे आएं।

"सुअर के बच्चे . . ."

"जिंदाबाद।"

तीनों सुअरों का पिद्दी जुलूस घूरे की तरफ चल पड़ा।

"जिंदाबाद-जिंदाबाद . . ."

"घुर, घुर . . . चीं-चीं . . ."

सुअर के बच्चों की टोली शोर मचाती डस्टबिन की तरफ चली। चीं-चीं या घुर-घुर के शोर से बस्ती गूंज उठी।

"अबे देख बे, सुअर के बच्चे . . ." शोर सुनकर कचरा बीनते आदमी के बच्चों में से एक ने कहा। तीनों बच्चे कचरा बीनना छोड़कर खड़े हो गए और सुअरों की तरफ देखने

लगे। सुअर के बच्चों की टोली डरकर ठिठक गई। नारेबाजी बंद हो गई।

अब एक तरफ सुअर के बच्चे खड़े थे और दूसरी तरफ आदमी के।

"भाग स्साले . . ." आदमी के एक बच्चे ने कचरे से एक ढेला उठाकर मारा।

"यह क्या बदतमीजी है . . ." बड़ा सुअर भागता हुआ चिंचियाया। छोटे सुअर काफी दूर तक भाग निकले। बड़े सुअर के सुअरत्व तथा् नेतागिरी ने जोर मारी। वह रुक गया। अनुयायियों को पीछे छोड़कर वह तेज चाल से पुनः घूरे की तरफ आया।

"बड़ा ढीठ है यह सुअर . . ."

"लगा स्साले के एक जूता . . ."

बच्चे बोले।

आदमी के एक बच्चे ने खाली हाथ से ही ढेला मारने की एक्टिंग की। बड़ा सुअर डरकर तीन-चार कदम पीछे भागा और रुक गया। आदमी के बच्चे सुअर को बेवकूफ बनाकर हंसने लगे। यहां तक कि आदमियों के इस मजाक पर पीछे खड़े दोनों छोटे सुअर तक चीं-चीं करते हंस पड़े।

बड़ा सुअर अपने साथियों की अप्रतिबद्धता पर दुखी हुआ।

वह क्रोधित होकर चिंचियाता हुआ घूरे की तरफ दौड़ा, "क्या तमाशा मचा रखा है यह?" उसने आदमियों के बच्चों के ऐन सामने पहुंचकर थूथन ऊंची करके पूछा।

"देख तो रे इसकी हिम्मत . . ."

"हां है मेरे में हिम्मत। मैं आदमियों की तरह कायर नहीं?" उसने जवाब दिया।

"अब चिंचियाए जा रहा है . . ."

"हां, चीख-चीखकर सारे जमाने के सामने चिंचिआऊंगा। तुम लोगों की तरह अन्याय नहीं सहूंगा। तुम इन बंगलों में न घुसकर हमारे कचरे में भोजन तलाशने घुस सकते हो? कायर कहीं के . . ." सुअर फिर चिंचियाया और आदमी के बच्चों के और करीब पहुंच गया।

"अबे, लगा तो इसको लात, घुसा ही आ रहा है?"

एक लौंडे ने घुमाकर एक लात सुअर के पिछवाड़े पर मारी और वह लुढ़कता हुआ अपने चिंया अनुयायियों के पास जा गिरा। सारी क्रांति हवा हो गई।

तीनों सुअर बचाओ, बचाओ करते नाले की तरफ भागे।

आदमी के बच्चे हंसते हुए फिर कचरे में से जूठन बीनकर खाने लगे।

उस दिन के बाद सुअर के बच्चे दुखी रहने लगे।

रोज बेचारे नाले से निकलकर छुप-छुपकर कचरे की तरफ जाते और पाते कि कोई-न कोई आदमी या आदमी का बच्चा वहां डटा है। उन्होंने पहचाना—सभी इन झोपड़पट्टियों की बस्ती के रहने वाले आदमी थे। शुरू में दो-तीन सप्ताह देखने के बाद उनकी आशा टूट गई और वे भी अपने मां-बाप की तरह गलियों में भटककर कचरा तलाशने लगे। फिर

भी कहीं कोई आशा थी, सो दिन में एकाध बार तीनों उन डिब्बों तक चक्कर मार आते।

एक दिन उनमें से एक ने अपने सुअर पिता को आदमी का यह अजीब व्यवहार बताया तो वह हंसने लगा। (सुअरों के पिता आदमी के पिता से भिन्न होते हैं तथा अपने बच्चों से हंसकर भी बात कर लेते हैं)। उसने अपने बच्चे को बताया, "बेटा, खैर मनाओ कि सुअर का जन्म लिया। कचरा मिल जाता है, पेट पल जाता है, अभी छोटे हो, जब बड़े होगे और इस झोपड़बस्ती में घूमोगे तो पाओगे कि आदमी कितना दुःखी है। दुबले-पतले, मरते अधमरे आदमी के बच्चों को देखकर तुम्हें ज्ञात होगा कि सुअर के बच्चे के रूप में तुमने कितनी ऐश की। न तुमने नन्हें हाथों से पालिश की पेटी ढोई, न हाथ-पांव तुड़वाकर भीख मांगी। न तुमने होटल में प्लेटें धोकर मालिक के जूते खाए, न तुम डाक्टर की दुकान के सामने दवाई के अभाव में मरे। न तुम मिलावटी कचरा खाकर बीमार हुए, न ही पैदा होते ही रेलवे स्टेशनों पर सामान ढोने लगे। तुम बहुत अच्छे रहे सुअर के बच्चे कि तुम आदमी के बच्चे नहीं हुए।"

उस बच्चे ने शेष सुअर के बच्चों को बताया कि आदमी का बच्चा होना कितना खतरनाक काम है। उन्हें कुछ संतोष तो हुआ पर कचरे के डिब्बों का स्वादिष्ट जूठन हाथ से निकल जाने का गम सताता रहा।

ऐसे ही दिन गुजरते रहे।

कि एक दिन बहुत-सी पुलिस, बुलडोजरों के साथ उस झोपड़पट्टी बस्ती में घुस आई। सारे छोटे-बड़े सुअर भागकर नाले के दूसरे किनारे पर आकर दुबक गए। पर आदमी की बड़ी फजीहत हुई। बस्ती में बड़ी मारामारी हुई। पुलिस ने मार-मारकर आदमियों, औरतों तथा बच्चों को बस्ती से खदेड़ दिया। रोते-पीटते आदमियों के झुंड, नाले पर बने टूटे पुल पर से टूटा-फूटा सामान लिए बस्ती में भाग निकले। बुलडोजर ने घूमकर बस्ती साफ कर दी। बरसात होने लगी और सारी बस्ती कचरा बनकर सुअरों के सामने नाले में बहने लगी।

सुअरों की सहमी भीड़ भागते आदमियों को देखती रही।

सुअर के वे तीन बच्चे भी यह दृश्य देख रहे थे। एक ने अपने उसी बुद्धिमान सुअर पिता से जिज्ञासा की, "यह क्या हो रहा है, पापा?"

उन्होंने समझाया, "आदमी सुअर से अलग किस्म का प्राणी है बेटा। सुअर सारे एक जैसे होते हैं, पर आदमी नहीं। आदमी दो तरह का होता है—अमीर तथा गरीब। गरीब बड़ा गंदा आदमी होता है, ऐसा अमीर मानते हैं। वे गंदी बस्तियां बनाकर शहर की शोभा बिगाड़ते हैं। इसीलिए बीच-बीच में इनकी बस्तियां उजाड़ दी जाती हैं, कुछ इस भागदौड़ में मरकर छुटकारा पा जाते हैं। जो बच जाते हैं, उनमें गजब की संघर्ष शक्ति होती है। वे पुनः बस्ती बना लेते हैं। फिर बुलडोजर आते हैं। . . . इनके साथ यही चलता रहता

है। हम सुअरों से भी असुरक्षित भविष्य है इनका।"

बच्चों को एक बार पुनः प्रसन्नता हुई कि वे सुअर के बच्चे हैं। तभी उनको आदमियों की भागती भीड़ में आदमी के वे तीन बच्चे भी दिखाई दिए, जिन्होंने इन्हें घूरे से बेघूरा कर दिया था। टूटे डिब्बे, टिन आदि सर पर लादे भयभीत और बीमार-से इन बच्चों को देखकर वे सुअर के बच्चे सहम गए। उन्हें उन पर दया आई।

तभी सबसे छोटा सुअर का बच्चा बोल उठा, "अब अच्छा रहेगा, ये बच्चे नहीं रहेंगे तो अपुन कचरे के डिब्बे पर फिर आराम से खा सकेंगे . . ."

किशोर सुअर के बच्चे ने घूरकर उसे देखा और डांटा, "शर्म नहीं आती तेरे को? इन बेचारों पर मुसीबत पड़ी है और तुझे अपनी सूझ रही है। आदमी को शर्म और दया न आए, पर हम तो सुअर हैं . . ."

सुअरों की भीड़ स्तब्ध खड़ी रही और झोपड़बस्ती की जगह बंजर रह गई।

आज भी कचरे के वे डिब्बे वहीं हैं।

कचरा, जूठन पड़ा रहता पर सुअर के वे तीन बच्चे उस तरफ फटकते भी नहीं। आदमी के उन तीन बच्चों के साथ आदमी ने जो क्रूर व्यवहार किया, उसके विरोध में वे इतना ही कर सकते हैं। उन्हें दुःख है कि वे सुअर हुए, यदि आदमी होते तो वे इस अन्याय से लड़ते।

परंतु, आदमी होते तो क्या वे सचमुच लड़ते?

मुझको सजा, मेरे पड़ोसी को सजा

सुरेश कान्त

घटना संक्षेप में कुछ इस प्रकार घटी—

मेरे घर-कमल के सामने दो नर-कमल लड़ पड़े थे। जैसी कि परंपरा है, उनमें से जो ताकतवर था, जी-जान से पीटने की भूमिका अदा कर रहा था और जो कमजोर था, पूरी ईमानदारी से पिटने का कार्य संपादित करने में जुटा था। देखकर मेरा तो खून खौल गया। मुझ जैसे बुद्धिजीवी के सामने एक ताकतवर व्यक्ति कमजोर व्यक्ति पर अत्याचार करे, और मैं देखता रहूं। नहीं, मैं उसे पिटते हुए नहीं देख सका और फलतः अपने नेत्र-कमल बंद कर लिए।

कुछ क्षण बाद जब नेत्र खुले, तो दृश्य जो था, परिवर्तित हो चुका था और दोनों महानुभावों ने अपनी भूमिकाएं आपस में बदल ली थीं।

और, मेरे देखते-देखते कमजोर व्यक्ति, ताकतवर को चाकू से मारकर उड़नछू हो गया और मुझे 'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' नामक कहानी की याद दिला गया। इस कहानी में एक अदना-सा खरगोश भी कुछ इसी प्रकार से एक शेर को मार डालता है।

सारा मुहल्ला सुनसान हो चुका था। सब लोग अपने-अपने घरों में दुबक चुके थे और इस प्रकार घटित घटना से सर्वथा असंपृक्त दिखने की कोशिश में लगे थे। मेरे अनवरत अनुरोध के बावजूद कोई मेरे साथ थाने चलने को तैयार नहीं हुआ। आखिर गले पड़े ढोल को मैंने स्वयं ही पीटा और समीप ही बने एक सार्वजनिक टेलीफोन-बूथ से पुलिस को स्थिति से अवगत कराया।

मेरे घर के सामने पुलिस की जीप रुकी, तो मेरी छाती चौड़ी हो गई। सिद्ध हो गया कि छाती केवल व्यायामादि से ही चौड़ी नहीं होती, घर के समक्ष जीप खड़ी देखकर भी हो जाती है। जीप पर चाहे कोई आए, हमारे लिए देवता है। मैंने इंस्पेक्टर और हवलदार को, आरती-वगैरह उतारकर, सादर गृह-प्रवेश कराया। यदि इस समय साइकिल पर मेरा बाप भी आ जाता, तो मैं पूछता तक नहीं। साइकिल जब जीप के सामने आती है, तो फीकी पड़ जाती है। जीप ही व्यक्तियों की तुच्छता या महानता की मापक है।

शबरी के यहां राम गए, तो उसे अपार प्रसन्नता हुई। लगता है, उसके यहां कभी

इंस्पेक्टर या हवलदार नहीं गए होंगे, वरना यह राम के आने पर इतनी खुश न होती। पर मेरे यहां ये आ गए हैं, अतः भविष्य में यदि कभी राम मेरे घर आए, तो मैं कहूंगा, "तुमने देर कर दी। मुझे तुम्हारे आने से कोई खुशी नहीं हुई।"

"क्यों बे, तू ही सुरेश कान्त है?" इंस्पेक्टर ने पूछा।

गद्‌गद होते हुए मैंने कहा, "जी हां।"

"तूने ही पुलिस को सूचना दी थी?" इंस्पेक्टर ने पुनः गोली दागी।

मैंने कहा, "इसलिए कि वारदात मेरे ही घर के सामने हुई, और इसलिए भी कि कोई और सूचना देने के लिए तैयार नहीं हुआ।"

मेरा उत्तर सुनकर इंस्पेक्टर साहब खड़े-खड़े सोचते रहे और सोचते-सोचते खड़े रहे। फिर बोले, "क्या तू बता सकता है कि मृतक और फरार तेरे ही घर के सामने क्यों लड़े?"

वार भरपूर था, मैं दहल गया। अब उन्होंने मुझे बताया तो था नहीं कि वे किस कारण से लड़े थे। हो सकता है, किसी कन्या कुमारी के कारण लड़े हों। कन्या, और वह भी कुमारी, अच्छों-अच्छों को लड़ा देती है। यह भी संभव है कि लड़ाई किसी और ही कारण से हुई हो। संभव है कि अकारण ही हुई हो। कुछ व्यक्तियों को लड़ने की आदत होती है। जिस दिन ऐसे महापुरुष किसी से लड़ नहीं पाते, उस दिन उन्हें खाना नहीं पचता। ऐसे एक आदमी को मैं जानता हूं। पहले वह खूब स्वस्थ था, पर उस दिन मिला तो लगा जैसे सीधा कब्र से उठकर आ रहा हो। मैंने पूछा, "क्या बात है?"

बोला, "अपच हो गई है।"

मैंने पूछा, "क्यों?"

बोला, "कई दिनों से किसी से लड़ना नहीं हो पाया।"

और मैं यह सोचकर कि कहीं अगला मुझसे ही न लड़ बैठे, भाग लिया।

चूंकि मुझे लड़ाई के कारण का पता नहीं था, अतः मैंने कहा, "जी, पता नहीं।"

इंस्पेक्टर गरजा, "तूने घर ऐसी जगह बनवाया ही क्यों, कि जिसके आगे लोग लड़ें?"

और इससे पहले कि मैं कुछ कहता, वह फिर दहाड़ा, "मुझे तो लगता है, खून तूने ही किया है!"

सुनकर मुझे तो दिन में ही तारे नजर आने लगे। बड़ी मुश्किल से रिरिया सका, "जी नहीं, खून मैंने नहीं किया। मैं बेगुनाह हूं . . ."

"फांसी मिलेगी तो सारी बेगुनाही निकल जाएगी!" इंस्पेक्टर बोला।

फांसी की बात सुनकर मेरी आंखों के आगे अंधेरा छा गया।

तभी अंधेरे में जुगनू के चमकने के समान, हवलदार मेरे कान में फुसफुसाया, "कुछ दे-दिला दे, तो बात बन सकती है।"

हवलदार मुझे साक्षात ईश्वर जान पड़ा। प्रह्लाद को हिरण्यकश्यप से बचाने के लिए वह नृसिंह का अवतार धारण करके आया था, मुझे इंस्पेक्टर से बचाने के लिए हवलदार

बनकर आया है। मैंने हवलदार-रूपी भगवान या भगवान-रूपी हवलदार (जैसी भी स्थिति रही हो) को लाख-लाख धन्यवाद दिए। फिर इंस्पेक्टर से बोला, ''कुछ ले-देकर मामला रफा-दफा हो सके, तो . . .''

लेकिन इंस्पेक्टर को तो क्रोध आ गया। गरजते हुए वह बोला, ''उल्लू के पट्ठे, अपने बाप को रिश्वत देता है?''

मैं घबरा गया। मेरी हालत द्रौपदी की तरह हो रही थी। इंस्पेक्टर-रूपी दुर्योधन ने तो मेरा चीर खींचकर मुझे नंगा ही कर दिया होता यदि हवलदार बने भगवान कृष्ण मेरा चीर न बढ़ाते। चीर बढ़ाते हुए हवलदार ने कहा, ''छोड़िए हुजूर, गरीब आदमी है, नादान है। आइंदा नहीं करेगा। जो दे रहा है, ले लीजिए।''

इंस्पेक्टर कुछ नर्म पड़ा, ''तुम कहते हो, तो ठीक है।''

इंस्पेक्टर और हवलदार तब मेरे पड़ोसी के घर गए।

इंस्पेक्टर ने पड़ोसी से पूछा, ''क्यों बे, तूने वारदात की सूचना पुलिस को क्यों नहीं दी?''

एक आदर्श भारतीय की तरह, पड़ोसी बोला, ''वारदात मेरे घर के सामने थोड़े ही हुई थी, जो मैं पुलिस को सूचना देता!''

''तूने घर ऐसी जगह बनवाया ही क्यों, जिसके आगे ससुरी किसी तरह की कोई वारदात ही न हो!'' इंस्पेक्टर ने पूछा।

पड़ोसी अचकचा गया। कुछ और नहीं सूझा तो यही कह बैठा, ''मुझे क्या पता था कि वे इनके घर के सामने लड़ेंगे या कहीं और।''

''पर जब वे लड़ रहे थे, तो तूने उनसे अपने घर के सामने लड़ने को क्यों नहीं कहा?'' इंस्पेक्टर भी अड़ा रहा।

''अब क्या कहूं'', पड़ोसी ने लगभग रोते हुए कहा, ''साली मेरी तकदीर ही खोटी थी!''

''तकदीर के बच्चे, लगता है खून तूने ही किया है!'' इंस्पेक्टर दहाड़ा, ''हवलदार, इसे हथकड़ी पहना दो!''

और पड़ोसी को हथकड़ी पहनाकर गाड़ी में घसीट लिया गया। फिर इंस्पेक्टर ने मुझसे कहा, ''आप भी थाने चलिए जी, एक अच्छे नागरिक होने के नाते आपको गवाही देकर पुलिस की मदद करनी है।''

अब इंस्पेक्टर मुझे 'आप' कह रहा था। रिश्वत 'तू' से 'आप' पर ला पटकती है। 'आप' कहलाने का यह अच्छा साधन है।

बहरहाल, आगे वही हुआ जो कि होना था। यथारीति पड़ोसी पर मुकदमा चला और खून के जुर्म में उसे सजाए-मौत हुई। भगवान उसकी आत्मा को शांति न दे, जिससे कि वह इंस्पेक्टर से बदला ले सके।

लेखक परिचय

वालकृष्ण भट्ट : सन् 1844-1914 (प्रायः इलाहाबाद में निवास)
भारतेन्दु युग के प्रमुख निबंध लेखक। हिन्दी 'प्रदीप' का संपादन। नूतन ब्रह्मचारी, गुप्त वैरी, पछावनी, चंद्रसेन, सीता वनवास आदि प्रमुख कृतियां।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : सन् 1850-1885 (वाराणसी)
वहुविध साहित्य के प्रणेता। कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र चंद्रिका, हरिश्चन्द्र मैगजीन का संपादन। प्रेम मल्लिका, प्रेम सरोवर, वेणु गीत, अंधेर नगरी चौपट राजा, हिंसा, भवति, वैदिकी हिंसा आदि प्रमुख कृतियां।

प्रताप नारायण मिश्र : सन् 1856-1895 (कानपुर)
भारतेन्दु युग के प्रतिष्ठित कवि, निबंधकार, नाटककार तथा संपादक। ब्राह्मण और हिंदी प्रदीप का कुशल संपादन। प्रेम पुष्पावली, मन की लहरें, गो संकट, दंगलखंड आदि प्रमुख कृतियां।

बालमुकुंद गुप्त : सन् 1865-1907 (रोहतक, हरियाणा)
भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग को जोड़ने वाली महत्वपूर्ण कड़ी। प्रतिष्ठित पत्रकार, अनुवादक तथा निबंधकार। अखबारे चुनार, कोहनूर, हिन्दी बंगवासी और भारत-मित्र का संपादन। शिवशम्भु के चिट्ठे, चिट्ठे और खत, गुप्त-निबंधावली आदि प्रमुख कृतियां।

प्रेमचन्द : सन् 1880-1936 (प्रायः वाराणसी में निवास)
अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के शीर्षस्थ कथाकार। वास्तविक नाम धनपत राय, उर्दू में नवाबराय के नाम से लेखन। जमाना, मर्यादा, माधुरी, जागरण और हंस का संपादन। सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, गोदान, प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानियां आदि प्रमुख कृतियां।

अन्नपूर्णानन्द वर्मा : 21.9.1895-4.12.1962 (वाराणसी)
शिष्ट हास्य लेखन में अग्रणी। मन मयूर मेरी, हजामत, मंगल मोद, महाकवि चच्चा आदि प्रमुख कृतियां।

गुलाबराय : सन् 1880-1963 (आगरा)
काव्यशास्त्रकार, आलोचक, निबंधकार और दार्शनिक। साहित्य संदेश का संपादन। नवरस, सिद्धांत और अध्ययन, काव्य के रूप, ठलुआ क्लब, मेरी असफलताएं आदि प्रमुख कृतियां।

जी. पी. श्रीवास्तव : सन् 1890-1966 (गोंडा)
हिन्दी हास्य-लेखन में प्रतिष्ठित। पूरा नाम गंगाप्रसाद श्रीवास्तव। लंबी दाढ़ी, उलट-फेर, नोक-झोंक, लतखोरी लाल, बौछार, दिल की आग आदि प्रमुख कृतियां।

हरिशंकर शर्मा : सन् 1892-1968 (आगरा)
इतिहास लेखक, कोश निर्माता, हास्य-व्यंग्यकार और पत्रकार। आर्यमित्र का संपादन। रस रत्नाकार, घासपात, कृष्ण संदेश, चिड़ियाघर, गड़बड़, गोष्ठी आदि प्रमुख कृतियां।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक : सन् 1891-1945 (कानपुर)
निबंधकार, हास्य-व्यंग्यकार। चांद में विजयानन्द दुबे के नाम से दुबे जी की चिट्ठियां प्रकाशित। भीष्म, चित्रशाला, मां दुबे जी की चिट्ठियां आदि प्रमुख कृतियां।

श्रीनारायण चतुर्वेदी : सन् 1893-1989 (मुख्यतः इलाहाबाद और बाद में लखनऊ में निवास)
इतिहासविद, शिक्षाशास्त्री, संपादक तथा साहित्यकार। पद्मभूषण, 'श्रीवर' उपनाम से लेखन। विश्वभारती और सरस्वती का संपादन। रणदीप, जीवन के गीत, छेड़छाड़, चोंच महाकाव्य, राजभवन की सिगरेटदानी, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं आदि प्रमुख कृतियां।

बेढ़ब बनारसी : सन् 1895-1965 (वाराणसी)
शिक्षाशास्त्री, हास्य व्यंग्य के प्रतिष्ठित रचनाकार। पूरा नाम कृष्ण देव प्रसाद गौड़ 'बेढब'। बेढव की बहक, बनारसी इक्का, काव्य कमल, गांधी का भूत, लफटंट पिगसन की डायरी आदि प्रमुख कृतियां।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : सन् 1899-1961 (प्रायः लखनऊ और इलाहाबाद में निवास)।
आधुनिक हिन्दी काव्य के प्रमुख आधार स्तंभ। काव्य, उपन्यास, आलोचना, निबंध, व्यंग्य आदि विधाओं में अविस्मरणीय लेखन, मतवाला का संपादन। परिमल, अनामिका, गीतिका, कुकुरमुत्ता आदि काव्य संग्रह, अलका, प्रभावती आदि उपन्यास : कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा आदि प्रमुख व्यंग्यात्मक कृतियों के प्रणेता।

भगवतीचरण वर्मा : सन् 1903-1981 (लखनऊ)
प्रख्यात कवि एवं कथाकार। मोर्चाबंदी, दो बांके, टेढ़े मेढ़े रास्ते, भूले बिसरे चित्र, चित्रलेखा, मधुकण, रुपया तुम्हें खा गया आदि प्रमुख कृतियां।

कुट्टिचातन् : सन् 1911-1987 (जीवन का उत्तरार्ध दिल्ली में बीता)।
मुख्यतः कवि, उपन्यासकार, कहानी लेखक, निबंधकार, प्रखर चिंतक। पूरा नाम—सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'। व्यंग्य-लेखन का उपनाम कुट्टिचातन्। सैनिक, विशाल भारत, प्रतीक, दिनमान आदि का संपादन आधुनिक हिन्दी के शीर्षस्थ साहित्यकारों में गण्य। हरी घास पर क्षण भर, इत्यलम्, अरी ओ करुणा प्रभामय, विपथगा, शेखर एक जीवनी, नदी के द्वीप, आत्मनेपद आदि प्रमुख कृतियां।

नागार्जुन : सन् 1911-1998 (तरौनी, मधुबनी)
प्रख्यात कवि एवं कथाकार। असली नाम वैद्यनाथ मिश्र। हिन्दी के अलावा मैथिली के भी प्रतिष्ठित साहित्यकार। रतिनाथ की चाची, बलचनमा, नई पौध, बाबा बटेसरनाथ, वरुण के बेटे, युगधारा, सतरंगे पंखोंवाली आदि प्रमुख कृतियां।

राधाकृष्ण : 10.9.1912-3.2.1970 (रांची, बिहार)
प्रतिष्ठित हास्य व्यंग्य लेखक। घोष-बोस चटर्जी, बनर्जी के उपनाम से लेखन। आदिवासी का संपादन। रामलीला, फुटपाथ, सजला, सनसनाते सपने, बोगस आदि प्रमुख कृतियां।

गोपाल प्रसाद व्यास : जन्म 13.2.1915 (परसोली, मथुरा)
हास्य-व्यंग्य कविता एवं गद्य लेखन 'नारद जी खबर लाए हैं' स्तंभ का नियमित लेखन। अजी सुनो, यत्र-तत्र-सर्वत्र, कहो व्यास कैसी कही, हास्य सागर आदि प्रमुख कृतियां।

अमृतलाल नागर : 17.8.1916-23.2.1990 (लखनऊ)
प्रख्यात कथाकार। प्रारंभिक तस्लीम लखनवी के नाम से लेखन में अपने अनोखे शैली वैविध्य और जीवन के विभिन्न पक्षों के यथार्थ की पकड़ के लिए विख्यात। चकल्लस का संपादन, बूंद और समुद्र, अमृत और विष, सुहाग के नूपुर, मानस का हंस, तुलाराम शास्त्री आदि प्रमुख कृतियां।

प्रभाकर माचवे : 26.12.1917-17.6.1991 (ग्वालियर)
कविता, कहानी, उपन्यास, निबंध, समीक्षा आदि विधाओं में लेखन। अनुक्षण, स्वप्न भंग, तेल की पकौड़ियां, खरगोश के सींग, संगीनों का साया आदि प्रमुख कृतियां।

अमृत राय : 15.8.1921-14.8.1996 (इलाहाबाद)
मूलतः कथाकार तथा निबंधकार। आनन्दम, जंगल, कलम का सिपाही, बीज, बतरस आदि प्रमुख कृतियां।

हरिशंकर परसाई : 22.8.1924-10.8.1995 (जबलपुर)
आधुनिक हिन्दी में अपने सोद्देश्य और अद्वितीय व्यंग्य के लिए प्रतिष्ठित। सजग सामाजिक दृष्टि वाले कृतिकार। वसुधा का संपादन। नियमित स्तंभ लेखन। ठिठुरता हुआ गणतंत्र, सदाचार का तावीज, रोते हैं हंसते हैं, रानी नागपनी की कहानी, वैष्णव की फिसलन आदि प्रमुख कृतियां।

श्रीलाल शुक्ल : जन्म : 1925 (लखनऊ)
कथाकार, निबंध लेखन और वैविध्यपूर्ण व्यंग्य के लिए विख्यात। रागदरबारी, अगंद का पांव, उमराव नगर से कुछ दिन, मकान, यह घर मेरा नहीं, यहां से वहां आदि प्रमुख कृतियां।

शंकर पुणताम्बेकर : जन्म 1925 (कुंमराज, मध्यप्रदेश)
चर्चित व्यंग्यकार। बदनामचा, विजिट यमराज की, व्यंग्य अमरकोश आदि प्रमुख कृतियां।

धर्मवीर भारती : जन्म 25.12.1926 (इलाहाबाद, बंबई)
प्रतिष्ठित कवि, कथाकार, आलोचक तथा निबंधकार। धर्मयुग का दीर्घकालीन संपादन। अंधायुग, कनुप्रिया, ठेले पर हिमालय, सूरज का सातवां घोड़ा, गुनाहों का देवता, पश्यंती आदि प्रमुख कृतियां।

विद्यानिवास मिश्र : जन्म 1925 (गोरखपुर, वाराणसी)
आधुनिक दृष्टि से संपन्न, संस्कृत तथा भाषा शास्त्र के पंडित। संपूर्णानंद संस्कृत वि. वि. के पूर्व कुलपति। नवभारत टाइम्स, साहित्य अमृत का संपादन। अपने गहन सांस्कृतिक चिंतन और ललित निबंधों के लिए विख्यात, जिनमें मधुर परिहास और अत्यंत शिष्ट व्यंग्य भी मिलता है। तुम चंदन हम पानी, छितवन की छांह, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, भ्रमरानंद के पत्र, महाभारत का काव्यार्थ आदि प्रमुख कृतियां।

शान्ति मेहरोत्रा : जन्म 9.3.1927 (इलाहाबाद)
चर्चित हास्य व्यंग्य लेखिका। सुर्ख़ाब के पर, खुला आकाश, निष्कृति, पंचप्रदीप, मेरे पंख, दंतकथा आदि प्रमुख कृतियां।

नामवर सिंह : जन्म 1.5.1927 (वाराणसी, दिल्ली में निवास)
हिन्दी के शीर्षस्थ आलोचक और चिंतक के रूप में प्रतिष्ठित। आरंभ में कविता तथा व्यंग्य लेखन भी। 'आलोचना' का संपादन। बकलम खुद, कविता के नए प्रतिमान, वाद विवाद संवाद आदि प्रमुख कृतियां।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : जन्म 15.9.1927-24.9.1983 (दिल्ली)
प्रख्यात कवि, नाटककार, कथाकार तथा पत्रकार। काठ की घंटियां, कुआनो नदी, बांस का पुल, बकरी, संपूर्ण गद्य रचनाएं—चार भाग आदि प्रमुख कृतियां।

रघुवीर सहाय : सन् 1922-1993 (लखनऊ-दिल्ली)
आधुनिक हिन्दी के सर्वोत्कृष्ट कवियों में गण्य। कथाकार तथा पत्रकार भी। दिनमान का संपादन। आत्महत्या के विरुद्ध, हंसो हंसो जल्दी हंसो, सीढ़ियों पर धूप, रास्ता इधर से है, एक समय था आदि प्रमुख कृतियां।

केशव चन्द्र वर्मा : जन्म 1928 (इलाहाबाद)
प्रतिष्ठित हास्य-व्यंग्य रचनाकार। केशव कालीधर नाम से काव्यलेखन। संगीत का मर्मज्ञ और तत्संबंधी अनेक पुस्तकों के प्रणेता। तुंगशृंग का संपादन। अफलातूनों का शहर, लोमड़ी का मांस, मुर्ग छाप हीरो, वीणापाणि के कंपाउंड में, कोशिश संगीत समझने की आदि प्रमुख कृतियां।

विजयदेव नारायण साही : 7.10.1924-5.11.1982 (इलाहाबाद)
कुछ अप्रतिम व्यंग्य कृतियों के लेखक। प्रखर आलोचक, चिंतक और कवि। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्रोफेसर। मछलीघर, साखी, जायसी, साहित्य क्यों ?, साहित्य और साहित्यकार का दायित्व आदि प्रमुख कृतियां।

शरद जोशी : 21.5.1931-5.3.1991 (बंबई)
हिन्दी व्यंग्य के सुप्रसिद्ध नाम। अनेक पत्र पत्रिकाओं में व्यंग्यपरक स्तंभ लेखन। परिक्रमा, दूसरी सतह, किसी बहाने, यथासंभव, नावक के तीर, एक था गधा, प्रतिदिन आदि प्रमुख कृतियां। फिल्मों और दूरदर्शन शृंखलाओं के लिए भी प्रचुर लेखन।

रवीन्द्रनाथ त्यागी : जन्म 1.9.1931 (बिजनौर, उत्तर प्रदेश)
हिन्दी व्यंग्य के आधार स्तंभ। प्रतिष्ठित कवि। खुली धूप में नाव, शोक सभा, कल्पवृक्ष, भितिचित्र, कृष्णवाहन की कथा, पराजित पीढ़ी के नाम आदि प्रमुख कृतियां।

सुदर्शन मजीठिया : जन्म 25.9.1931 (मजी, पंजाब)
चर्चित हास्य-व्यंग्यकार तथा आलोचक। इंडीकेट बनाम सिंडिकेट, डिस्को कल्चर, टेलीफोन की घंटी आदि प्रमुख कृतियां।

मनोहर श्याम जोशी : जन्म 9.8.1933 (दिल्ली)
प्रख्यात उपन्यासकार, पत्रकार तथा व्यंग्य लेखक। साप्ताहिक हिन्दुस्तान का संपादन। कुरु कुरु स्वाहा, कसप, नेताजी, कहिन, हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, टा-टा प्रोफेसर आदि प्रमुख कृतियां।

के. पी. सक्सेना : जन्म 1934 (लखनऊ)
प्रसिद्ध लोकप्रिय हास्य व्यंग्य लेखक। बाल साहित्य लेखक। नया गिरगिट, कोई पत्थर से..., मूंछ-मूंछ की बात, आदि प्रमुख कृतियां। दूरदर्शन के लिए भी कई विख्यात सीरियल लिखे।

लतीफ घोंघी : जन्म 28.9.1935 (महासमुंद, मध्य प्रदेश)
हास्य-व्यंग्य के चर्चित रचनाकार। तिकोने चेहरे, ज्ञान की दुकान, बीमार न होने का दुख, उल्लू के पंजे, जुगलबंदी आदि प्रमुख कृतियां।

नरेन्द्र कोहली : जन्म 6.1.1940 (स्यालकोट)
रामकथा तथा महाभारत पर आधारित विशाल एवं लोकप्रिय औपन्यासिक लेखन। व्यंग्य नाटक तथा कहानी लेखन में चर्चित। अतिमर्श का संपादन ; महासमर; अभ्युदय (दो भाग) तोड़ो कारा तोड़ो, एक और लाल तिकोन, आश्रितों का विद्रोह, समग्र व्यंग्य आदि प्रमुख कृतियां।

लक्ष्मीकांत वैष्णव : 1940-1989 (भोपाल)
प्रतिष्ठित व्यंग्य रचनाकार। अश्वमेध, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं आदि प्रमुख कृतियां।

अशोक शुक्ल : जन्म 9.12.1940 (अलवर, राजस्थान)
चर्चित व्यंग्य लेखक। प्रोफेसर पुराण, हड़ताल हरिकथा, मेरा पैतालिसवां जन्मदिन आदि प्रमुख कृतियां।

सूर्यबाला : जन्म 1945 (बंबई)
चर्चित कथाकार तथा व्यंग्यकार। मेरे संधिपत्र, अजगर करै न चाकरी, सुबह के इंतजार तक, अग्निपंखी आदि प्रमुख कृतियां।

हरीश नवल : जन्म 8.1.1947 (नकोदर, पंजाब)
व्यंग्य लेखन के साथ फिल्म और टी. वी. लेखन। मादक पदार्थ, बागपत के खरबूजे, पीली छत पर काला निशान, पुलिस मैथड आदि प्रमुख कृतियां।

बालेन्दु शेखर तिवारी : जन्म 24.10.1948 (रांची)
हास्य व्यंग्य लेखक एवं आलोचक। रिसर्च गाथा; हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य-व्यंग्य, किराएदार, व्यंग्यालोचन आदि प्रमुख कृतियां।

प्रेम जनमेजय : जन्म 18.3.1949 (इलाहाबाद)
व्यंग्य और बाल-साहित्य लेखन। वास्तविक नाम प्रेम प्रकाश कुन्द्रा। सार्थक, अतिमर्श, गगनांचल में संपादन सहयोग। राजधानी में गंवार, बेशर्ममेव जयते, शहद की चोरी, आत्मा महाठगिनी आदि प्रमुख कृतियां।

दामोदर दत्त दीक्षित : जन्म 25.12.1949 (लखनऊ)
नई पीढ़ी के चर्चित व्यंग्यकार। आत्मबोध, सबको धन्यवाद, दरवाजे वाला खेत, हम न भूलेंगे आदि प्रमुख कृतियां।

विष्णु नागर : जन्म 14.5.1950 (दिल्ली)
नई पीढ़ी के चर्चित कहानीकार, कवि, पत्रकार तथा व्यंग्यकार। शहीद रज्जब, आदमी की मुश्किल, जीव जंतु पुराण, घोड़ा और घास आदि प्रमुख कृतियां।

ज्ञा। ; चतुर्वेदी : जन्म 2.8.1952 (झांसी)
चर्चित व्यंग्य लेखक। व्यवसाय से डॉक्टर। नरक यात्रा, बारहखड़ी, प्रेतकथा आदि प्रमुख कृतियां।

सुरेश कांत : जन्म 16.6.1956 (मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश)
व्यंग्य के अतिरिक्त बाल साहित्य और उपन्यास लेखन। ब से बैंक, पड़ोसियों का दर्द, प्रतिशोध, कट्टी आदि प्रमुख कृतियां।